अब्दुर्रहीम खानखाना

[जीवनी और कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन]

डा० समर बहादुर सिंह
एम० ए०, पी-एच० डी०, संगीत विशारद.

साहित्य-सदन
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमावृत्ति

२०१८ वि०

लखनऊ विश्व-विद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत अँग्रेजी शोध-प्रबन्ध का हिन्दी रूपान्तर

मूल्य
१०)

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य मुद्रण, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित
तथा साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित।

पूज्य पिता

स्व० काली चरण सिह

की

पुण्य स्मृति में

श्रीराम

रहीम को अमरता प्रदान करने के लिए उनके दोहे ही पर्याप्त हैं। नीति के दोहे और कवियों ने भी लिखे है परन्तु रहीम की सरसता का क्या कहना है।

वे बहुभाषा-विज्ञ थे और उनमें सहज प्रतिभा थी। इस कारण जिस भाषा में उन्होंने लिखा उसीमें चमत्कार कर दिखाया।

श्री समरबहादुरसिंह ने उनपर यह शोध-निबन्ध लिखकर स्वयं तो डाक्टर की पदवी प्राप्त की ही, हिन्दी का भी अमित हित किया है। इसके लिए हिन्दी भाषा-भाषी उनके कृतज्ञ रहेंगे।

—मैथिलीशरण गुप्त

प्राक्कथन

भारतीय इतिहास मे अब्दुर्रहीम खानखाना का एक विशिष्ट स्थान है। वे मध्ययुगीन भारत के मैसीनेस थे। उनकी भारतीय एव फारसी कवियो, सगीतज्ञो तथा इतिहास-लेखको के प्रति मित्रता और आश्रय-दान सुविदित है। वे स्वय भी उच्चकोटि के लेखक एव कवि थे। वे इस दृष्टि से मैसीनेस से भी महान कहे जा सकते है कि उनके दरबार में दो विभिन्न सास्कृतिक धाराओ-हिन्दू तथा मुस्लिम, फारसी तथा सस्कृत-का उस समन्वित सरिता मे घोल-मेल हुआ जिसका जल आज भी भारत-हृदय को अभिसिचित कर रहा है।

अब्दुर्रहीम के पिता, सुप्रसिद्ध बैरम खाँ, अकबर के अभिभावक (अतालीक) थे। पिता की हत्या के पश्चात् अनाथ बालक रहीम का पालन-पोषण मुगल-सम्राट ने अपने पुत्र की भाँति ही किया। किन्तु मलिक अम्बर की प्रतिभा के सम्मुख न तो वह सेना-नायक के रूप मे ही कोई यशस्वी स्मृति पीछे छोड गए और न उस स्वार्थी विदेशी सामन्तो के युग में राजनीतिक नेता के रूप मे ही। भारतीय इतिहास में उनका स्थान तो इसलिए सुनिश्चित है कि उन्होंने अकबर की सामान्य भारतीय जातीयता की नीति को कम से कम सास्कृतिक क्षेत्र मे पूर्ण किया।

डा० समरबहादुरसिंह ने बड़े परिश्रम तथा विवेक से समस्त मौलिक स्रोतों का अनुशीलन कर, उनमें निहित सामग्री के आधार पर, रहीम के जीवन तथा कृतियो का यह प्रामाणिक, सन्तुलित, सर्वांगीण तथा आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह कृति न केवल तत्कालीन भारतीय इतिहास विषयक हमारे ज्ञान की वृद्धि करेगी अपितु रहीम तथा उनके दरबार से सम्बद्ध कवियो की रचनाओं का परिचय कराने मे भी बड़ी सहायक सिद्ध होगी।

यदुनाथ सरकार

प्रस्तावना

मुगल-सम्राट अकबर के अभिभावक बैरम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना मध्ययुगीन भारत की अनुपम विभूति थे। उनकी प्रतिभा अनूठी थी। कलम और तलवार दोनों ही पर उनका समान अधिकार था, (साहिब-उस-सेफ व कलम)। अकबरी दरबार के नवरत्नो में उनका प्रमुख स्थान था। युद्ध-कला तथा कूटनीति में पारंगत वे मुगल-साम्राज्य के प्रबल स्तम्भ तो थे ही, साथ ही दीन-दुखियो के पालक, सरस्वती-उपासकों के उदार आश्रयदाता तथा संस्कृत, हिन्दी और फारसी के उत्कृष्ट कवि भी थे। उनके नीति-पूर्ण दोहे और चुटीले बरवै हिन्दी-जगत में उतने ही प्रिय है जितनी तुलसी की चौपाइयाँ, कबीर की साखी और सूर के पद। सर्व-धर्म-समभाव उनकी स्वभाव-गत विशेषता थी। वास्तव मे वह अपने स्वामी अकबर की भाँति ही धर्म-जाति से परे "भारतीयो के भारतीय" थे। ऐसे विरले ही मुगल-सामन्त होगे जो हिन्दी-भाषियो मे इतने लोक-प्रिय हों जितने रहीम अथवा "रहिमन"।

ऐसे व्यक्ति का इतिहास अभी तक बहुत-कुछ किम्वदन्तियो के आवरण से ही ढका हुआ था। किसी इतिहास-लेखक का ध्यान इस ओर न गया कि वह समस्त प्राप्त मौलिक सामग्री के आधार पर उसके व्यक्तित्व एव कृतित्व का वैज्ञानिक अध्ययन करे। हिन्दी में यों तो रहीम पर एक दर्जन से भी अधिक पुस्तके हैं किन्तु इनमें मुख्यत रहीम की हिन्दी-संस्कृत रचनाओ का ही संकलन एव विवेचन है। मुंशी देवीप्रसाद लिखित "खानखानानामा" में रहीम का जो जीवन-वृत्त है भी वह मुख्यतः "अकबरनामा" पर ही आधारित है। फ़ारसी मे रहीम पर लिखे गए महत्वपूर्ण समसामयिक ग्रंथ "मआसिरे-रहीमी" तथा कतिपय अन्य स्रोतों तक उनकी पहुँच न हो पाई। लगभग सभी हिन्दी-लेखकों ने रहीम का जीवन-परिचय इसी "खानखानानामा' के ही आधार पर दिया है। हाँ, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने अपने शोध-प्रबन्ध "अकबरी दरबार के हिन्दी कवि" में यदा-कदा "मआसिरे-रहीमी" का उपयोग अवश्य किया, किन्तु विषय-मर्यादा के कारण रहीम के राजनीतिक जीवन का विस्तृत विवेचन वे कर ही कैसे सकते थे।

अँग्रेजी में, विन्सेन्ट स्मिथ तथा अकबर के अन्य इतिहास-लेखकों ने अपने आख्यानों मे केवल प्रसग-वश अकबर के राज्य-काल में रहीम के राजनीतिक एवं सैनिक उपलब्धियो का उल्लेख किया है। डा० बेणीप्रसाद ने "जहाँगीर का इतिहास" नामक खोज-पूर्ण ग्रन्थ मे जहाँगीर के राज्य-काल में खानखाना के कार्य-कलापो का विवेचन अवश्य किया किन्तु उतना ही जितना कि उस सीमित क्षेत्र मे सम्भव था। डा० बनारसीप्रसाद की विद्वत्तापूर्ण कृति 'शाहजहाँ' मे हमे रहीम के केवल ढलते जीवन की कतिपय झाँकियाँ मिलती है। डा० जोगेन्द्र नाथ चौधरी लिखित "मलिक अम्बर" मे खानखाना का उस दक्षिणी हब्शी सरदार के साथ क्या व्यवहार रहा केवल इसी पहलू पर प्रकाश डाला गया है। उर्दू में, मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद कृत "दरबारे अकबरी" मे दिया गया रहीम का जीवन-वृत्त अपेक्षाकृत विस्तृत तो है किन्तु वह भी आंशिक सामग्री पर ही आधारित है। साराश यह कि अभी तक कोई ऐसा ग्रन्थ नही प्रकाशित हुआ जिसमे रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समस्त उपलब्ध स्रोतो के आधार पर सागोपांग तथा सन्तुलित अध्ययन हुआ हो।

प्रस्तुत प्रबन्ध इस दिशा में कदाचित् प्रथम प्रयास है। इसमें विभिन्न भाषाओं में रहीम-विषयक जो भी सामग्री उपलब्ध है, उसका सावधानी से छान-बीन कर उपयोग किया गया है। फारसी में लिखित सामान्य इतिहास-ग्रन्थ जैसे अकबर-नामा, आईने-अकबरी, तबकाते-अकबरी, मुन्तखब-उत्-तवारीख, मआसिरे-रहीमी, तुजुके-जहाँगीरी, इकबालनामा, तारीखे-फरिश्ता, इंशाऐ-अबुलफज्ल और मआसिर-उल-उमरा आदि इस प्रबन्ध के मुख्य आधार तो रहे ही हैं, साथ ही प्रान्त-विशेष के इतिहास-ग्रन्थ जैसे तारीखे-सिकन्दरी, तारीखे-अहमदी, तारीखे-सिन्धी, बुरहाने-मआसिरी और फतूहाते-आदिलशाही का भी इसमें समुचित उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त तत्कालीन योरोपीय यात्रियो के वृत्तान्तो, पत्रो, फरमानो, किवदन्तियो तथा परम्परागत जन-श्रुतियो का पर्यवेक्षण कर उनमें निहित सामग्री का भी यथा-सम्भव उपयोग हुआ है। इसी प्रकार अन्य अरबी, संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू स्रोतों से भी जो सामग्री उपलब्ध हो सकी, उन सबका विश्लेषण कर यथा-स्थान उनका भी उपयोग किया गया है।

इस ग्रंथ मे कुल आठ प्रकरण हैं। प्रथम छः अध्यायो मे रहीम की जीवन-गाथा है जिसमे उनके प्रारम्भिक जीवन, गुजरात, सिन्ध तथा दक्षिण अभियानों

और अकबर तथा जहाँगीर के राज्यकाल में मुगल-साम्राज्य के प्रति की गई उनकी अन्य सेवाओ का विस्तृत विवरण है। सातवें अध्याय मे उनकी साहित्यिक रचनाओं का समीक्षात्मक निरूपण है। हिन्दी, उर्दू, सस्कृत तथा फारसी भाषाओ के विकास एव उनके साहित्य की अभिवृद्धि मे रहीम ने क्या योग दिया, इसका ऐतिहासिक एव साहित्यिक दोनों दृष्टियो से मूल्याकन किया गया है। अतिम प्रकरण मे रहीम की चारित्रिक विशेषताओ की समीक्षा है। सामत, सेनानायक, कूटनीतिज्ञ तथा कला एव स्थापत्य के प्रणेता के रूप मे इतिहास मे उनका क्या स्थान है और दक्षिण-प्रदेश मे मुगलो की असफलताओं के लिए वे कहाँ तक उत्तरदायी थे, इन सब बातो पर भी निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में रहीम के जीवन एवं रचनाओ का वह वैज्ञानिक अध्ययन मिलेगा जिसका अभी तक प्राय अभाव ही था।

यह शोध-प्रबन्ध १९५२ ई० में लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहास विभाग मे पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। मूल अँग्रेजी मे था। हमने उसी के आधार पर प्रस्तुत प्रबन्ध हिन्दी-पाठकों के लिए तैयार किया है। ग्रन्थ को स्वत. पूर्ण बनाने के उद्देश्य से परिशिष्ट मे रहीम की अब तक उपलब्ध हिन्दी तथा सस्कृत रचनाओ का संग्रह भी दे दिया गया है। इस प्रकार रहीम के जीवन एव कृतियो का सम्पूर्ण चित्र पाठको को एक ही ग्रथ मे मिल सकेगा।

प्रबन्ध-प्रणयन लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहास-विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष, प्रोफ़ेसर डा० कालिकारजन क़ानूनगो के निरीक्षण में सम्पन्न हुआ। विषय-चुनाव से लेकर प्रबन्ध-पूर्ति तक पग-पग पर उनका जो स्नेह-पूर्ण पथ-प्रदर्शन मुझे प्राप्त होता रहा, उसके लिए शिष्टाचार-वश आभार व्यक्त कर उनकी कृपा से उऋण होने की धृष्टता मैं नही करना चाहता। दादागुरु डा० यदुनाथ सरकार का प्रोत्साहन मुझे प्रबन्ध-प्रणयन के प्रारम्भ से ही प्राप्त होता रहा। पाडुलिपि को आद्योपान्त पढ, न उन्होने अपने बहुमूल्य सुझाव ही दिए, अपितु मृत्यु के कुछ ही दिवस पूर्व इस ग्रथ का प्राक्कथन लिखकर शिष्य-आग्रह भी पूर्ण किया। इस असीम अनुग्रह के लिए मैं उस दिवगत आत्मा के प्रति केवल सभक्ति श्रद्धांजलि ही अर्पित कर सकता हूँ। वस्तुत: प्रस्तुत प्रबन्ध डा० कानूनगो एवं डा० यदुनाथ सरकार के आशीर्वाद का ही मूर्त रूप है।

रहीम की साहित्यिक कृतियो के विवेचन मे मुझे डा० दीनदयालु गुप्त

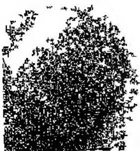
और डा० भगीरथ मिश्र से बड़ी सहायता मिली। अतः इन महानुभावों के प्रति भी विनम्र आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। राष्ट्र-कवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त ने न केवल पुस्तक-प्रकाशन की ही व्यवस्था की बल्कि आशीर्वाद-वचन भी लिखे। पुस्तक में रहीम-काव्य-संग्रह का समावेश भी उन्हीं के सुझाव का परिणाम है। श्रद्धेय "दद्दा" की इन अनुकम्पाओं के लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

काव्य-संग्रह का सम्पूर्ण श्रेय मेरे मित्र श्री मंगलनारायसिंह को है। जिस परिश्रम तथा स्नेह से रहीम की समस्त हिन्दी-संस्कृत रचनाओं का संकलन उन्होंने इस ग्रन्थ के लिए किया, उसके लिए मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ। श्रद्धेय राय कृष्णदास एवं डा० मोतीचन्द्र ने इस ग्रन्थ के लिए कतिपय चित्रों की व्यवस्था कर मुझ पर महती कृपा की। मैं इसके लिए इन दोनों का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में मैं उन महानुभावों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में प्रस्तुत प्रबन्ध-प्रणयन में मेरी सहायता की है। आशा है हिन्दी संसार इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करेगा।

नई दिल्ली
४ जनवरी, १९६१

समरबहादुरसिंह



विषय-सूची



संकेत-सूची

१	अ० ना०	अकबर नामा (अंग्रेजी अनुवाद)
२	म० र०	मआसिरे-रहीमी
३	बदायूनी	मुन्तखब-उत-तवारीख (अंग्रेजी अनुवाद)
४	त० अ०	तबकाते-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद)
५	तु० ज०	तुजुके-जहाँगीरी (अंग्रेजी अनुवाद)
६	फरिश्ता	तारीखे-फरिश्ता (अंग्रेजी अनुवाद)
७	आइन	आइने-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद)
८	इक़बाल नामा	इक़बाल नामा-ए-जहाँगीरी
९	म० उ०	मआसिर-उल-उमरा (अंग्रेजी अनुवाद)
१०	खाफीखाँ	मुन्तखब-उल-लुबाब
११	सर टामस रो	एम्बेसी आफ सर टामस रो टू दी ग्रेट मुग़ल
१२	इलियट	हिस्ट्री आफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स



प्रथम अध्याय

वंश-परिचय तथा प्रारम्भिक जीवन।

अब्दुर्रहीम खानखाना तुर्कमान (तातार) जाति का था। उसके पूर्वजों का आदि निवासस्थान अरल तथा कैस्पियन सागर की तलहटी का वह भाग था जो कराकूम रेगिस्तान से लेकर पूर्व में आमू नदी तक फैला हुआ है। इन तुर्कमानों की दो मुख्य शाखायें थीं, प्रथम अकाकूयलू अथवा सफेद मेंढ़ों के समूह वाला वर्ग, और दूसरा कराकूयलू अथवा काली मेंढ़ों के समूहवाला वर्ग। इन लोगों का कोई निश्चित घरबार न था। वे अपनी मेंढ़ों के समूह के साथ मध्य एशिया के विशाल रेगिस्तानों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे। जहाँ जीविकोपार्जन के साधन सुलभ हुए, वहीं रुक गये। वे प्रायः फ़ारस के उपजाऊ मैदानों पर छापा मारते, वहाँ के निवासियों को लूटते पाटते और फिर अपने दुर्भेद्य स्थानों में वापस चले जाते। किन्तु कालान्तर में जब मंगोलों का अभ्युदय हुआ और उनकी प्रबल सेनायें मध्य एशिया की ओर द्रुत गति से बढ़ने लगीं तो तुर्कमानों का उस भाग में रहना कठिन हो गया। कुछ समय तक तो उन लोगों ने मंगोलों को आगे बढ़ने से रोकने की चेष्टा की, किन्तु सुसंगठित मंगोल सेनाओं के सम्मुख उनकी एक न चली। अन्त में विवश होकर धीरे धीरे पश्चिम की ओर खिसकने लगे। इधर पश्चिमी एशिया में विस्तृत अरब सत्ता पारस्परिक द्वेष के कारण पहले से ही छिन्न-भिन्न हो रही थी। तुर्कमानों को सुअवसर

मिला। उन्होंने धीरे धीरे खलीफा के राज्य फारस पर पूर्ण अधिका कर लिया और सफवी वंश के राज्य-स्थापन के पूर्व तक वे उस देश शासनारूढ़ बने रहे।

अब्दुर्रहीम के पूर्वज कराकूयलू वर्ग की बहारलू शाखा के जिसमें अमीर अली शुकर बेग का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसत्र फ़ारस राज्य की ओर से जागीर मिली हुई थी और जब तक करायूसु और उसके वंशजों का राज्य फ़ारस में रहा, तब तक वह वहाँ बड़ प्रतिष्ठा से रहा। किन्तु बाद में जब उस देश की राज्यसत्त सुलतान हसन अकाकूयलू के हाथों में आ गई, जो कराकूयलू वर्ग का कट्टर विरोधी था, तो अमीर अली शुकर बेग के पु पीर अली को बाध्य होकर फ़ारस छोड़ना पड़ा और बदख़्शां के शासक सुलतान महमूद के यहाँ शरण लेनी पड़ी। सुलतान ने उ वहाँ एक नई जागीर प्रदान की। पीर अली ने फ़ारस वापस जाने के कई असफल प्रयत्न किये किन्तु बाद में जब सफवी वंशवालों क राज्य वहाँ स्थापित हो गया तो उसके पुत्र बैरक बेग ने स्वदेश लौटने का विचार बिलकुल छोड़ दिया और बदख़्शां को ह अपना नया घर बना लिया।

यही बैरक बेग हमारे चरित्र नायक के पिता सुप्रसिद्ध बैरम खाँ क पितामह था। जिस समय बैरक बेग के पुत्र सैफ़ खाँ की ग़ज़नी में मृत्यु हुई उस समय बैरम खाँ की अवस्था बहुत ही कम थी। अत उसके भरण-पोषण का भार उसकी दादी बाशा बेगम ने सँभाला सोलह वर्ष की आयु में बैरम ने मुगल शासक बाबर के यहाँ, जो एक समय काबुल का बादशाह था, नौकरी कर ली और क्रमशः अपने

स्वामिभक्ति और योग्यता के बल पर पदोन्नति प्राप्त करता गया[१]।

बैरम ख़ाँ ने हुमायूँ और अकबर दोनों ही के राज्य-कालों में मुग़ल साम्राज्य की बड़ी सेवा की। वह हुमायूँ के सुख-दुःख में सतत संगी था। चम्पानेर के सुप्रसिद्ध दुर्ग पर घेरा डालने की योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने में बैरम का प्रमुख हाथ था। हुमायूँ और शेर ख़ाँ के मध्य जो युद्ध हुए, उनमें भी बैरम बड़े पराक्रम से लड़ा। अन्त में जब प्रतिकूल परिस्थितियों से विवश होकर हुमायूँ को भारत छोड़ फ़ारस में शरण लेनी पड़ी तो वहाँ भी बैरम ने उसकी बड़ी सहायता की। यह बैरम के ही चातुर्य और कूटनीतिज्ञता का परिणाम था कि फ़ारस के शाह ने हुमायूँ को भारत में पुनः मुग़ल साम्राज्य स्थापन करने के हेतु सैनिक सहायता प्रदान की। और अन्त में जब १५५५ ई० में हुमायूँ एक बार फिर दिल्ली में सिंहासनारूढ़ हुआ तो इस कार्य को सम्पादित करने में भी बैरम का ही प्रमुख सहयोग था। वास्तव में यह अत्युक्ति न होगी कि बैरम की ही बुद्धिमत्ता और पराक्रम के फलस्वरूप भारत में बाबर के साम्राज्य की पुनःस्थापना हुई[२]।

सफल राजनीतिज्ञ तथा कुशल सैनिक होने के साथ ही बैरम कला-मर्मज्ञ, कवि और कला-उपासकों का आश्रयदाता भी था। तत्कालीन इतिहासकार बदायूनी, जो कट्टर सुन्नी था और शिया लोगों से बड़ी घृणा करता था, लिखता है कि बैरम बुद्धिमत्ता, उदारता, स्वामिभक्ति, सुशीलता और नम्रता में अपने समय का अद्वितीय

---

१ म०,२० भाग २, पृ० ६–१०; बदानी भाग २, पृ० २६६

२ बदायूनी भाग ३ पृ० २६६

व्यक्ति था। उसकी उपस्थिति वास्तव में उस युग के लिए एक गर्व की वस्तु थी[१]। ये गुण अब्दुर्रहीम को सहज ही पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुए थे।

अब्दुर्रहीम की माता जमाल खाँ मेवाती की द्वितीय पुत्री थी। मेवात के शासक पहले राजपूत थे और बाद में उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वे अपनी वीरता के लिए सारे उत्तर भारत में प्रसिद्ध थे। जमाल खाँ के चचेरे भाई हसन खाँ मेवाती ने राना संग्रामसिंह की ओर से बाबर के विरुद्ध खनवा के युद्ध में प्रमुख भाग लिया था। जब भारत की राज्य-सत्ता एक बार फिर हुमायूँ के हाथ में आई तो उसे स्थिर बनाने के लिए उसने इस वंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसे मुगलों का मित्र और समर्थक बनाना आवश्यक समझा। फलतः जमाल खाँ की बड़ी लड़की से उसने स्वयं विवाह कर लिया और छोटी का विवाह अपने स्वामिभक्त अमीर बैरम खाँ से कर दिया। बैरम की अवस्था इस समय साठ वर्ष के लगभग थी।

इस विवाह के थोड़े ही दिन पश्चात् बैरम खाँ को दिल्ली से लाहौर जाना पड़ा। वहाँ सूर वंश का अन्तिम शासक सिकन्दर जो सरहिन्द के युद्ध में बुरी तरह परास्त होने पर भी अपने शासन को भारत में पुनः स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था, उपद्रव मचा रहा था। राजकुमार अकबर भी अपने अभिभावक बैरम खां के साथ था। ये लोग सिकन्दर का दमन करने में व्यस्त ही थे कि इधर दिल्ली में हुमायूँ की मृत्यु हो गई। यह शोकजनक समाचार बैरम को पंजाब प्रान्त के गुरुदासपुर जिले में कलानौर नामक स्थान पर मिला।

१ बदायूनी भाग ३ पृ० २६६

उसने वहीं चौदह वर्षीय राजकुमार अकबर का राज्याभिषेक किया। किन्तु उस समय की परिस्थिति बड़ी ही विषम थी। पश्चिम में सिकन्दर सूर तो उपद्रव कर ही रहा था, अब पूर्व में भी एक नई आपत्ति आ खड़ी हुई। सूर वंश के एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी आदिल शाह के हिन्दू सेनापति हेमू ने हुमायूँ की आकस्मिक मृत्यु और अकबर की असमर्थता को सूर वंश के साम्राज्य के पुनः स्थापन के लिए बड़ा अच्छा अवसर समझा। उसकी विजयी सेनाएँ आगरा और दिल्ली दोनों ही को शीघ्र अपने अधिकार में करने बाद अब मुगलों को भारत की सीमा के बाहर खदेड़ने के हेतु पंजाब की ओर बढ़ीं। इस सूचना के पाते ही मुगल-शिविर में सभी के मुख पर निराशा छा गई और वे भारत से सदैव के लिए विदा होने की बात सोचने लगे। किन्तु पराक्रमी बैरम ने साहस अब भी न छोड़ा। उसने सबको समझा-बुझाकर युद्ध के लिए तैयार किया और अन्त में हेमू का मुकाबिला करने के लिए वह पानीपत के युद्धस्थल की ओर बढ़ा। बैरम की नव विवाहिता गर्भवती पत्नी उसके साथ ही थी। उसने रक्षा के हेतु उसे अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ लाहौर भेज दिया।

पानीपत के द्वितीय समर में मुगल सेना विजयी हुई और हेमू की आशाओं पर तुषार-पात हो गया। किन्तु सिकन्दर सूर ने अपना प्रयत्न अब भी न छोड़ा। अतः अकबर को अपने वजीर बैरम खाँ के साथ पुनः पंजाब जाना पड़ा। अभी ये लोग मार्ग में ही थे कि लाहौर से यह शुभ समाचार पहुँचा कि बृहस्पतिवार, १७ दिसम्बर १५५६ ई० को बैरम की पत्नी ने एक पुत्ररत्न प्रसव किया है। मुगलों ने इसे विधाता की ओर से भेजा गया एक शुभ सकुन समझा

और उन्हें विश्वास हो गया कि सिकन्दर का दमन इस बार निश्चित है। बैरम ख़ाँ के हृदयोल्लास का तो कहना ही क्या था। इतनी लम्बी अवधि की विकल प्रतीक्षा के पश्चात् निराश जीवन-संध्या में उसे उत्तराधिकारी प्राप्त हुआ था। खूब उत्सव मनाया गया, बड़ी धूम धाम से दावतें हुईं। ज्योतिषियों ने नवजात शिशु की कुंडली देखकर भविष्यवाणी की कि यह बालक कालान्तर में अपनी स्वामिभक्ति और महान सेवाओं के बल पर मुगल साम्राज्य में उच्चतम अधिकार के पदों पर आसीन होगा। इस बालक का नाम रखा गया अब्दुर्रहीम[१]।

सिकन्दर सूर अन्त में परास्त हुआ और फिर चार वर्ष (१५५६-१५६०) तक बैरम अकबर के साम्राज्य की नींव डालने और उसे यथाशक्ति सुदृढ़ करने में व्यस्त रहा। अब्दुर्रहीम के जीवन का यह प्रभात काल बड़े ही सुख और वैभव में व्यतीत हुआ। उसके पिता के पद-वैभव का यह मध्याह्न काल था। वह मुगल राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी, बादशाह का अभिभावक और साम्राज्य का सबसे अधिक शक्तिशाली स्तम्भ था। अनुगृहीत सम्राट ने उसकी अनुपम सेवाओं के उपलक्ष में उसे खानखाना का सम्मानित पद प्रदान किया था। बैरम ने भी अपने स्वामी की सेवा में अपनी प्रतिभा एवं पराक्रम का पूर्ण योग दिया। फलतः १५६० ई० तक मुगल सत्ता जो चार वर्ष पूर्व भारत में लगभग समाप्त-सी हो गई थी, पुनः एक बार सुदृढ़ आधारों पर स्थापित हो गई।

किन्तु बैरम का यह वैभव स्थायी न रह सका। उसके

---

१ अ० ना० भाग २ पृष्ठ ७१; म० र० भाग २, पृ० ३२

समकक्ष अमीर जो राज्य की सर्वोच्च सत्ता केवल उसी के हाथों में केन्द्रित नहीं होने देना चाहते थे, उससे ईर्ष्या करने लगे। दरबार में एक नई गुटबन्दी प्रारम्भ हो गई जिसका प्रधान ध्येय बैरम को अपदस्थ करना था। वास्तव में बैरम भी इसके लिए सम्पूर्ण नहीं तो अंशतः अवश्य ही उत्तरदायी था। 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'। उसने कुछ मामलों में अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया और चारों ओर यह आलोचना होने लगी कि बैरम अपने मित्रों के साथ पक्षपात कर रहा है। अकबर भी वयस्क हो चला था और अपने संरक्षक का अत्यधिक नियंत्रण उसको अब खल रहा था। एक ओर बैरम अपने अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप सहन करने को तैयार न था और दूसरी ओर बादशाह और दरबारी उसे सत्ता-विहीन करने पर कटिबद्ध थे। तनाव बढ़ता ही गया। अन्त में मामला यहाँ तक पहुँचा कि बैरम को उस साम्राज्य के विरुद्ध जिसकी सेवा में उसने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, विद्रोह करने पर विवश होना पड़ा। उसके वैभव-कालीन मित्र विपत्ति के समय उसके शत्रु बन गए। अन्त में बैरम परास्त हुआ। उदार हृदय अकबर ने उसकी मुगल वंश के प्रति की गई सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे क्षमा प्रदान की। बैरम ने बादशाह से प्रार्थना की कि उसे हज करने करने के लिए मक्का जाने की आज्ञा दी जाये। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके लिए मार्ग की सारी सुविधाओं का समुचित प्रबन्ध भी करा दिया।

बैरम ने अपने एक मात्र पुत्र अब्दुर्रहीम तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ मक्का की ओर प्रस्थान किया। गुजरात रास्ते में पड़ता था

और उस प्रान्त की तत्कालीन राजधानी पाटन में वह विश्राम के लिए रुक गया। पाटन के सूबेदार अफगान सरदार मूसा ख़ाँ-फौलादी ने उसका बड़े हर्ष से स्वागत किया[१]।

बैरम के लिए अब इस संसार में कोई आकर्षण न था। वह अपनी भावी हज् यात्रा के पश्चात् शान्तिमय जीवन की प्रतीक्षा कर रहा था। किन्तु उसके भाग्य में तो मक्का-दर्शन लिखा ही न था। उसके जीवन की इति तो पाटन ही में होने वाली थी। ३१ जनवरी १५६१ ई० की सायंकाल वह नौका-विहार के हेतु पाटन के प्रसिद्ध सहस्त्रलिंग तालाब में गया हुआ था। जल-क्रीड़ा के पश्चात् ज्यों ही वह नाव से उतर रहा था कि पीछे से एक रक्तपिपासु पठान मुबारक लोहानी ने उसकी पीठ में छुरा भोंक कर उसका काम तमाम कर दिया[२]।

इस निर्मम हत्या की मुख्य भावना थी, प्रतिकार। मुबारक लोहानी का पिता मच्छीवारा के युद्ध में १५५५ ई० में बैरम ख़ाँ की अध्यक्षता में लड़ती हुई मुगल सेना द्वारा मारा गया था और वह पठान इसी आघात का बदला लेना चाहता था। किन्तु कालान्तर में इस दोष को छिपाने के लिए यह कहानी गढ़ी गई कि मुबारक ने व्यक्तिगत नहीं अपितु जातिगत प्रतिकार की भावना से प्रेरित हो कर ऐसा किया। कहा जाता है कि शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह की काश्मीरी पत्नी से एक लड़की थी। वह भी बैरम के परिवार के साथ मक्का जा रही थी। बैरम उस लड़की का विवाह अपने

---

१ अ० ना० भाग २, पृष्ठ २००; बदायूनी भाग २, पृ० ४०

२ आ० ना० भाग, २ पृ० २००; बदायूनी भाग २ पृ० ४०

पंच वर्षीय पुत्र अब्दुर्रहीम से करना चाहता था[१]। अफगानों के लिए यह अपमान की बात थी। इसीलिए उन्हीं के षड्यन्त्र के फलस्वरूप बैरम मारा गया और उस लड़की को बैरम के परिवार से अलग करने के लिए ही उसकी हत्या के पश्चात् उसके परिवार वालों पर आक्रमण किया गया।

किन्तु यह कहानी सर्वथा मनगढ़न्त है। न तो ऐतिहासिक प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं, न सामान्य बुद्धि ही। प्रथम, इस्लाम शाह की मृत्यु अक्टूबर १५५३ में हुई और मृत्यु के एक वर्ष पूर्व से ही उसकी प्रजननेन्द्रिय में एक घातक फोड़ा हो गया था। द्वितीय, अबुल फ़ज़ल और निज़ामुद्दीन अकबर कालीन इतिहासकार के पश्चात् जिन्होंने इस कहानी को प्रचलित किया, कोई अफगान इतिहासकार इस्लाम शाह की काश्मीरी पत्नी का उल्लेख नहीं करता है। तृतीय, थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि इस्लाम शाह की काश्मीरी पत्नी से एक लड़की थी तो वह अब्दुर्रहीम के जन्म से कम से कम तीन वर्ष पूर्व ही उत्पन्न हुई होगी। बैरम ख़ाँ को अथवा उसके पुत्र को उस समय सत्तारूढ़ मुगलों के शत्रु शेरशाह की ऐसी पोती से ब्याह करके क्या सांसारिक लाभ प्राप्त होता! कदाचित् बैरम को अब भी इतनी समझ थी कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र को भारत में ही स्थान मिलेगा और यह सम्बन्ध स्थापित कर वह उसके भविष्य पर कुठाराघात न करता। सूर वंश के सम्बन्धी को मुगल राज्य में पद-प्राप्ति की कौन कहे, प्रवेश की भी आज्ञा न मिलती।

---

१ अ० ना० भाग २ पृ० २०१; म० र० भाग २ पृ० २१-२२

बैरम खाँ की हत्या करके भी रक्तपिपासु अफ़ग़ानों का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने अब्दुर्रहीम और उसके परिवार को अरक्षित देख, उनके शिविर पर आक्रमण कर दिया और खूब लूट पाट की। सौभाग्य से बैरम खाँ के कुछ स्वामिभक्त सरदार उस समय वहाँ उपस्थित थे। मुहम्मद अमीन दीवाना, बाबा जम्बूर और ख्वाजा अब्दुल मुल्क आदि व्यक्तियों ने अपनी जान की परवाह न कर किसी प्रकार इन असहायों को उन बदमाशों के क्रूर चंगुल से निकाला और बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करते, लड़ते-भिड़ते उन्हें अहमदाबाद ले आए। यहाँ उन्हें कुछ रक्षा और शरण पाने की आशा थी।

ये लोग चार महीने तक अहमदाबाद में रहे। समझ में नहीं आता था कि अब कहाँ जाँय। अन्त में बहुत सोच विचार के पश्चात् यही निश्चय हुआ कि मुगल दरबार के अतिरिक्त अन्यत्र आश्रय मिलना कठिन है, इसलिए आगरे फिर वापिस चलना चाहिए। फलतः इन्होंने आगरा को प्रस्थान किया। इसी बीच इस दुर्घटना का समाचार अकबर को मिल गया था। वह अपने अभिभावक की क्रूर हत्या से बहुत दुखी हुआ और तुरन्त शाही आदेश जारी किया कि कुछ विश्वस्त लोग अहमदाबाद जा कर अब्दुर्रहीम और उसके परिवार को आगरे लिवा लायें। यह आदेश अब्दुर्रहीम को रास्ते में मिला जिससे उनका साहस और भी बढ़ा और सितम्बर १५६१ ई० में अब्दुर्रहीम अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने बड़े स्नेह और आदर से उसका स्वागत किया। यद्यपि दरबार में अब भी कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो बैरम खाँ के जानी दुश्मन थे और उसके पुत्र को वहाँ शरण देने के विरुद्ध भी थे किन्तु अकबर ने उनकी एक न सुनी। अब्दुर्रहीम के

भव्य ललाट और आकर्षक व्यक्तित्व को देख वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने आदेश दिया कि इसका भरण-पोषण राज्य की ओर से होगा। थोड़े ही समय पश्चात् उसने उसे मिर्ज़ा ख़ाँ की उपाधि से विभूषित किया[१]।

पैतृक देन तथा दरबार में आरम्भिक शिक्षा

मिर्ज़ा ख़ाँ बचपन ही से बड़ा होनहार प्रतीत होता था। उसकी विलक्षण बुद्धि और अपूर्व प्रतिभा की छाप उसके सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों पर पड़ती थी। पिता की ओर से उसे पराक्रम, दूरदर्शिता, दानशीलता, साहित्यिक अभिरुचि और राज्य-संचालन के गुण सहज ही प्राप्त हुए थे और मातृपक्ष से उसे मिला था मेवाती ख़ानज़ादों का क्षात्र-धर्म। तुर्कमानों की परम्परागत साहस प्रियता और फ़ारस की संस्कृति भी उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में ही प्राप्त हुई थी। इन सभी गुणों का सम्मिश्रण मिर्ज़ा ख़ाँ के व्यक्तित्व में प्रारम्भ से ही परिलक्षित होता था। धर्म के विषय में मिर्ज़ा ख़ाँ पिता की ओर से शिया और माता की ओर से सुन्नी ही था। और इन दोनों के संयोग से उत्पन्न पुत्र न तो कट्टर शिया ही बना और न सुन्नी ही। उसकी धार्मिक दृष्टि कभी संकुचित नहीं रही। वास्तव में वह अकबर के राष्ट्रीय युग का आदर्श प्रतिनिधि था। उस राष्ट्रीय शासक की धर्मनीति तथा राजनीति की छाप मिर्ज़ा ख़ाँ पर लड़कपन में ही बहुत गहरी पड़ी और उस की छत्रछाया में पल्लवित और पुष्पित बालक कालान्तर में उसीकी नीति का प्रतिपादक

---

१ अ० ना० भाग२ पृ० २०२ ; म० र० भाग २ पृ० १०४ - १०५

बना। बस केवल एक अन्तर विशेष रूप से उल्लेखनीय है, और वह यह कि अकबर निरक्षर साहित्यिक था और मिर्ज़ा खाँ साक्षर ही नहीं, अपितु अपने युग का सम्मानित साहित्यकार था। किन्तु साहित्य-पिपासु दोनों ही थे समान रूप से।

दुर्भाग्य से मिर्ज़ा ख़ाँ की प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में तत्कालीन फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थों में बहुत ही कम प्रकाश डाला गया है। केवल 'मासिरे रहीमी' में ही इसका थोड़ा बहुत उल्लेख मिला है। उसके अनुसार अकबर ने मिर्ज़ा ख़ाँ को शिक्षा के लिए अन्दिजान के एक प्रसिद्ध मौलवी मुल्ला मुहम्मद अमीन को नियुक्त किया था। सम्भवतः मिर्ज़ा ख़ाँ को फारसी, अरबी और तुर्की की शिक्षा इन्हीं से मिली। आगे चलकर रहीम ने इन तीनों भाषाओं में काव्य-रचना की। इससे स्पष्ट है कि मुल्ला साहब से उसने इन भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया होगा।

मिर्ज़ा ख़ाँ में विभिन्न भाषाओं के सीखने की विलक्षण प्रतिभा थी। उसे काव्य से असीम प्रेम, कवियों को आश्रय देने का अपूर्व चाव और हिन्दी, हिन्दू तथा हिन्दुस्तान के प्रति अपार स्नेह था। समसामयिक ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में यह कहना कठिन है कि मिर्ज़ा ख़ाँ ने कब और किससे हिन्दी तथा संस्कृत का इतना परिपक्व ज्ञान, जो उसकी काव्य-रचना में स्पष्ट अंकित है, प्राप्त किया। इसमें सन्देह नहीं कि अकबरी दरबार के साहित्यिक वातावरण में ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो इन भाषाओं के धुरंधर पण्डित थे। अकबर के विशाल व्यक्तित्व ने मुगल दरबार को राष्ट्रीय दरबार में परिणत कर दिया था। 'अकबर शाही शृंगार दर्पण' ने अकबर की विशाल हृदयता की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

अब यवनों का वह युग बीत चुका था जब ब्राह्मण म्लेच्छों को देव-भाषा संस्कृत पढ़ाने में पाप समझते थे। अकबर युग में तो कट्टर सुन्नी बदायूनी और दक्षिण भारत के उच्च कुलीन पण्डित दोनों मिलकर अथर्व वेद का फारसी अनुवाद करते थे। मिर्ज़ा ख़ाँ का ऐसे वातावरण में रह कर हिन्दू संस्कृति के प्रति प्रेम प्राप्त करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। दरबार के हिन्दू विद्वानों में गंग कवि के प्रति मिर्ज़ा ख़ाँ का विशेष नैकट्य ज्ञात होता है। सम्भव है गंग से ही मिर्ज़ा ख़ाँ ने हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया हो और उसी ने बैरम के पुत्र में हिन्दी कविता के प्रति प्रेम का बीजारोपण किया हो।

राजस्थानी ग्रंथ वंश भास्कर के रचयिता सूरजमल ने तीन पृष्ठों में नवाब ख़ानख़ाना के अगाध पाण्डित्य का विशद विवेचन किया है। वह लिखता है कि ख़ानख़ाना संस्कृत के शास्त्रीय ज्ञान में भोज तुल्य था। अरबी आदि यवन भाषाओं के ज्ञान में तो वह अथाह सागर था। वह शास्त्रीय वाद विवादों का निर्णायक, काव्य-रचयिता और साथ ही पराक्रमी योद्धा भी था। सूरजमल ने यह भी लिखा है कि एक बार एक दीन ब्राह्मण ने म्लेच्छों को शाप देते हुए एक मिश्रित वाक्य में संस्कृत की षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया। ख़ानख़ाना ने, जो उस समय वहाँ उपस्थित था, संस्कृत-व्याकरण की इस अशुद्धि की ओर उस ब्राह्मण का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि शुद्ध वाक्य तब होगा जब इसमें पंचमी विभक्ति का प्रयोग हो। वह ब्राह्मण ख़ानख़ाना के संस्कृत-ज्ञान से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी फटी पुरानी पगड़ी ख़ानख़ाना के चरणों पर

डाल दी। उदार हृदय ख़ानख़ाना ने तुरन्त उसे अपने सिर पर पहिन लिया और उसे बहुत सा द्रव्य देकर उसके घर में सरस्वती और लक्ष्मी का संयोग स्थापित कर दिया। ऐसे ही अन्य दृष्टान्तों द्वारा सूरजमल ने ख़ानख़ाना के अगाध संस्कृत ज्ञान को प्रमाणित किया है[१]।

रहीम को हिन्दू-संस्कृति और धर्म का भी पूर्ण ज्ञान था। अलबरूनी और अबुल फ़ज़ल के पश्चात् रहीम ही ऐसे तीसरे मुसलमान थे जिन्होंने भारत की एक विजित जाति के साहित्य का इतना विशद तथा सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किया था। पण्डितों तथा हिन्दी-भाषी कवियों के दीर्घ कालीन निकट सम्पर्क ने उन्हें पौराणिक गाथाओं से पूर्ण परिचय प्राप्त करा दिया था। रहीम के ये दो दोहे इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं :

१ कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥

२ छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥

रहीम की हिन्दूधर्म-विषयक कविताओं के आधार पर कुछ हिन्दी साहित्यालोचकों ने तो यहाँ तक लिख डाला है कि इनको श्रीकृष्ण भगवान का इष्ट था[२]। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण इस कथन के सर्वथा विरुद्ध हैं। यह सत्य है कि रहीम बड़े ही उदारचेता थे।

---

१ वंश भास्कर, मध्य पीतिका भाग ३, पृ० २३७३-२३७४, बूंदी के राव राजा मानसिंह के दरबार में १८४१ ई० में कवि सूरजमल द्वारा लिखित।

२ मिश्रबन्धु विनोद पृ०३३०

उन्होंने हरि और राम की प्रशंसा में अनेक कवितायें की हैं और कृष्ण की भक्त-वत्सलता का उल्लेख तो बहुत बार किया है। किन्तु इतना सब होते हुए भी रहीम अपने जीवन के अन्त तक मुसलमान ही रहे। काव्य-अभिव्यंजना से कवि के आंतरिक धर्म का अनुमान लगाना वैज्ञानिक ऐतिहासिकता नहीं। इसमें धोखा भी हो सकता है। रहीम के काव्य की विशद विवेचना हम अन्यत्र एक विशेष परिच्छेद में करेंगे।

इस प्रकार सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त करता हुआ बालक मिर्ज़ा खाँ अकबर की छत्र-छाया में अपना शैशव व्यतीत कर रहा था। अकबर उसे अपने ही पुत्र अथवा यों कहिए कि अपने चचेरे भाई के समान मानता था। वह दरबार में प्रतिष्ठित शब्द 'फ़रजन्द' से सम्बोधित किया जाता था। केवल एक ही ऐसा और व्यक्ति था जिसे अकबर ने अपने आदर्शों के अनुकूल इस प्रकार पाला था और वह था मानसिंह। दोनों ही अकबर की आशानुकूल साम्राज्य के दो बलशाली स्तम्भ प्रमाणित हुए। अकबर मिर्ज़ा खां की योग्यता से इतना प्रभावित था कि आगे चल कर उसने उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी सलीम (जहाँगीर) का अभिभावक नियुक्त किया।

दरबारी जीवन, विवाह और संतान

अकबर के विश्वस्त इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने मिर्ज़ा खाँ के शैशव कालीन गुणों की बड़ी प्रशंसा की है। वह लिखता है कि बादशाह इस बालक से बहुत अधिक प्रभावित था और उसे अधिकांश समय अपनी सेवा ही में रखता था। उसे कई ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपे जाते जो किसी नौसिखिए को नहीं दिये जा सकते थे, किन्तु

इस सभी में मिर्ज़ा खाँ अपनी सहज प्रतिभा द्वारा सफल निकलता था[१]। युवक बादशाह की दृष्टि में इस बालक को प्रति दिन ऊँचा उठते देख दरबार के कुछ पुराने अमीर जो बैरम खाँ के घोर शत्रु थे, इससे बहुत जलते थे। उन्हें आशंका होने लगी कि यह बालक भी अपने पिता की भाँति शक्तिशाली बन कहीं बादशाह को मुट्ठी में न कर ले। विशेषतः माहम अंगा के दल के लोगों की आँखों में, जिन्होंने बैरम खाँ को अपदस्थ करने में प्रमुख भाग लिया था, मिर्ज़ा खाँ की उत्तरोत्तर उन्नति काँटे की तरह चुभ रही थी। अकबर उनकी हृदयगत भावनाओं को खूब समझता था किन्तु उन्हें नाराज भी नहीं करना चाहता था। अतः उसने कूटनीति से काम लिया। उसने मिर्ज़ा खाँ का विवाह उसी दल के एक प्रमुख अमीर मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका की बहन माह बानो बेगम से कर दिया। अज़ीज़ कोका बादशाह की धाय का बेटा था और दोनों के बीच दूध की नदी बहती थी। अकबर की चाल सफल हुई। इस वैवाहिक सम्बन्ध के पश्चात् सारे अातका खैलों का समूह मिर्ज़ा खाँ का न केवल शुभचिन्तक ही बन गया अपितु उन्होंने उसकी उन्नति में पूर्ण योग भी दिया।

अब्दुर्रहीम के यों तो तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार कई स्त्रियाँ थीं किन्तु माह बानो बेगम ही अपने जीवन के अन्त तक उसकी प्रधान बेगम थी। उसके गर्भ से रहीम के तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। कहते हैं कि माह बानो से विवाह होने के कई वर्ष बाद तक रहीम के कोई सन्तान न हुई जिससे वह स्वभावतः कुछ चिन्तित रहा करता था। एक दिन जब वह गुजरात में था, अकबर ने

---

१ म० उ० भाग २, पृ० १०२; आइने अकबरी भाग १, पृ० ३३४

अबुल फ़ज़ल से कहा कि ख़ानख़ाना को लिख दो कि मुझे कुछ ऐसी दैवी सूचना मिली है कि उसे शीघ्र ही तीन पुत्र होंगे और वह इनका नाम क्रमशः इरीज, दाराब और करन रखे[१]। अकबर की भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य निकली।

रहीम के सबसे ज्येष्ठ पुत्र मिर्ज़ा इरीज ने भी अपने पिता की भाँति अकबर तथा जहाँगीर के राज्यकालों में मुग़ल साम्राज्य की बड़ी सेवा की। वह अपने सब भाइयों से अधिक योग्य और प्रतिभा-सम्पन्न था। उसके तथा उसके पिता के रूप तथा गुणों में इतना साम्य था कि लोग उसे 'जवान ख़ानख़ाना' कहा करते थे। मुख्यतः उसने दक्षिण के युद्धों में विशेष पराक्रम दिखलाया। उसके शौर्य से प्रसन्न हो कर अकबर ने उसे 'बहादुर' और बाद में जहाँगीर ने 'शाह नवाज़ ख़ाँ' के सम्मानों से विभूषित किया। किन्तु अत्यधिक मदिरा-पान के फलस्वरूप उसकी तैतीस वर्ष की अवस्था में ही मृत्यु हो गई। रहीम के द्वितीय पुत्र दाराब ख़ाँ ने भी दक्षिण में बड़ी वीरता प्रदर्शित की। वह जहाँगीर द्वारा कई बार सम्मानित भी किया गया किन्तु खुर्रम की ओर से साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह में सक्रिय भाग लेने के कारण अन्त में बन्दी हुआ और महावत ख़ाँ ने बड़ी क्रूरता से उसकी हत्या कर डाली। तीसरा पुत्र करन जो दाराब से नौ वर्ष छोटा था, बचपन ही में मर गया। रहीम की एक लड़की जाना बेगम का विवाह अकबर के पुत्र दानियाल से हुआ था और दूसरी का 'फरहंग जहाँगीरी' के प्रसिद्ध लेखक के पुत्र मीर अमीनुद्दीन से। किन्तु अभाग्यवश दोनों का सुहाग अल्पकालीन ही रहा और दोनों ही यौवनावस्था में विधवा हो गई थीं।

---

१ आ० ना० भाग ३, पृ० ५८२

इन पाँच संतानों के अतिरिक्त रहीम के तीन पुत्र और भी थे जो उसको अन्य स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनमें से एक का नाम रहमान दाद था जो कि अमर कोट की सौधा जाति की एक लड़की से पैदा हुआ था। दूसरा मिर्ज़ा अमरुल्ला एक दासी से उत्पन्न हुआ था। तीसरे का नाम था हैदरकुली उर्फ़ हैदरी। रहीम इससे बहुत ही अधिक प्यार करता था, किन्तु यह भी बचपन ही में मर गया।

मिर्ज़ा खाँ की मुग़ल राज्य में प्रारम्भिक सेवायें।

अकबर मिर्ज़ा खाँ को दरबार में तो अपने साथ रखता ही था किन्तु जब वह कहीं बाहर जाता तो वहाँ भी उसे वह अपने संग ले जाता था। जब १५७२ ई० में सम्राट गुजरात-विजय के हेतु प्रथम बार गया तो मिर्ज़ा खाँ को भी अपने साथ ले गया। पाटन पहुँचने पर उसको अपने अभिभावक बैरम खाँ का, जो कुछ समय पूर्व वहीं मारा गया था, स्मरण हो आया और उसने यह इच्छा प्रकट की कि पाटन की जागीर मिर्ज़ा खाँ को प्रदान कर दी जाय। किन्तु फिर अकबर ने सोचा कि मिर्ज़ा खाँ अभी अल्प वयस्क बालक है और पाटन का प्रबन्ध उसके लिए श्रम साध्य होगा, अतः उसने उस समय यह विचार भविष्य में कार्यान्वित करने के लिए स्थगित कर दिया।

गुजरात विजय किया गया और खान आज़म को वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर अकबर मिर्ज़ा खाँ के साथ फ़तेहपुर सीकरी वापस चला आया। किन्तु बादशाह के पीठ फेरते ही गुजरात में फिर उपद्रव शुरू हो गया। मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा और इख़्तियारुलमुल्क

हब्शी के नेतृत्व में गुजरातियों ने मुग़ल सूबेदार को राजधानी के नगर में घेर लिया और गुजरात को पुनः येन-केन-प्रकारेण स्वतन्त्र करने की चेष्टा करने लगे। जब अकबर को यह चिन्ताजनक समाचार प्राप्त हुआ तो उसने तुरन्त कतिपय चुने हुए व्यक्तियों के साथ जिसमें एक मिर्ज़ा ख़ाँ भी था, गुजरात की ओर कूच किया। रेगिस्तान और जंगलों को पार करता हुआ तीव्र गति से वह आगे बढ़ा और नौ दिन की लगातार यात्रा के पश्चात् सितम्बर १५७३ ई० में वह अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे पर पहुँच गया। गुजरातियों को पहले तो विश्वास ही न हुआ कि अकबर स्वतः आया है, कारण कि बाग़ियों के गुप्तचरों ने अभी अभी यह समाचार उन्हें दिया था कि बादशाह सीकरी के निकट आखेट में निमग्न है। किन्तु जब उन्हें वास्तविकता का प्रामाणिक ज्ञान हो गया तो वे युद्ध की तैयारी करने लगे।

अकबर ने भी अपनी सेना को परम्परा के अनुसार विभिन्न पक्षों में विभाजित किया। मिर्ज़ा ख़ाँ को सेना के मध्य भाग के अध्यक्ष का सबसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण पद मिला। यद्यपि शत्रु-सेना संख्या में बहुत अधिक थी फिर भी विजय मुग़लों की ही हुई और गुजरात पुनः उपद्रवकारियों के चंगुल से मुक्त हो कर मुग़ल राज्य का अंग बन गया।

सेना के मध्य भाग का अध्यक्ष नियुक्त किया जाना मिर्ज़ा ख़ाँ के लिए वास्तव में बड़े गौरव और गर्व की बात थी। युद्ध-क्षेत्र में सक्रिय भाग लेने का उसके जीवन में यह सर्व प्रथम अवसर था। वह स्थान विशेषतः सर्वोच्च सेनापति को ही मिलता था और इसका

पदाधिकारी 'शाहे लश्कर' कहलाता था। यद्यपि अकबर उस समय स्वतः युद्ध-स्थल में उपस्थित था और मुग़लों की विजय-श्री उसी के साहस और बल पर प्राप्त हुई फिर भी मिर्ज़ा ख़ाँ की इस नियुक्ति से स्पष्ट है कि अकबर उस सत्रह वर्षीय बालक के सैनिक गुणों से अवश्य ही बहुत अधिक प्रभावित हुआ होगा और तभी उसे ऐसा पद दिया गया होगा।

इस घटना के तीन वर्ष पश्चात् १५७६ ई० में मिर्ज़ा ख़ाँ की नियुक्ति गुजरात के प्रान्तपति पद पर हुई। खान आज़म को वापस बुला लिया जाने पर यह स्थान रिक्त हुआ था और अकबर ने मिर्ज़ा ख़ाँ को ही इस पद के लिए उपयुक्त समझा। बादशाह ने उसे चार हज़ारी मनसब दे कर कुछ अनुभवी सरदारों को जिनमें वज़ीर ख़ाँ, मीर अलाउद्दौला और प्रयागदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, साथ कर दिया जो कि उस अनुभवहीन किन्तु प्रतिभाशाली युवक को विषम परिस्थितियों में उचित परामर्श दें। वास्तव में यह पद मिर्ज़ा ख़ाँ को गौरवान्वित करने के लिए ही दिया गया था और उसके सलाहकार ही उसके नाम पर शासन करते थे। ऐसा उस समय उचित भी था, कारण कि गुजरात प्रान्त अब भी विद्रोहियों का अड्डा बना हुआ था और आए दिन वहाँ विभिन्न प्रकार के उपद्रव हुआ करते थे। मिर्ज़ा ख़ाँ को शासन-कला का अभी न तो समुचित ज्ञान ही था और न अनुभव ही। अतः अनुभवी परामर्शदाताओं की उपस्थिति वहाँ नितान्त आवश्यक थी।

मिर्ज़ा ख़ाँ की इस नियुक्ति के थोड़े दिन पश्चात् ही अकबर ने उसे पुनः वापस बुला लिया। मार्ग ही में, सितम्बर १५७६ ई० में, उसकी सम्राट से, जो प्रसिद्ध सन्त ख़्वाजा मुईनुद्दीन की समाधि पर

श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा था, भेंट हुई। मिर्जा खाँ के गुजरात से वापस बुला लिये जाने का मुख्य कारण यह था कि अकबर उसे उस समय के प्रसिद्ध सेना नायकों के साथ युद्ध-स्थलों में भेजकर रण-कौशल की क्रियात्मक शिक्षा देना चाहता था। ऐसा अवसर भी शीघ्र ही मिल गया। दूसरे ही वर्ष अविजित राजपूत शासक राणा प्रतापसिंह का पीछा कर उसे बन्दी करने के हेतु बादशाह ने राजा भगवानदास और कुँअर मानसिंह को राजपूताने की ओर भेजा। राणा प्रताप हल्दी घाटी की पराजय के पश्चात् जून १५७६ ई० में स्वदेश त्याग कर दक्षिणी पहाड़ियों के दुर्गम जंगलों में चला गया था और मुग़लों के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी अभी वह पकड़ा न जा सका था। इन राजपूत सेना नायकों के साथ मिर्जा खाँ भी राणा के विरुद्ध भेजा गया[१]। इस बार मुग़लों को आंशिक सफलता तो मिली किन्तु वीर राणा अब भी अविजित ही रहा। शत्रु-आगमन का समाचार पाते ही वह अपने शरण के स्थान गोगंदा को मुग़लों की कृपा पर छोड़ आगे बढ़ा और इस बार सैनिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण और सुरक्षित कोमलमेर के पहाड़ी किले में जा कर वहीं से शत्रु के विरुद्ध कार्यवाही करने लगा। किन्तु साम्राज्यवादी अकबर यह कैसे सहन कर सकता था। भला म्यान में कहीं दो तलवारें रह सकती हैं। राणा प्रताप का बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण अथवा उसका समूल विनाश यही दो उपाय थे जो इस झगड़े का अंत करते। किन्तु अभी तक दो में से एक भी न हो पाया था। अतः अकबर ने एक बार फिर कुछ

१ अ० ना० भाग ३ पृ० २७७

विश्वस्त और अनुभवी सरदारों की अध्यक्षता में अपने सैनिकों को राजपूताने की ओर भेजा और उन्हें आदेश दिया कि वे येन-केन-प्रकारेण राणा को अवश्य बन्दी बनावें और उसके राज्य को तहस-नहस कर दें। इनके साथ भी मिर्ज़ा ख़ाँ भेजा गया[१]। शाहबाज ख़ाँ के नेतृत्व में मुगल सेना ने ४ अप्रेल १५७८ ई० को राणा के अभेद्य दुर्ग कोमलमेर को घेर लिया। राणा बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु अन्त में जब उसने देखा कि भाग्य ही उसके विपरीत है, तो मध्यरात्रि की वेला में वह क़िले से निकला और किसी प्रकार लुकता-छिपता फिर दुर्गम पर्वत-मालाओं के मध्य पहुँच गया। अकबर का मंतव्य इस बार भी पूरा न हो सका।

मिर्ज़ा ख़ाँ को मुगल सेनाध्यक्षों के साथ रहते हुए युद्ध-कला का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव हो ही रहा था किन्तु उसका हितैषी अकबर उसे शासन-कला से भी विज्ञ कराना चाहता था। प्रचलित प्रथा के अनुसार उच्च पद के योग्य वही व्यक्ति समझा जाता था जो युद्ध और शासन दोनों ही कलाओं में प्रवीण हो। चार वर्ष पूर्व मिर्ज़ा ख़ाँ गुजरात का राज्यपाल अवश्य नियुक्त हुआ था किन्तु वह पद उसे मुख्यतः प्रतिष्ठित करने के लिए ही दिया गया था। वास्तविक शासन-भार तो उसके मुख्य परामर्शदाता और अधीनस्थ वज़ीर ख़ाँ के हाथ में था जो उसकी अनुपस्थिति में उसके नाम पर शासन करता था। मिर्ज़ा ख़ाँ अब वयस्क हो चला था और उसे स्वतंत्र रूप से शासन-कार्य देने में अकबर को कोई हिचक न थी। अतः उसने उसे १५८० ई० में मीर अर्ज़ के पद पर नियुक्त किया।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ३३६

मीर अर्ज़ का पद बड़े ही गौरव तथा उत्तरदायित्व का पद था। अकबर-काल में यह पद उतना ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता था जितना बादशाह के अन्तःपुर के अध्यक्ष का पद, या किसी दूरस्थ प्रान्त की सूबेदारी, या दिल्ली की सूबेदारी। इस ओहदे पर अभी तक किसी की अलग से नियुक्ति नहीं होती थी। राज्य का कोई विश्वसनीय अधिकारी सप्ताह में एक दिन के लिए अपने कार्य से बुला लिया जाता और उसे यह कार्य सौंप दिया जाता था। फिर दूसरे दिन दूसरा कोई बुला लिया जाता। किन्तु यह प्रबन्ध संतोषजनक नहीं सिद्ध हुआ। कारण कि मीर अर्ज़ का ही कार्य एक व्यक्ति के लिए, जिसके ऊपर अन्य कोई कार्य-भार न हो, पर्याप्त था। अन्य अधिकारी अपने ही कार्यों से अवकाश न पाते तो भला यह काम सुचारुरूप से कैसे करते। फिर उनमें से कुछ ऐसे भी थे जो भ्रष्टाचारी और घूसखोर भी थे। जिस दिन मीर अर्ज बने कि उनकी बन आई। जो उनकी जेब गरम करें उनके प्रार्थना पत्र तो सम्राट तक पहुँचें और जो न करें उनकी कोई सुनवाई ही नहीं होती थी। अकबर को यह तथ्य ज्ञात हो गया था और वह इस पद के लिए एक ऐसे व्यक्ति की खोज में था जो असंदिग्ध आचरणवाला, सुयोग्य और कुलीन हो और जिस पर अन्य विभाग के कार्यों का विशेष भार न हो। मिर्ज़ा खाँ उसे सर्व प्रकार इस पद के लिए उपयुक्त प्रतीत हुआ अतः उसने इस नवनिर्मित पद पर उसी की नियुक्ति की[१]।

मीर अर्ज़ के ओहदे की जिम्मेदारियाँ भी बहुत बड़ी थीं। उसे बादशाह तथा जनता दोनों का विश्वासपात्र बनना था। किसी को भी

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ४२६

उसके आचरण तथा निष्पक्षता में तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिए था। उसे प्रार्थी के उचित निवेदनों को निःस्वार्थ भाव से उपयुक्त समय पर सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत करना और उनका उत्तर प्राप्त कर उन्हें प्रार्थी तक पहुँचाना पड़ता था। उसमें परिचित या अपरिचित, मित्र तथा शत्रु का तनिक भी भेद भाव नहीं होना चाहिए था और इन सबके अतिरिक्त उसका यह भी कर्त्तव्य था कि जिन व्यक्तियों को आशानुकूल उत्तर न प्राप्त हुआ हो, उन्हें समझा बुझा कर धीरज दे और उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित करे कि वे अपनी प्रार्थना फिर कभी सम्राट के सम्मुख उपस्थित करें। चौबीस वर्ष की आयु में इतने महान उत्तरदायित्व के पद पर मिर्ज़ा खाँ की नियुक्ति वास्तव में उसके लिए गर्व की वस्तु थी।

किन्तु मिर्ज़ा खाँ के इस पद की अवधि भी अल्पकालीन ही रही। वह अपनी इस नियुक्ति का कार्य-भार सँभाल ही रहा था कि इसी बीच अजमेर से यह चिन्ताजनक समाचार पहुँचा कि वहाँ उपद्रवकारियों ने बड़ा ऊधम मचा रखा है। मुगल गवर्नर दस्तम खाँ ने उनके दमन की बड़ी चेष्टा की किन्तु अन्त में वह असफल रहा और एक कछवाह राजपूत अचलसिंह के हाथों मारा गया। बादशाह ने तुरन्त मिर्ज़ा खाँ को मीर अर्ज़ के कार्य भार से मुक्त कर उसे अजमेर का सूबेदार बना वहाँ भेजा जिससे विद्रोहियों का शीघ्र ही दमन हो सके। साथ ही रणथम्भौर जो उस प्रान्त का ही एक भाग था, उसे व्यक्तिगत जागीर के रूप में दिया गया।[१]

अजमेर में मिर्ज़ा खाँ अभी एक वर्ष भी न रह पाया था कि

---

१ अ० ना० भाग ३ पृ० ४८०

बादशाह ने उसे दरबार में फिर वापस बुला लिया और इस बार उसे युवराज सलीम का शिक्षक 'अतालीक' नियुक्त किया। सलीम अकबर का उत्तराधिकारी था और बादशाह उसे ऐसे पथ प्रदर्शक की संरक्षता में रखना चाहता था जो उसे उसके भावी दायित्वों को सफलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए सुचारु रूप से शिक्षित कर सके। राजकुमार बारह वर्ष का हो चला था और अभी तक उसकी शिक्षा का संतोषप्रद प्रबन्ध न हो पाया था। अकबर जानता था कि यही समय है जब कि उसे उचित साँचे में ढाला जा सकता है। इसके पूर्व उसने कुतबुद्दीन को सलीम का शिक्षक नियुक्त किया था किन्तु वह इस समय गुजरात का प्रान्तपति था और उस अशान्त प्रान्त से उसे बुला लेना विद्रोहियों को निमंत्रित करना था। अंत में बहुत सोच विचार के पश्चात् बादशाह ने १५८२ ई० में मिर्जा खाँ को अजमेर से बुला कर यह जिम्मेदारी सौंपी। सम्मानित युवक ने इस अवसर पर एक बहुत बड़े प्रीतिभोज का आयोजन किया जिसमें सम्राट ने भी प्रसन्नता पूर्वक भाग लिया और अपने पुत्र के शिक्षक को कई बहुमूल्य उपहार दिए। मिर्जा खाँ की धर्मपत्नी को भी उसके पति की इस नियुक्ति में हाथ बँटाने का काम सौंपा गया और बादशाह ने उसे भी एक वस्त्र विशेष उपहार में देकर गौरवान्वित किया[१]। सलीम के शिक्षक के पद के साथ मिर्जा खाँ को अताबेगी का भी पद मिला जिसमें उसका कार्य था शाही अस्तबल के घोड़ों की व्यवस्था की देख भाल करना[२]। यह भी एक महत्वपूर्ण पद था और

---

१ अ० ना० भाग ३ पृ० ३८३; म० उ० भाग २ पृ० १०५; इकबाल नामा, पृ० ३८७-३८८

२ अ० ना० भाग० ३ पृ ३८५; आइन भाग १, पृ० १३७।

केवल उच्च कोटि के अमीर ही इस पर नियुक्त किये जाते थे।

युवराज सलीम को शिक्षा देना और उसे नियंत्रण में रखना मिर्जा खाँ के लिए एक कठिन समस्या थी। यह उसकी योग्यता, धैर्य और कार्य क्षमता का परीक्षण काल था। सलीम निस्संतान सुलतान सलीमा बेगम का दत्तक पुत्र और बूढ़ी हमीदाबानो का पोता था और वह दोनों ही बेगमों की आँखों का तारा था। यहाँ तक कि अकबर भी उसे नहीं डाँट सकता था। उनके अत्यधिक लाड़ प्यार ने उसे इतना बिगाड़ दिया कि न वह पढ़ने में मन लगाता और न अध्यापकों का कहना ही मानता। बदायूनी के लेख से स्पष्ट है कि अपने समय का सर्वोत्कृष्ट विद्वान अबुल फजल भी जो सलीम का सर्वप्रथम शिक्षक नियुक्त हुआ था, अपने शिष्य को पढ़ाने में असफल रहा। मिर्जा खाँ जो मानव स्वभाव का सूक्ष्म पारखी और अबुल फ़जल से सांसारिक बातों में अधिक चतुर था, कदाचित सफल हुआ। क्योंकि सलीम जब जहाँगीर के नाम से बादशाह बना और उसने अपनी आत्म-कथा 'तुजुके जहाँगीरी' लिखनी आरम्भ की तो उसमें उसने अपने पूर्व अतालीक के विरुद्ध कुछ विशेषरूप से नहीं लिखा यद्यपि राज्य के पुराने भेड़ियों में उसकी भी गिनती की गई। कुछ भी हो, मिर्ज़ा खाँ के भाग्य ने साथ दिया और इसके पूर्व कि वह असफलता और अपयश का पात्र बने बादशाह ने दूसरे वर्ष ही उसे गुजरात में विद्रोह दमन के लिए भेजी जाने वाली सेना का अध्यक्ष नियुक्त कर वहाँ भेज दिया।

द्वितीय अध्याय

गुजरात की सूबेदारी (१५८३–१५८७)।

भारत की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर स्थित गुजरात प्रान्त मुग़ल साम्राज्य के लिए रक्षा तथा व्यापार दोनों ही दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण था। १५३५ ई० में हुमायूँ ने उसे जीता था किन्तु उसका अधिकार वहाँ स्थायी न रह सका। जब अकबर गद्दी पर बैठा तो प्रारम्भ से ही उसकी यह अभिलाषा थी कि किसी भी प्रकार उसको यह बहुमूल्य पैतृक सम्पत्ति वापस मिले। भाग्य ने उसका साथ दिया। १५७२ ई० में गुजरात के प्रमुख सरदार और अल्पवयस्क शासक मुजफ्फर शाह तृतीय के संरक्षक एतमाद ख़ाँ ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों से तंग आकर अकबर से सहायता की याचना की। बादशाह तुरन्त उसकी प्रार्थना स्वीकार कर गुजरात गया और बिना किसी विशेष प्रतिरोध के सारे प्रान्त पर अधिकार कर लिया। अन्त में एतमाद ख़ाँ ने भी प्रलोभन में आकर आत्म-समर्पण कर दिया और उसे मुग़ल अमीरों में सम्मानपूर्ण स्थान मिला। उसका स्वामी मुज़फ्फ़र बन्दी बना कर आगरे लाया गया और वहाँ शाही पहरेदारों की देख रेख में रखा गया।

किन्तु अकबर अपनी राजधानी में लौटा ही था कि गुजरात में फिर से उपद्रव आरम्भ हो गया। विप्लवकारियों ने प्रान्त के विभिन्न भागों में शीघ्र ही अपनी सत्ता पुनः स्थापित कर ली और अब अहमदाबाद पर आक्रमण कर मुग़ल सूबेदार को चारों ओर से घेर लिया। नवयुवक बादशाह ने इस सूचना के पाते ही फतेहपुर सीकरी से तुरन्त कूच किया और छः सौ मील लम्बा रास्ता केवल नौ

दिनों में तय कर अहमदाबाद पहुँच गया। विद्रोहियों के सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये और बादशाह ने उन्हें बुरी तरह परास्त कर सारे प्रान्त पर फिर अपना अधिकार कर लिया। शान्ति की व्यवस्था कर और शहाबुद्दीन ख़ाँ को वहाँ का नया सूबेदार नियुक्त कर अकबर अपनी राजधानी लौट आया। जैसा पहले उल्लेख हो चुका है, मिर्ज़ा ख़ाँ दोनों ही बार की गुजरात-यात्राओं में बादशाह के साथ था।

शहाबुद्दीन चतुर तथा अनुभवी राजनीतिज्ञ था। वह उस दल का एक प्रमुख सदस्य था जिसने बैरम ख़ाँ के पतन के पश्चात् कुछ वर्षों तक माहम अंगा के नेतृत्व में अकबर के शासन की बागडोर अपने हाथों में रखी थी। वह इस बात को खूब समझता था कि बादशाह ने जानबूझ कर उसे गुजरात का सूबेदार इसलिए नियुक्त किया है कि या तो वह विद्रोहियों का समूल विनाश करे या उन्हीं के हाथों वहीं उसकी जीवन लीला भी समाप्त हो जाय। स्पष्टतः अकबर अब इन प्रभावशाली अमीरों के चंगुल से मुक्त हो स्वतंत्र रूप से शासन करना चाहता था। किन्तु उनकी शक्ति और प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि वह उन्हें निकालने में भी असमर्थ था। अतः वह उन्हें अपने से दूर ही रखने में कल्याण समझता था। इन अमीरों में शहाबुद्दीन ख़ाँ और मुनीम ख़ाँ प्रमुख थे। इसलिए पहले को तो उसने विद्रोहियों से आक्रान्त गुजरात प्रान्त दे रखा था और दूसरे को जौनपुर भेज दिया था जहाँ बिहार और बंगाल के अफ़गान आये दिन बड़ा उपद्रव मचाते रहते थे।

शहाबुद्दीन ने भी कूटनीति से काम लिया। उसने देखा कि ऐसे तो विद्रोहियों का दमन सम्भव नहीं इसलिए उन्हें प्रसन्न कर

अपना मित्र बनाना चाहिए। फलतः उसने उनमें से अधिकांश को अपनी नौकरी में भरती कर लिया। अकबर को यह नीति पसन्द न आई और उसने सूबेदार को ऐसा करने से मना किया, किन्तु शहाबुद्दीन ने बादशाह के आदेशों पर बिलकुल ध्यान न दिया। इसी बीच १५७८ ई० में गुजरात का भूतपूर्व शासक मुजफ्फर शाह तृतीय किसी प्रकार मुगलों की क़ैद से निकल भागा। पहले तो वह राजपीपला गया फिर बाद में अपने ननिहाल काठियावाड़ जाकर रणप्रिय काठियों के सहयोग से अपनी खोई हुई प्रभुता को पुनः प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। शहाबुद्दीन ने उसके विरुद्ध भी कड़ी नीति से काम न लिया। अब अकबर को आशंका होने लगी कि बुड्ढा अमीर उसके साथ विश्वासघात कर रहा है। १५८० ई० से १५८३ ई० तक का काल अकबर के लिए बड़ा ही संकटपूर्ण था। उसकी उदार धार्मिक नीति और सैनिक सुधारों से असन्तुष्ट हो कर मुग़ल अधिकारियों ने बंगाल में खुलेआम विद्रोह कर रखा था। इधर दरबार में भी मुल्ला लोग तथा अन्य कट्टर अमीर बादशाह के विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यंत्र रच रहे थे। अकबर ने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि शहाबुद्दीन भी मुजफ्फर के समर्थकों से मिल कर उसके विरुद्ध विद्रोह कर बैठे। उसकी दृष्टि इस समय एतमाद खाँ पर गई जो पहले गुजरात का एक शक्तिशाली सरदार और अब मुग़ल राज्य की सेवा में था। उसने सोचा कि एतमाद ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसे गुजरात की राजनीति का पूर्ण अनुभव है और जिस पर ऐसे संकटकाल में पूरा भरोसा भी किया जा सकता है। अतः उसने एतमाद को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया और आदेश दिया कि

शहाबुद्दीन एतमाद के पहुँचने पर उसे अपना कार्य-भार दे कर वापस चला आवे।

एतमाद ने अहमदाबाद पहुँच अपनी नई नियुक्ति का दायित्व सँभाला किन्तु बादशाह की आज्ञानुसार उसने शहाबुद्दीन द्वारा नियुक्त गुजराती सैनिकों को अपनी सेवा में रखने से इनकार कर दिया। इस पर उन जीविकाविहीन लोगों में बड़ा असंतोष फैला। अपने निर्वाह का अन्य कोई साधन न पा वे फिर उपद्रव करने पर उतारू हो गए। उन्होंने मुज़फ्फ़र को काठियावाड़ से निमंत्रित किया कि वह मुग़ल सत्ता को हटा कर गुजरात में फिर अपने पूर्वजों का राज्य स्थापित करे और उसे यह आश्वासन दिया कि वे इस कार्य में उसको पूर्ण योग देंगे।

मुज़फ्फ़र तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा ही कर रहा था। तुरन्त काठियों, राजपूतों और उस प्रायद्वीप की अन्य लूटमार करने वाली जातियों की एक विशाल सेना सुसंगठित कर अहमदाबाद की ओर बढ़ा। सारा गुजरात उसके पक्ष का समर्थन करने को उद्यत था। जब यह सूचना एतमाद को मिली तो वह अहमदाबाद की रक्षा का भार अपने कुछ विश्वस्त अधिकारियों पर छोड़, स्वयं शहाबुद्दीन से सहायता की याचना के हेतु राजधानी से चालीस मील दूर स्थित करी नामक स्थान की ओर चला जहाँ कि अवकाश प्राप्त मुग़ल सूबेदार डेरा डाले पड़ा था। किन्तु वे अभी सम्मिलित मोर्चे की योजना पर विचार विमर्श कर ही रहे थे कि इतने में मुज़फ्फ़र ने अहमदाबाद पर आक्रमण कर दिया। मुग़ल सैनिकों ने उसे रोकने की चेष्टा की किन्तु गुजरातियों की विशाल सेना के समक्ष वे मुट्ठी भर लोग कर ही क्या सकते थे। ४ अप्रैल, १५८३ ई० को विजयी मुज़फ्फ़र ने

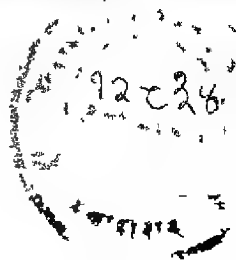
राजधानी में प्रवेश किया। शहाबुद्दीन तथा एतमाद ने मिल कर अपनी लाज बचाने के लिए एक बार फिर गुजरातियों से युद्ध किया किन्तु उनके पारस्परिक मतभेद के कारण उनकी पराजय तो पूर्व निश्चित ही थी। रक्षा का अन्य मार्ग न देख मुग़लों ने अहमदाबाद त्याग पाटन में आकर शरण ली। गुजरात में मुग़ल सत्ता प्रायः लुप्त ही हो गई और मुज़फ़्फ़र एक बार फिर अपने पूर्वजों के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

मिर्ज़ा खाँ की गुजरात के राज्यपाल पद पर नियुक्ति

गुजरात से प्राप्त इन समाचारों ने अकबर को बहुत चिन्तित कर दिया। वह द्विविधा में पड़ गया कि अब किसे उस उपद्रवी प्रान्त में भेजे। यों तो दरबार में कितने ही वयोवृद्ध अमीर थे जिन्हें युद्ध और शासन दोनों का पर्याप्त अनुभव था और जो शाही सेना के साथ वहाँ विद्रोह-दमन के हेतु भेजे जा सकते थे, किन्तु उनमें कुछ ही ऐसे थे जिन पर वह ऐसे संकट-काल में भरोसा करता। अन्त में उसकी दृष्टि मिर्ज़ा खाँ पर गई। उसने सोचा कि मिर्ज़ा खाँ गुजरात में कुछ समय तक रह चुका है और वहाँ की समस्याओं को भली भाँति समझता है। वह उसका विश्वासपात्र तो था ही, अतः उसने उसी को इस कार्य के लिये विशेष उपयुक्त समझ एतमाद के स्थान पर गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया[१]।

अकबर खूब समझता था कि जिस गुरुतर पद का दायित्व उसने इस अट्ठाइस वर्षीय युवक को सौंपा है, उसका सफलतापूर्वक निर्वाह

१ म० र० भाग २, पृ० २६२



वह तभी कर सकेगा जब उसे वांछित सहायता और सहयोग प्राप्त हो। अतः उसने इसका पूर्ण प्रबन्ध किया। दरबार के कतिपय विश्वसनीय एवं अनुभवी राजपूत और सैयद अफ़सरों को आज्ञा दी गई कि वे मिर्ज़ा खाँ के साथ गुजरात जाकर उसे आगामी कार्य में पूर्ण योग दें। इनमें सैयद कासिम, सैयद हाशिम, राय दुर्गा सिसोदिया और राय लोन-करन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अजमेर प्रान्त के सामन्तों को आदेश भेजा गया कि वे भी अपनी सेनाएँ लेकर मिर्ज़ा खाँ के साथ जायँ। यह निश्चय हुआ कि मुख्य सेना तो मिर्ज़ा खाँ की अध्यक्षता में जालौर होते हुए सीधे पाटन चले और सूरत के जागीरदार कुलीज खाँ तथा एक अन्य सरदार नौरंग ख़ाँ मालवा जाकर वहाँ के सारे सामन्तों को साथ ले नवीन राज्यपाल से पाटन में मिलें। बड़ौदा के हाकिम कुतबुद्दीन खाँ को भी आदेश भेजा गया कि आवश्यकता पड़ने पर वह भी मिर्ज़ा खाँ की सहायता के लिए तैयार रहे[१]।

किन्तु उधर मिर्ज़ा खाँ के पहुँचने के पहले ही मुजफ़्फ़र ने अपनी स्थिति और भी सुदृढ़ कर ली थी। अहमदाबाद और उसके निकटस्थ क्षेत्रों को तो उसने जीत ही लिया था, अब वह सम्पूर्ण गुजरात को अपने अधिकार में करना चाहता था किन्तु मुग़ल उसके इस उद्देश्य की पूर्ति में बाधक हो रहे थे। उत्तर में पाटन तथा दक्षिण में बड़ौदा और भड़ौंच अभी मुग़लों के ही अधिकार में थे। अतः मुजफ़्फ़र ने एक सेना अपने मुख्य सहायक शेर खाँ फौलादी के नेतृत्व में पाटन की ओर भेजी और स्वतः बड़ौदा की ओर चला।

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६१३-१४; त० अ० भाग २, पृ० ५७१

शेर खाँ के आगमन की सूचना पाते ही मुगल शिविर में आतंक छा गया। उन लोगों ने सोचा कि अब यहाँ से भाग चलने में ही कल्याण है। किन्तु फिर सोचा कि ऐसी कायरता दिखाना उनके लिए ठीक न होगा। अतः उन्होंने 'तबकाते-अकबरी' के सुविख्यात लेखक निज़ामुद्दीन के नेतृत्व में आगे बढ़ कर पाटन से तीस मील दक्षिण मसाना नामक स्थान पर गुजरातियों का सामना किया। घमासान युद्ध हुआ और अन्त में मुगल सेना विजयी हुई। जब शेर खाँ ने देखा कि परिस्थिति उसके प्रतिकूल है तो वह रण क्षेत्र से पीछे हट गया और अहमदाबाद में जाकर शरण ली। किन्तु पारस्परिक मतभेद के कारण मुगल सेना इस विजय से पूरा लाभ न उठा सकी। निजामुद्दीन ने अपने सहयोगियों को बहुत समझाया कि इसी समय लगे हाथों अहमदाबाद पर भी अधिकार कर लें किन्तु उन्होंने उसकी एक न सुनी। वे तो लूट की सामग्री के उपभोग में व्यस्त थे, अहमदाबाद पर आक्रमण करने का उन्हें अवकाश ही कहाँ था। इस प्रकार एक बार फिर उन्होंने इस सीमा प्रान्त पर अपना अधिकार स्थापित करने का सुअवसर खो दिया[१]।

इधर मुगल अधिकारी पाटन में व्यर्थ के वादविवाद और प्रमाद में अपना समय नष्ट कर रहे थे, उधर मुज़फ़्फ़र उत्तरोत्तर अपनी स्थिति दृढ़ करता जा रहा था। जब उसे सूचना मिली कि कुतबुद्दीन बड़ौदा में अहमदाबाद पर आक्रमण करने की योजना बना रहा है, तो उसने अपनी राजधानी की रक्षा का भार विद्रोहियों के मुखिया आबिद अली पर छोड़ तुरन्त दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६२३-६२४; त० अ० भाग २, पृ० २६६।

बड़ौदा पहुँच उसने मुगल किले को चारों ओर से घेर लिया। कुतबुद्दीन ने बाईस दिन तक डट कर गुजरातियों से लोहा लिया किन्तु अन्त में अपने दुर्ग रक्षकों के विश्वासघात के कारण उसे सन्धि प्रस्ताव भेजने पर विवश होना पड़ा। मुजफ्फ़र ने आश्वासन दिया कि यदि वह आत्म समर्पण करदे तो उसके जान व माल को किसी प्रकार क्षति न पहुँचाई जाएगी। कुतबुद्दीन उसकी बातों पर विश्वास कर किले से बाहर निकला किन्तु मुजफ्फ़र ने दिये गए वचन पर बिलकुल ध्यान न देकर उसे मार डाला। गुजरातियों ने तत्काल बिना किसी प्रतिरोध के गढ़ पर अधिकार कर लिया[१]। इसके पश्चात् शीघ्र ही मुजफ्फर ने भड़ौंच को भी जीत लिया जहाँ कुतबुद्दीन द्वारा संगृहीत दस करोड़ रुपये से कुछ अधिक की धन-राशि भी उसके हाथ लगी। पाटन को छोड़ अब सारा गुजरात उसके अधिकार में था। चारों ओर से जनता ने उसका हार्दिक स्वागत किया।

कुतबुद्दीन की हत्या और मुजफ्फर की नित्य प्रति बढ़ती हुई शक्ति का समाचार पा मुगलों का रहा सहा उत्साह भी जाता रहा। उन्हें अब मुजफ्फ़र पर विजय पाने की तनिक भी आशा न रही। इस समय सारा गुजरात उसका समर्थन कर रहा था। उसके पास द्रव्य भी इतना अधिक संचित हो चुका था कि एक विशाल सेना का व्यय-भार वहन करना उसके लिए कुछ कठिन न था। उन्हें निश्चय हो गया कि भड़ौंच के पश्चात् अब पाटन की ही बारी है। अतः

१ मिराते-अहमदी पृ० १४७; मिराते-सिकन्दरी पृ० ३७७; अ० ना० भाग ३ पृ० ६२८।

उन्होंने अपनी रक्षा के लिए वह स्थान छोड़ जालौर में शरण लेने का निर्णय किया।[१] इसी संकट काल में उन्हें सूचना मिली कि बादशाह ने गुजरात में विद्रोह दमन के हेतु मिर्ज़ा खाँ को नियुक्त किया है और नवीन राज्यपाल शीघ्र ही अपनी विशाल सेना के साथ उनकी सहायतार्थ आ रहा है। शहाबुद्दीन को यह बात कैसे भाती! एक नवयुवक और वह भी उसके बैरी बैरम खाँ का पुत्र उस पर शासन करे! यह केवल उसका ही अपमान नहीं अपितु साम्राज्य के सभी पुराने अमीरों की प्रतिष्ठा पर आघात था। किन्तु वह कर ही क्या सकता था। कदाचित् उसके प्रतिद्वन्द्वी एतमाद के भी हृदय में ऐसे ही भाव उठे होंगे। किन्तु वह उतना उद्विग्न न दीख पड़ता था। फिर भी कुछ ऐसे स्वामिभक्त और साहसी सैनिक थे जिन्होंने निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो, वे मिर्ज़ा खाँ के आने तक पाटन में ही बने रहेंगे। इस वर्ग का मुख्य नेता निज़ामुद्दीन था। यदि वे उस समय वहाँ न होते तो पाटन से मुग़ल पलायन प्रायः निश्चित ही था।

मिर्ज़ा खाँ का गुजरात प्रस्थान

२२ सितम्बर, १५८३ ई० को मिर्ज़ा खाँ ने फतेहपुर सीकरी में अकबर से विदा लेकर अपने अधीनस्थ राजपूत, सैयद तथा पठान सैनिकों के साथ गुजरात की ओर प्रस्थान किया। राजपूताना के रेगिस्तानों को पार करता हुआ वह दल बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ा। मार्ग में उन्हें पाटन से प्रेषित निज़ामुद्दीन के पत्रों द्वारा नियमित रूप से मुज़फ्फर के कारनामों का समाचार

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३१।

मिलता रहता था। मिर्जा खाँ शीघ्रातिशीघ्र गन्तव्य स्थान पर पहुँचना चाहता था, अतः अपने साथियों के अनुरोध करने पर भी वह निश्चित स्थान से पूर्व कभी डेरा न डालता। उसकी आज्ञा थी कि अग्रगामी अधिकारी अगला पड़ाव पिछले से कम से कम बीस कोस की दूरी पर डालें[१]।

इस प्रकार नियमित गति से चलता हुआ यह दल मिरथा[२] पहुँचा। वहाँ मिर्जा खाँ को 'रौज़ाने-ताहिरीन' के लेखक ताहिर से कुतबुद्दीन के समर्पण और उसकी हत्या का चिन्ताजनक समाचार मिला। पाटन के अधिकारियों ने इस संदेश-वाहक को विशेष रूप से भेजा था कि वह शीघ्रतम-गति से जाकर नवीन राज्यपाल को हाल के घटना-चक्रों का परिचय दे। ताहिर ने वैसा ही किया। अविराम गति से चलता हुआ वह सात ही दिन में मिरथा पहुँच गया[३]। किन्तु मिर्ज़ा खाँ ने यह समाचार अपने तक ही सीमित रखा। यहाँ तक कि अपने निकटतम विश्वासपात्रों को भी यह बात न बतलाई। उसने सोचा कि लम्बी यात्रा से थकित उसके सैनिक शत्रु की नित्य प्रति बढ़ती हुई शक्ति की अफवाहों को सुन कर वैसे ही भयभीत हैं, यदि उन्हें इस विघ्नकारक घटना का समाचार दिया जावेगा, तो उनका रहा सहा साहस भी जाता रहेगा। वास्तव में उस युवक ने ऐसा कर बड़ी बुद्धिमत्ता और आत्मविश्वास दिखलाया। यदि वह उस समय चालाकी से काम न लेता तो बड़ी ही विषम स्थिति में पड़ जाता।

---

१ म० र० भाग २, पृ० २३३। २ जोधपुर से ७६ मील उत्तर-पूर्व में स्थित एक उपनगर। ३ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३१।

अतः बिना किसी से यह भेद प्रकट किए ही वह मिरथा से आगे बढ़ा। सिरोही पहुँचने पर उसकी भेंट इतिहासकार निजामुद्दीन से हुई जो उसके स्वागतार्थ वहाँ पहले ही से आया हुआ था। उससे गुजरात की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर मिर्ज़ा खाँ फिर आगे बढ़ा। जालौर[१] पहुँच कर उसने देखा कि उसके कुछ साथी पिछड़े हुए हैं, अतः उनकी प्रतीक्षा में उसे वहाँ कुछ समय तक रुकना पड़ा। स्थानीय सामंतों को भी इससे पर्याप्त समय मिल गया। वे अपने सैनिकों को एकत्र कर मुगल सेना के साथ हो लिये। वहाँ विलम्ब करने का एक कारण यह भी था कि मिर्ज़ा खाँ के शुभचिन्तकों ने उसे चेतावनी दे दी थी कि वह अधीर होकर अनावश्यक शीघ्रता न करे। अतः कुछ दिन के पड़ाव के बाद अपने पूरे दल के साथ मिर्ज़ा खाँ फिर पश्चिम की ओर चला।

अन्त में ३१ दिसम्बर को मिर्ज़ा खाँ ने पाटन नगर में प्रवेश किया। उसके आगमन की सूचना मिलते ही मुगल शिविर में उल्लास छा गया। मृतप्राय मुगल सैनिकों में नव जीवन का संचार हुआ। निराशा और आशंका का वातावरण उत्साह और साहस से परिपूर्ण हो उठा। इस अवसर के उपलक्ष में उस दिन खूब जलसा हुआ। वही मुगल सैनिक जो मुजफ्फर के आतंक से भयभीत हो पाटन छोड़ कर जालौर में शरण लेने की योजना बना रहे थे, अब गुजरात की पुनर्विजय के स्वप्न देखने लगे[२]।

मिर्ज़ा खाँ पाटन में केवल एक दिन ठहरा। उसने वहाँ

१ जोधपुर से ७४ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक उपनगर। २ अ० ना० भाग ३, पृ० ६२१।

पहुँचते ही मुगल अधिकारियों की एक गोष्ठी की जिसमें उनसे कहा गया कि वे भावी कार्यक्रम के विषय में अपनी स्वतंत्र राय प्रकट करें। सभा में तीन प्रस्ताव रखे गए। एक वर्ग ने यह राय दी कि वे तब तक पाटन से आगे प्रस्थान न करें जब तक मालवा की सेना उनको सहायतार्थ वहाँ न आ जाय। दूसरे वर्ग ने कहा कि मुजफ्फर की सेना इतनी विशाल और शक्तिशाली है कि वे मालवा की सेना के सहयोग से भी उसका सफलता पूर्वक सामना न कर सकेंगे। अतः जब तक अकबर स्वतः कुछ अतिरिक्त सैनिकों के साथ उनका नेतृत्व करने न आ जाय, उनका आगे बढ़ना अदूरदर्शिता होगी। किन्तु मिर्जा खाँ और उसके समर्थकों ने इन कथनों में बहुत सार्थकता न देखी। उन्होंने कहा कि अधिक विलम्ब करने से मुजफ्फर को अपनी शक्ति-वृद्धि का और भी अवसर मिल जाएगा अतः तुरन्त प्रयाण ही सर्वोत्तम है। अन्त में बहुत वाद विवाद के पश्चात् अन्तिम प्रस्ताव ही सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। दूसरे ही दिन पाटन की रक्षा का भार एतमाद खाँ पर छोड़ मुगल सेना मिर्जा खाँ की अध्यक्षता में अहमदाबाद की ओर बढ़ी[१]।

मुजफ्फर जो इस समय भड़ौच में विजयोल्लास में मग्न था, इस सूचना के पाते ही वहाँ के किले की रक्षा का दायित्व अपने एक सम्बन्धी चरकस रूमी को सौंप कर शीघ्रता से अहमदाबाद की ओर बढ़ा। १२ जनवरी, १५८४ ई० को अपनी राजधानी से एक कोस दूर साबरमती नदी के बाँएँ किनारे पर महमूदनगर में उसने अपना

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३१; म० र० भाग २, पृ० २३३; त० अ० भाग २ पृ० ५७१।

डेरा डाला। उसने देखा कि वह स्थान भावी युद्ध के लिए अधिक उपयुक्त होगा। उसने अपनी सेना को परम्परागत विभिन्न पक्षों में विभाजित कर दिया। मध्यभाग के सेनापतित्व का भार उसने अपने ऊपर लिया और दक्षिण तथा बाम पक्षों की अध्यक्षता क्रमशः अपने विश्वस्त सेना नायक शेर खाँ फौलादी और लोनी काठी को दी। सलीह बदख्शी उस सेना के अग्रभाग का नायक नियुक्त हुआ। उसने तोपखाने और अन्य आग्नेयास्त्रों का भी इसी प्रकार सैनिकों में उचित वितरण कर दिया[१]।

उधर शाही सेना ने भी पाटन से प्रस्थान करने के पूर्व ही अपनी कमानों का वितरण कर लिया था। मिर्ज़ा खाँ ने स्वतः मध्यभाग की अध्यक्षता ग्रहण की। उसने अपने साथ कई अनुभवी मनसबदारों को भी रखा जिनमें शहाबुद्दीन प्रमुख था। शिरोया खाँ और मुहम्मद हुसैन आदि योद्धाओं को दक्षिण पक्ष का तथा राय दुर्गा सिसोदिया और मारवाड़ के मोटे राजा उदयसिंह राठौर आदि पराक्रमी राजपूतों को वाम पक्ष का सेनापतित्व दिया गया। कुछ विश्वस्त सैयद और राजपूत वीर अग्रभाग के नेता नियुक्त किए गए। सेना के अग्रभाग (अल्तमश) के पृष्ठ के अध्यक्ष थे मेदिनीराय तथा मिर्ज़ा खाँ के वकील दौलत खाँ लोदी। इतिहासकार निज़ामुद्दीन और मासूमभक्करी आवश्यकता के समय काम आने वाली सुरक्षित सेना के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। कुछ चर आगे भेजे गए जो शत्रु की गति-विधि का ज्ञान कर इन लोगों को बराबर सूचना देते रहते[२]।

---

१ अ० ना० भाग ३ पृ० ६३३; म० उ० भाग २, पृ २३३; मिरात सिकन्दरी पृ० ३१६। २ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३२।

इस प्रकार सुसज्जित मुगल सेना जब अहमदाबाद की ओर बढ़ रही थी तभी मार्ग में मिर्जा खाँ को अपने चरों से सूचना मिली कि मुजफ्फर ने अपनी विशाल सेना के साथ भड़ौच से चलकर महमूदनगर में डेरा डाला है। किन्तु वह इससे घबराया नहीं। उसने यहाँ भी उस समाचार की वास्तविकता को गुप्त ही रखा। यद्यपि हृदय में वह स्थिति की विषमता के प्रति पूर्ण जागरूक था, तो भी अपनी सेना का साहस बनाए रखने के लिए उसने बाह्यरूप से उस समाचार को कुछ महत्व न दिया। उसने साथियों से कहा कि यह सब कोरी गल्प है और इससे वे भयभीत न हों[1]। किन्तु मिर्जा खाँ के सम्मुख इस समय कठिन समस्या थी। पहले जब उसने पाटन से शीघ्र प्रयाण कर अहमदाबाद पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी उस समय विजय की पूर्ण सम्भावना थी। मुजफ्फर अपनी मुख्य सेना के साथ भड़ौच में था और उसकी राजधानी पर अधिकार करना कठिन न था। किन्तु अब गुजरातियों की विशाल सेना अहमदाबाद की रक्षा के हेतु साबरमती के बाँएँ तट पर डेरा डाले पड़ी थी। उन पर आक्रमण करने के लिए मुगलों को नदी पार करना अनिवार्य था और नदी को पृष्ठ भाग में रख इतनी बड़ी सेना से मोरचा लेना रण सिद्धान्तों के नितान्त प्रतिकूल था। यदि वे परास्त होते तो नदी पार कर उनका भागना भी कठिन हो जाता। मिर्जा खाँ जानबूझ कर ऐसी मूर्खता नहीं करना चाहता था। किन्तु वह यदि उस समय युद्ध न करने को कहता तो उसके वयोवृद्ध अधीनस्थ सहकारी उसे अनुभवहीन जान उसकी बात न मानते।

---

१ म० उ० भाग २, पृ० २३३।

अतः उसने अपनी सहज बुद्धि से काम लिया। उसने तुरन्त एक जाली शाही आदेश तैयार किया और उसे अपने सहकारियों को पढ़ कर सुनाया। उसमें लिखा था कि अकबर स्वतः एक विशाल सेना लेकर गुजरात आ रहा है और जब तक वह पहुँच न जाए, तब तक मुग़ल सेना मुज़फ्फ़र से लोहा लेने में शीघ्रता न करे। इस चाल का आशातीत प्रभाव पड़ा। इससे न केवल शाही सेना में नवीन उत्साह और साहस आ गया अपितु शत्रु भी बड़ा भयभीत हो गया। इस अवसर की प्रसन्नता में मुग़लों ने जलसे किए और दावतें दीं। उन्होंने सोचा कि अकबर के आगमन का समाचार पा कर कदाचित मुज़फ्फ़र युद्ध का विचार ही त्याग दे इसलिए इस समय उससे मुठभेड़ करना उचित नहीं। बाद में मालवा की सेना आ जाने पर तो उनकी शक्ति और भी बढ़ जायगी। इसी आशा से वे शत्रु के शिविर से कुछ दूर होते हुए बिना किसी संघर्ष के आगे बढ़ते चले गए[१]

सरखेज का युद्ध, १६ जनवरी, १५८४ ई० ।

अन्त में १४ जनवरी, १५८४ ई० को मुग़लों ने अहमदाबाद से छः मील दक्षिण-पश्चिम स्थित सरखेज ग्राम के निकट अपना डेरा डाला। यह स्थान साबरमती के उस मोड़ से जहाँ वह सहसा दक्षिण-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर बहने लगती है, एक मील दूर था। साबरमती और सरखेज के मध्य का विस्तृत मैदान युद्ध क्षेत्र की दृष्टि से उनके लिए बहुत ही उपयुक्त था। शत्रु के आकस्मिक आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए उस दिन तो

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३३।

उन्होंने शिविर के चारों ओर लकड़ियों का घेरा डाल लिया किन्तु दूसरे दिन एक मिट्टी की चहारदीवारी बनाई जिससे वे और भी अधिक सुरक्षित रहें[१]।

इधर जब मुजफ्फर को उक्त सूचना मिली तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। अकबर के आगमन की अफवाह सुनकर वह पहले ही से घबराया हुआ था। अब उसने सोचा कि यदि तनिक भी विलम्ब होगा तो मालवा की सेना आ जाने से मुगलों की शक्ति और बढ़ जायगी और तब उन्हें परास्त करना कठिन हो जायगा। अतः उसने तुरन्त महमूदनगर से कूच किया। अपनी विशाल सेना के साथ उसने अहमदाबाद से लगभग एक मील उत्तर-पश्चिम उसमानपुर नामक स्थान पर नदी पार की और शत्रु शिविर के ठीक सामने चार मील दूर शाहभाकन नामक प्रसिद्ध संत की कब्र के निकट अपना डेरा डाला। बुधवार की रात्रि उसके सैनिकों ने मुगलों पर आकस्मिक प्रहार किया, किन्तु असफल रहे। दूसरे दिन मुगलों ने अपनी रक्षापंक्तियाँ और भी सुदृढ कर लीं। शुक्रवार तक केवल कुछ छिटपुट हमलों के अतिरिक्त, जिनमें प्रायः मुगल ही सफल रहे, कोई डट कर युद्ध नहीं हुआ। किन्तु ऐसी स्थिति कितने दिनों तक चलती। इधर मिर्जा खाँ मालवा सेना की प्रतीक्षा के कारण शत्रु से आमने-सामने होकर युद्ध करने का प्रत्येक अवसर टालता जा रहा था और उधर मुजफ्फर निर्णयात्मक युद्ध के लिए अधीर हो रहा था। अन्त में १६ जनवरी को मुजफ्फर ने मुगलों पर आक्रमण करने का

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ ६३२।

दृढ़ निश्चय कर अपनी सुसज्जित सेना को आगे बढ़ाया।[१]

दोपहर बीत चुकी थी। मिर्जा खाँ ऐसे अनुपयुक्त समय पर शत्रु से भिड़ना नहीं चाहता था, किन्तु क्या करे, विवश था। अतः उसने भी अपने सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ने की आज्ञा दी। इतने में ही सूचना मिली कि गुजरातियों की मुख्य सेना तो व्यूह बना कर सामने से आ रही है, किन्तु मुजफ्फर स्वतः एक टुकड़ी के साथ पश्चाघात करने के लिए पीछे से आ रहा है। मुगल सेनापति ने तुरन्त राय दुर्गा सिसोदिया तथा निज़ामुद्दीन को सुरक्षित सेना के एक भाग के साथ उधर भेजा जिससे वे सरखेज ग्राम के बाईं ओर से जाकर मुजफ्फर की उस योजना को सफल न होने दें। शेष सेना सामने की ओर चली। मार्ग रेतीला था, बीच में एक नाला भी था जिसके दोनों ओर घनी झाड़ियाँ उगी हुई थीं। इससे शाही सेना को आगे बढ़ने में कुछ कठिनाई हुई। अग्रभाग कुछ हिचका, किन्तु पृष्ठ भाग के साहसी वीरों ने उन्हें प्रोत्साहित किया और वे स्वयं अवरोधों की परवाह न करते हुए आगे झपटे। सामने अब खुला मैदान था जहाँ शत्रु सेना पहले ही से प्रस्तुत थी।

बस फिर क्या था, म्यानों से तलवारें निकल पड़ीं और घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम विरोधी पक्षों के अग्रभागों में भिड़न्त हुई और उन्हीं में हाथा-पाई होती रही किन्तु क्रमशः युद्ध-ज्वाला अन्य भागों में भी फैलती गई। रणवीर राजपूतों और बारहा के सैयदों ने उस समय जो शौर्य-प्रदर्शन किया वह उनकी जाति की परम्परा के सर्वथा अनुकूल था। वे अश्वारोही योद्धा प्राणों को

---

१ त० अ० भाग २ पृ० ५७२; मिराते सिकन्दरी पृ० ३११।

हथेली पर रख उपद्रवी रिपुओं पर टूट पड़े और उन्हें काटते, रौंदते और उनकी पंक्तियों को तोड़ते हुए आगे बढ़े। किन्तु शत्रु-पक्ष भी निर्बल न था। उसकी संख्या मुगलों से कई गुना अधिक थी। वह भी ईंट का जवाब पत्थर से दे रहा था। घंटों यह संघर्ष चलता रहा। चारों ओर तलवारों की खनखनाहट, आहतों का चीत्कार, मारो, काटो, हटो, बढ़ो आदि ध्वनियाँ प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रही थीं। इतना रक्तपान करने पर भी रण-चंडी अभी अतृप्त ही थी।

मिर्ज़ा ख़ाँ अपने तीन सौ चुने हुए वीरों और सौ विशालकाय हाथियों के साथ मुगल सेना के मध्यभाग में था। उसकी पैनी और सतर्क दृष्टि सभी पक्षों पर थी। इधर मुजफ्फर ने जब देखा कि दोनों ओर के सभी पक्ष एक दूसरे से भिड़े हुए हैं तो वह अपनी सेना के मध्यभाग से निकला और छः या सात हज़ार विशिष्ट सैनिकों के साथ मिर्ज़ा ख़ाँ की ओर बढ़ा। गुजरातियों की इस विशाल सेना को अपनी ओर आते देख मुगलों का रक्त ही सूख गया। उनमें से कुछ कायर सम्भावी आक्रमण से इतने भयभीत हो उठे कि रण-क्षेत्र से भाग जाना ही उचित समझा। वे मिर्ज़ा ख़ाँ की ओर बढ़े और उसके घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे वहाँ से हटाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु बैरम का पुत्र मिर्ज़ा ख़ाँ इतना कायर न था। उसने भयग्रस्त शुभचिन्तकों के हाथ से लगाम छुड़ाते हुए अपने घोड़े को एँड़ लगाई और शालीमार तथा अन्य दीर्घकाय हाथियों की आड़ में अपनी सेना के मध्य भाग को आगे बढ़ाया। सैकड़ों को पददलित करते हुए इन पंक्ति-भंजक गजराजों को आगे बढ़ता देख कर शत्रु के छक्के छूटने लगे। इसी बीच निज़ामुद्दीन ने अचानक गुजरातियों पर पीछे से आक्रमण किया और

उसके कुछ ही क्षणों पश्चात् राय दुर्गा सिसोदिया ने बाईं ओर से उन्हें घेर लिया। रिपुदल में इससे खलबली मच गई। उन्हें भ्रम हुआ कि कदाचित् एक ओर से अकबर तथा दूसरी ओर से मालवा की सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया है। चारों ओर भाग दौड़ मचने लगी। अपने सहकारियों द्वारा परित्यक्त और हतबुद्धि मुजफ्फर साहस विहीन हो उठा। अंत में भाग्य विपरीत देख कर वह पीछे मुड़ा और मामूराबाद के मार्ग से किसी प्रकार अपना प्राण बचाता हुआ माही नदी की ओर भाग गया[१]।

इस समय सूर्यास्त हो रहा था। घोर संग्राम के पश्चात् मुगल सैनिक इतने थक गए थे कि उन्हें विजित शत्रु का पीछा करने की सुध भी न रही। उस रात्रि को उन्होंने सरखेज के शिविर में ही विश्राम किया और दूसरे दिन तड़के विजयोल्लास से हर्षित अहमदाबाद में प्रवेश किया। उनके स्वागतार्थ नगरवासियों ने अपनी परम्परा के अनुसार निवास-स्थानों को सजाया। रात्रि को दीपमालाओं की प्रभा से सारा शहर प्रकाशमान् हो उठा। कवियों ने नवयुवक सेनापति की प्रशंसा में कवितायें लिखीं और चारों ओर से बधाइयों की भरमार हो उठी। मिर्ज़ा खाँ ने घोषणा की कि जो नागरिक शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने में योग देंगे उनके जान व माल को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने पाएगी। उस विजय की स्मृति को स्थाई बनाने के लिए उसने युद्धस्थल पर एक सुन्दर उद्यान लगवाया और एक स्मारक बनवाया। इस उद्यान का

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३६–६३७; म० र० भाग २, पृ० २३३–२३४; त० अ० भाग २ पृ० ५७३।

नाम रखा गया 'फतेहबाग' और शीघ्र ही यह अहमदाबाद वासियों का एक प्रिय विहार-क्षेत्र बन गया[१]।

इस युद्ध में दोनों ही पक्षों को भारी हानि हुई। मुगलों की ओर से जो वीर इस युद्ध में काम आए, उनमें सैयद हाशिम बारहा और मिर्ज़ा ख़ाँ के प्रिय वकील खिज़्आका के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शत्रुपक्ष की तो और भी अधिक क्षति हुई। बदायूनी लिखता है कि विद्रोहियों की निर्मम हत्या तब तक अबाध गति से चलती रही जब तक कि संध्या के अंधकार ने उन्हें अपनी गोद में छिपा न लिया। मृत व्यक्तियों के शवों का ढेर इतना ऊँचा था कि उनकी ठीक ठीक गिनती करना भी कठिन था[२]।

सरखेज-विजय मिर्ज़ा ख़ाँ के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस से उसका यश और ख्याति बहुत बढ़ गई। उस युवक सेनापति ने जिस चातुर्य्य तथा बुद्धिमत्ता से अपने अधीनस्थों का सहयोग प्राप्त किया, वह वास्तव में सराहनीय है। उसके दल में कितने ही ऐसे वयोवृद्ध सामन्त थे जो उसकी इस नियुक्ति से बहुत ही असन्तुष्ट थे और ईर्ष्या के कारण उसे कभी सफल होते नहीं देख सकते थे। किन्तु मिर्ज़ा ख़ाँ ने कूटनीति और तुरत-बुद्धि से उन सभी को अपने वश में रखा। भाग्य ने भी उसका साथ दिया। एक ओर से दानवकाय गजराजों के प्रहार और दूसरी ओर से निज़ामुद्दीन तथा राय दुर्गा सिसोदिया के पक्षाघातों ने गुजरातियों को विचलित कर दिया। उनका बहुसंख्यक दल बिना अंत तक लड़े ही तितर-बितर हो गया।

---

१ म० र० भाग २, पृष्ठ २३८-२३९। २ बदायूनी भाग २, पृ० ३४२।

कहते हैं कि युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व मिर्जा खाँ ने मनौती मान रखी थी कि यदि वह रणविजयी हुआ तो अपने शिविर की सारी सम्पत्ति दीन दुखियों को बाँट देगा। उसने वैसा ही किया। किन्तु गरीब बेचारे हाथी, घोड़ा आदि लेकर क्या करते। अतः मिर्जा खाँ ने अपने कतिपय सेवकों को आदेश दिया कि वे उसकी सारी सामग्री का मूल्यांकन करें जिससे उन असहायों को नकद रुपया दे दिया जाए। किन्तु उन लोभी और संकुचित हृदय वाले नौकरों ने उनका इतना कम दाम लगाया कि उन वस्तुओं के वास्तविक मूल्य का दशमांश भी उन भिखमंगों को न प्राप्त हो सका[१]।

मुजफ्फर का पलायन तथा मालवा से शाही सेना का आगमन

सरखेज के युद्ध में बुरी तरह परास्त होने पर भी मुजफ्फर हतोत्साह न हुआ। उसे अब भी यह आशा थी कि धन का प्रलोभन पाते ही उसके मनचले साथी फिर उसकी सहायतार्थ तत्पर हो जायंगे और उनके सहयोग से वह अपने खोए हुए राज्य पर फिर अधिकार कर सकेगा। अतः माही नदी के किनारे किनारे चलता हुआ वह शीघ्र ही खम्भात पहुँचा। उस बन्दरगाह में बहुत से ऐसे समृद्धिशाली व्यापारी थे जिनके पास अपार धन था। मुजफ्फर को इस समय द्रव्य की आवश्यकता थी ही। उसने उन पर आक्रमण कर उनकी सारी पूँजी छीन ली। बस फिर क्या था, थैली खुल गई और उपहार वितरण होने लगे। धीरे धीरे उसकी सैन्य संख्या बढ़ने लगी। वही साथी जो युद्ध क्षेत्र में उसे असहाय छोड़ कर भागे थे, रुपयों के

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६३६; त० अ० भाग २ पृ० ४७४।

प्रलोभन में फिर उसके झंडे के नीचे आने लगे। देखते देखते उसके समर्थकों की संख्या फिर लगभग पूर्ववत् हो गई। मुजफ्फर ने अपना भाग्य निर्णय करने का एक बार फिर निश्चिय किया[१]।

उधर इसी बीच मालवा से चिरप्रतीक्षित शाही सेना कुलीच खाँ तथा अन्य सामन्तों की अध्यक्षता में अहमदाबाद आ पहुँची। वह दल मार्ग ही में था कि उसे कुतबुद्दीन खाँ की हत्या तथा बड़ौदा और भड़ौच के पतन का समाचार मिला। उससे वह इतना शंकित हो उठा कि उसे आगे बढ़ने का साहस ही न हुआ। वह तासी से लगभग २० मील उत्तर स्थित सुलतानपुर नामक स्थान पर आकर रुक गया था। सरखेज-विजय का समाचार पा कर उसकी हिम्मत फिर बँधी और उस घटना के तीन दिन पश्चात् उसने अहमदाबाद नगर में प्रवेश किया।

मालवा सेना के आगमन की निश्चित तिथि और स्थान के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। मुगल इतिहासकारों—अबुल फजल, बदायूनी, निजामुद्दीन, अब्दुलबाकी आदि के लेखों से ज्ञात होता है कि उक्त सेना सीधे अहमदाबाद आई किन्तु गुजराती इतिहास, 'मिराते-अहमदी' तथा 'मिराते-सिकन्दरी' से पता चलता है कि मालवा की सेना सरखेज विजय के दूसरे दिन बड़ौदा पहुँची और उसने अहमदाबाद न आकर भड़ौच पर हमला किया। उसके पश्चात् मिर्जा खाँ की सेना से उसका मिलन अहमदाबाद से सात कोस दूर बरीचा नामक स्थान पर उस समय हुआ जब कि मुगल सेनापति मुजफ्फर के दमन के हेतु खम्भात जा रहा था। श्री बेवरिज ने

१ बदायूनी भाग,२ पृ० ३४२।

अंतिम कथन दो कारणों से सत्य माना है। प्रथम, मिराते सिकंदरी का लेखक मालवा सेना के साथ था अतः उसका लेख अधिक प्रामाणिक है। द्वितीय, सरखेज के पश्चात् सम्भाव्य रणक्षेत्र खम्भात में था, अतः अहमदाबाद आने में अब कोई तर्क न था। किन्तु श्री बेवरिज के तर्क अधिक युक्ति सङ्गत नहीं प्रतीत होते। प्रथम, बहुत सम्भव है कि मिराते-सिकन्दरी के लेखक ने यह मनगढ़न्त बात अपनी सेना की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए ही लिखी हो। यदि वह सत्य लिखता तो उसके दल की कायरता की पोल खुल जाती। मुजफ्फर की बढ़ती हुई शक्ति के भय से ही तो वे सुलतानपुर से आगे नहीं बढ़ सके थे। फिर, निजामुद्दीन स्वतः अहमदाबाद में था। वह विश्वस्त व्यक्ति ऐसी झूठी बात कदाचित ही लिखता। अबुल फज़ल ने भी, जिसका वर्णन सरकारी सूत्रों पर आधारित है, निजामुद्दीन का समर्थन किया है। इन दोनों में केवल तिथि का अन्तर है। अबुल फजल के अनुसार मालवा सेना सरखेज विजय के दूसरे दिन अहमदाबाद पहुँची और निजामुद्दीन के अनुसार तीन दिन पश्चात्। द्वितीय, क्या मलवा की सेना को यह विदित था कि मुजफ्फर खम्भात भाग गया है? यदि हाँ, तो शाही आज्ञानुसार उसे तो अहमदाबाद ही आना था। बिना अपने प्रधान सेनापति का आदेश प्राप्त किये वह भड़ौच पर कैसे आक्रमण कर सकती थी।

मालवा की सेना आ जाने पर मिर्जा खाँ ने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित करने के हेतु अपने अधीनस्थ अधिकारियों की एक गोष्ठी की। पहले की भाँति इस बार भी लोगों में मतैक्य न था। एक वर्ग का तो कथन था कि मुजफ्फर का समूल विनाश तभी सम्भव है

जब कि वे सभी सम्मिलित हो कर उसके विरुद्ध आगे बढ़ें किन्तु द्वितीय वर्ग का कहना था कि सरखेज-युद्ध में जिन्होंने भाग लिया है, उन्हें अब विश्राम करना चाहिए और मुजफ्फर के दमन का दायित्व अकेले मालवा सेना को ही सौंपा जाना चाहिए। अन्त में बहुत वाद-विवाद के पश्चात् प्रथम प्रस्ताव ही स्वीकृत हुआ और मुगलों की सम्मिलित सेना खम्भात की ओर चली। मिर्ज़ा खाँ शासन व्यवस्था के हेतु अहमदाबाद में ही रुका रहा।

किन्तु अभी वे एक या दो पड़ाव भी आगे नहीं गए थे कि फिर रुक गए और पारस्परिक मतभेद के कारण वहीं समय नष्ट करने लगे। मिर्ज़ा खाँ को यह बात बहुत बुरी लगी। वह नहीं चाहता था कि इधर उसके सैनिक बहुमूल्य समय का अनावश्यक ही अपव्यय करें और उधर शत्रु अपनी शक्ति बढ़ाता जाय। अतः उसने राजधानी की रक्षा का भार अपने कुछ विश्वस्त सहकारियों को सौंपा और स्वयं तुरन्त ही खम्भात की ओर चल पड़ा। उसके पहुँचते ही मुगल सैनिकों में फिर नवीन उत्साह आ गया और आगे की यात्रा पुनः आरम्भ हो गई।

इधर जब मुजफ्फर को उक्त समाचार मिला तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि यदि मुगल अपनी सारी शक्ति के साथ खम्भात पर आक्रमण कर देंगे तो वह उनसे पार न पा सकेगा। अतः उनका ध्यान अन्यत्र आकर्षित करने के लिए उसने अपनी सेना का एक दस्ता अपने प्रिय सहयोगी सैयद दौलत की अध्यक्षता में अहमदाबाद से चौबीस मील दूर धोलका की ओर भेजा। एक अन्य दस्ता इख्तियार उल मुल्क बख्शी के पुत्रों की देख रेख में माही तट पर

स्थित मामूराबाद की ओर रवाना किया, और स्वतः खम्भात ही में मुगलों से मोर्चा लेने की तैयारी करने लगा। किन्तु ज्यों ज्यों शाही सेना अग्रसर होती गई त्यों त्यों उसकी हिम्मत कम होती गई। अन्त में जब मिर्ज़ा ख़ाँ की सेना खम्भात से केवल दस कोस की दूरी पर रह गई तो उसका रहा सहा साहस भी जाता रहा। बचाव का अन्य कोई उपाय न देख वह वहाँ से भागा और माही के तट पर बाशद नामक उपनगर में शरण ली। सम्भवतः उस स्थान के राजपूत भूपाल अचल परमार ने उसे शरण दी और कुछ समय तक उसके विषय में किसी को कुछ भी न ज्ञात होने दिया।

मुजफ्फर को भागता देख मुगलों ने उसका पीछा किया। बाशद पहुँच कर मिर्ज़ा ख़ाँ ने अपना एक दस्ता मालवा सेना के अधिकारियों की अध्यक्षता में बड़ौदा की ओर भेजा जिससे वे आगे बढ़ कर भागते हुए शत्रु को पकड़ें। किन्तु पथ की बाधाओं के कारण वह दल तीव्रगति से आगे न बढ़ सका। कहीं गहरे नाले थे, कहीं ऊँची पहाड़ियाँ। किसी प्रकार इन दुर्गम स्थानों को पार करते वे चलते गए। अन्त में शत्रु की एक टुकड़ी से उनकी मुठभेड़ हुई। गुजरातियों ने वीरतापूर्वक उनका सामना किया किन्तु मुगलों के सम्मुख वे बहुत देर तक न टिक सके। वे किसी प्रकार जान बचाकर भागे। गर्मी अधिक होने के कारण शाही सेना ने उनका पीछा नहीं किया। मुजफ्फर को अवसर मिला। नर्मदा नदी पार करता हुआ वह आगे बढ़ा और अन्ततोगत्वा राजपिपला की राजधानी नादौत में उसने शरण ली[१]।

१. अ० ना० भाग ३ पृ० ६४०; त० अ० भाग २ पृ० ४७४।

मुगल सेना अब बड़ौदा पहुँची और सोलह दिनों तक वहाँ डेरा डाले पड़ी रही। यहाँ मिर्ज़ा ख़ाँ को सूचना मिली कि मुजफ्फर के सेनानायक सैयद दौलत ने खम्भात पर आक्रमण कर वहाँ से सारे मुगल सैनिकों को खदेड़ दिया है और नगर पर बलात् अधिकार कर लिया है। मिर्ज़ा ख़ाँ ने तुरन्त एक दस्ता अपने सम्बन्धी तुलक ख़ाँ की अध्यक्षता में उसे वहाँ से निकालने के लिए भेजा। मुगल कप्तान अपने अभियान में सफल हुआ और उसकी विजय को शाही सेना ने शुभ शकुन समझा। उसे विश्वास हो गया कि इस बार भी मुजफ्फर अवश्य ही परास्त होगा। किन्तु तुलक ख़ाँ ने ज्यों ही पीठ फेरी कि सैयद दौलत ने खम्भात पर पुनः अधिकार कर लिया। इस बार मिर्ज़ा ख़ाँ ने अपने एक विशेष अधिकारी ख्वाजम वर्दी को, जो उस समय तपेलद का थानेदार था, खम्भात भेजा। विद्रोही पराजित हुआ और नगर पर मुगलों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।

मिर्ज़ा ख़ाँ को प्रतिकूल परिस्थितियों से विवश हो कर ही इतने असाधारण दीर्घकाल तक बड़ौदा में रुकना पड़ा। वह जानता था कि विलम्ब करने से मुजफ्फर को फिर शक्ति-संचय करने का अवसर मिल जायगा और तब उसे परास्त करना बड़ा कठिन होगा। अतः वह शीघ्रातिशीघ्र उसके रक्षा-स्थान की ओर बढ़ने को उत्सुक था। किन्तु उसके वयोवृद्ध अधीनस्थ उससे सहमत न थे। वे उसकी किसी भी योजना को सफल होते नहीं देख सकते थे। वस्तुतः यह समस्या मिर्ज़ा ख़ाँ के सम्मुख तभी से थी जब से वह गुजरात का राज्यपाल नियुक्त हुआ था। मिर्ज़ा ख़ाँ ने शेख अबुलफ़ज़ल को

जो पत्र इस समय लिखे थे, उनसे स्पष्ट है कि उस युवक सेनापति को प्रारम्भ से ही अपने अनुभवी कप्तानों का हार्दिक एवं सक्रिय सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा था। वे उससे जलते और पग-पग पर रोड़े अटकाने का प्रयत्न करते। उसका मानमर्दन ही उनका अभीष्ट था। वे समझते थे कि नवीन राज्यपाल की नियुक्ति उन्हें नीचा दिखाने के लिए ही की गई है। शहाबुद्दीन तथा एतमाद प्रभृति शासक और सेनापति जिस प्रान्त की समस्याओं को सुलझाने में असफल रहे हों, वहाँ एक नौसिखिया युवक सफलता प्राप्त कर यश का भागी बने, यह उन्हें कैसे सहन होता। यह तो उनके लिए और भी अपमान की बात होती। उन्हें पारस्परिक टीका टिप्पणी से ही अवकाश न मिलता था, भला शत्रु के विरुद्ध वे अपना ध्यान कैसे केन्द्रित करते। चतुर मिर्ज़ा ख़ाँ इन बातों को खूब समझता था अतः जब तक उसे पूर्ण विश्वास न हो जाता कि ये लोग समय पड़ने पर धोखा न देंगे तब तक वह सतपुड़ा के दुर्गम पहाड़ी प्रदेशों में बढ़ने का साहस कैसे कर सकता था।

अंत में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर मिर्ज़ा ख़ाँ ने शाही सेना को दक्षिण की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दी। मुगलों के पारस्परिक विद्वेषों से मुजफ्फ़र सदैव लाभ उठाता रहा। यदि वे एकमत हो सहयोग से कार्य करते तो कदाचित् सरखेज युद्ध के पश्चात् ही उसके उपद्रवों की इतिश्री हो गई होती। अब जब मुगलों के आगमन की सूचना उसे मिली तो अपनी सुसंगठित सेना के साथ वह नादौत छोड़ कर अहमदाबाद से साठ कोस दक्षिण कोहचम्पा नामक पहाड़ी प्रदेश में चला गया। तीन ओर सतपुड़ा की पर्वत-शृंखलाओं से और एक

और ताप्ती की एक सहायक नदी से अवरुद्ध यह सुरक्षित स्थान शरणार्थी मुजफ्फर के आश्रय के लिए सर्वोत्तम था। किन्तु उस अभागे को यहाँ भी शान्ति न मिली। शाही सेना शीघ्र ही नादौत पहुँच गई और मुजफ्फर को खदेड़ने की तैयारियाँ करने लगी।

नादौत का युद्ध

१० मार्च १५८४ ई० को शाही सेना ने नादौत से उस पर्वतीय प्रदेश की ओर प्रयाण किया जहाँ शत्रु अपनी शक्ति संगठित करने में प्रयत्नशील था। विभिन्न पक्षों के कमानों का वितरण पहले ही हो गया था। मिर्ज़ा खाँ स्वतः वयोवृद्ध शहाबुद्दीन के साथ मध्यभाग का नेतृत्व कर रहा था। दोनों पार्श्वों में अधिकांश मालवा से आए हुए सैनिक थे और भावी युद्ध का भार मुख्यतः इन्हीं को वहन करना पड़ा। दाहिने पार्श्व के नेता थे शरीफ खाँ और नौरंग ख़ाँ और वाम पार्श्व के कुलीच ख़ाँ तथा तुलक खाँ। अग्रस्थ पक्ष की अध्यक्षता प्रसिद्ध योद्धा राय दुर्गा सिसोदिया और पायन्दा ख़ाँ मुगल कर रहे थे। इतिहासकार ख्वाजा निजामुद्दीन और मीर मासूमभक्करी, पूर्ववत् सेना के सुरक्षित भाग के नेता थे। इस प्रकार सुसज्जित सेना जब राजपिपला जिले की चम्पा नामक पर्वत मालाओं के निकट पहुँची तो मिर्ज़ा ख़ाँ ने सावधानी बरतने के लिए निजामुद्दीन को एक अग्रगामी दस्ते के साथ आगे भेज दिया कि वे शत्रु की वस्तुस्थिति का ज्ञान कर सेनापति को सूचना दें जिसके आधार पर भावी संग्राम की योजना बनाई जा सके।

निजामुद्दीन अपनी टुकड़ी के साथ आगे बढ़ा। उधर मुजफ्फर

अपनी सुसज्जित सेना के साथ एक ऊँचे पर्वत-खंड पर मुगलों का सामना करने के लिए पहले ही से तैयार था। राजपिपला की पर्वतमालाओं के नीचे पहुँचते ही निजामुद्दीन की मुठभेड़ शत्रु के अग्रगामी पैदल दस्ते से हुई। घोर संघर्ष के पश्चात् रिपुदल पराजित हुआ और उसे भाग कर अपनी मुख्य सेना के बीच शरण लेनी पड़ी। इस प्रारम्भिक सफलता से मुगलों का साहस बढ़ा। वे अब उत्साहित हो अन्तिम संघर्ष के लिए आगे बढ़े। पथ प्रशस्त न होने के कारण अश्वारोहियों को बड़ी कठिनाई पड़ रही थी, अतः उन्हें पीछे छोड़ पैदल सेना आगे बढ़ी। शत्रु से सामना होते ही घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। गोलियों की बौछार तथा बाणों की वर्षा से दोनों ही पक्ष व्याकुल हो रहे थे किन्तु तब भी युद्ध की गति मन्द न हुई। युद्धनाद तथा आहतों की चीत्कार पर्वतश्रेणियों से प्रतिध्वनित हो कर बड़े बड़े योद्धाओं का भी दिल दहला रही थी। दोनों ओर के बहुत से वीर हताहत हुए। अब निजामुद्दीन ने सोचा कि जब तक शत्रु-दल पर्वत-शिखर पर बना रहेगा तब तक उसको पराजित करना टेढ़ी खीर है। अतः उसे वहाँ से खदेड़ने के लिए वह अपने कुछ प्रवीण अश्वारोहियों के साथ घोड़ों से उतर कर उस पहाड़ी पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु ऊपर से शत्रु का प्रहार इतना तीव्र था कि उसका प्रयास सफल न हो सका। इसी समय शाही सेना का वाम पार्श्व जिसे निजामुद्दीन ने सहायतार्थ बुलाया था, कुलीच ख़ाँ की अध्यक्षता में वहाँ पहुँच गया। कुलीच ख़ाँ तथा एक अन्य प्रसिद्ध मुगल योद्धा ख्वाजा रफी की, जो अभी अभी वहाँ आया था, सहायता से निजामुद्दीन ने विरोधी पक्ष पर प्रबल आक्रमण

किया। इस सम्मिलित प्रहार को रोकना गुजरातियों के लिए कठिन था, अतः वे भयभीत हो कर थोड़ा पीछे हट गए। इतने ही में उनकी सहायता के लिए वहाँ कुमक पहुँच गई। इससे उनका साहस बढ़ा और उन्होंने मुगलों पर जवाबी हमला किया। अन्त में शाही सेना को पीछे हटना पड़ा और कुलीच ख़ाँ ने अपने पार्श्व के साथ कुछ दूर जा कर एक पहाड़ी की आड़ में शरण ली।

युद्ध का यह काल मुगलों के लिए बड़ा ही संकटमय था। यदि रिपु-दल अपने नियत स्थान पर रहता और अपने व्यूह को भंग न करता तो सम्भवतः वह पराजित न होता। किन्तु उसके भाग्य में तो विजय लिखी ही नहीं थी। आक्रमणकारियों को परास्त होता देख गुजराती सुधविभोर हो उठे। उन्होंने सोचा कि मुगल सेना तितर-बितर हो गई है और उसमें अब इतनी शक्ति नहीं कि वह सम्मिलित हो कर आघात कर सके। अतः वे अपने स्थानों को छोड़ कुलीच ख़ाँ का पीछा करने को दौड़े। शाही सेना को वांछित अवसर मिला। अपने सामने का भाग खुला और अरक्षित देखकर निजामुद्दीन के साथी तुरन्त पहाड़ पर चढ़ गए। कुलीच ख़ाँ के पार्श्व का काफी दूर तक पीछा करने के पश्चात् जब शत्रु सेना वापस लौटी तो उसने देखा कि उसके स्थानों पर तो मुगलों ने अधिकार कर लिया है। अब उसे अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ किन्तु 'अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत'। खीझ कर वह शाही सेना पर टूट पड़ी।

फिर वही आघात, प्रत्याघात, हत्या और रक्तपात। मिर्ज़ा ख़ाँ सेना के मध्य भाग से यह सब दृश्य देख रहा था। जिधर शाही सेना दुर्बल पड़ती, उधर ही वह कुमक भेजता। आवश्यकता के समय

उपयोग करने के लिए कुछ बन्दूकें वह हाथियों की पीठ पर लाद कर ले गया था। उसने तुरन्त इन हथनालों को पर्वत शिखर पर किसी प्रकार निज़ामुद्दीन के पास भेजा। बस फिर क्या था, अग्निवर्षा प्रारम्भ हो गई। ये गोले ऐसे अन्दाज़ से छोड़े जाते थे कि शत्रु सेना के ठीक मध्य भाग में जहाँ मुज़फ्फ़र था, जा कर गिरते थे। इस अनवरत प्रहार से गुजरातियों में त्राहि-त्राहि मच गई। शाही सेना का वाम पार्श्व कुलीच ख़ाँ की अध्यक्षता में नीचे की पहाड़ियों की आड़ में छिपा हुआ था। यदि शत्रु उधर भागता तो वह उनकी ख़बर लेता। इधर उनका दाहिना पार्श्व नौरंग ख़ाँ और शरीफ़ ख़ाँ के नेतृत्व में एक ओर ऊँचे पर्वत शिखर पर चढ़ गया जहाँ से वह शत्रु के बाएँ भाग पर सरलता से प्रहार कर सकता था।

विवश मुज़फ्फ़र अब क्या करता। ऊपर से अग्निवर्षा और नीचे से बाणों के प्रहार। उसके दाहिने और बाएँ पार्श्व आहत हो पहले ही तितर बितर हो गए थे और अब हथनालों के गोलों ने उसके मध्यभाग में भी खलबली मचा दी। वह विक्षिप्त हो उठा। भाग्य उसके विपरीत था। अतः वह अपने दो हज़ार सैनिकों को रणक्षेत्र में मरा छोड़ कर किसी प्रकार जान बचा कर भागा। लगभग पाँच सौ विद्रोही बन्दी हुए और शीघ्र ही मृत्यु के घाट उतार दिए गए। कुछ गुजरातियों ने मुज़फ्फ़र का साथ छोड़ कर मिर्ज़ा ख़ाँ की शरण ली। उस उदार हृदय सेनापति ने उनके घोर अपराधों पर ध्यान न दे कर उन्हें क्षमा-दान दिया और उन्हें अपनी सेवा में भरती कर लिया। शाही सेना को मुज़फ्फ़र द्वारा परित्यक्त

बहुत सी सामग्री भी प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने मनमाना लूटा[१]।

जब फतेहपुर सीकरी में अकबर को मुजफ्फर के द्वितीय बार परास्त होने का समाचार मिला तो वह हर्षातिरेक से गद्गद हो उठा। उसने विजयदाता अखिलेश्वर को कोटिशः धन्यवाद दिया। यह विजय साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण थी ही, बादशाह के लिए इसका व्यक्तिगत महत्त्व भी कम न था। गुजरात की इन दोनों विजयों ने स्पष्ट प्रमाणित कर दिया कि अकबर ने मिर्ज़ा खाँ की उस प्रान्त में नियुक्ति पक्षपातवश नहीं अपितु योग्यता के कारण की थी। उदार हृदय स्वामी ने विजेता सेवकों के नाम शाही आदेश भेजे जिनमें उनकी पदोन्नति तथा पारितोषिक-प्राप्ति का उल्लेख था। अट्ठाईस वर्षीय राज्यपाल मिर्ज़ा खाँ अपने पिता की सम्मानित उपाधि 'खानखाना' से विभूषित हुआ और उसे पंच हजारी मनसब मिला। इनके अतिरिक्त बादशाह ने उसे प्रतिष्ठा के परिचायक वस्त्र (खिलअत) एक रत्न जटित खड्ग, अश्व तथा झंडा (तमन तोग) भी पारितोषिक के रूप में भेजे। उसके सहयोगियों को भी इसी प्रकार पुरस्कृत किया[२]। आगामी पृष्ठों में हम मिर्ज़ा खाँ को खानखाना के नाम से ही सम्बोधित करेंगे।

कहते हैं कि जब अकबर को मिर्ज़ा खाँ के मुजफ्फर के विरुद्ध किए जाने वाले युद्धों के विषय में दीर्घकाल तक कोई समाचार न

१–इस युद्ध के सम्पूर्ण विवरण के लिए देखिए अ० ना० भाग ३, पृ० ६४२–६४३; त० अ० भाग २, पृ० ५७६–५७७; म० र० भाग २, ३३९–३४०; मिराते सिकंदरी पृ० ३२० ।

२ अ० ना० भाग ३, पृ० ६४३; त० अ० भाग २, पृ० ५७८; म० र० भाग २, पृ० २४१ ।

प्राप्त हुआ तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। उसने प्रसिद्ध ज्योतिषी अमीर फतहउल्ला शीराज़ी को बुलवा कर पूछा कि गुजरात में क्या घटना चक्र चल रहा है। शीराज़ी ने नक्षत्र-गणना के पश्चात् उत्तर दिया कि इस वर्ष वहाँ दो युद्ध होंगे और दोनों में अन्तिम विजय शाही सेना को ही प्राप्त होगी। उसकी भविष्यवाणी सत्य निकली[1]।

ख़ानख़ाना का अहमदाबाद में पुनरागमन तथा मुज़फ्फर का पलायन।

मुज़फ्फर की दूसरी पराजय के पश्चात् ख़ानख़ाना ने शाही सेना के एक दस्ते को भागते हुए शत्रु का पीछा करने के लिए भेजा और स्वयं नर्मदा पार करता हुआ अहमदाबाद की ओर चला। मार्ग में माही नदी के निकट उसे सूचना मिली कि उपद्रवकारी राजपिपला पहाड़ियों से निकल कर इधर उधर फैल गए हैं और अपने नेता मीर आबिद के संरक्षण में मुंडा उपनगर के आस पास कृषकों को तंग कर रहे हैं। उसने तुरंत एक दस्ता निज़ामुद्दीन और मीर मासूम भक्करी की अध्यक्षता में उधर भेजा कि वे जा कर उन विद्रोहियों को दंड दें। गुजराती यह समाचार पाते ही डर गए और शाही सेना अभी दौलका ही पहुँची थी कि वे अपने रक्षा स्थानों की ओर फिर भाग गए।

६ मई, १८५४ ई० को विजयी ख़ानख़ाना ने अहमदाबाद में प्रवेश किया। वह जब से गुजरात आया था तब से मुज़फ्फर के ही दमन में व्यस्त था। सेनापति के कार्यों से उसे इतना अवकाश ही नहीं मिलता था कि राज्यपाल के कर्त्तव्यों का भली भाँति पालन कर सके।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ०६४३।

अब उसे साँस लेने का थोड़ा समय मिला और उसने इसका उपयोग शासन-व्यवस्था संगठित करने में किया। अनवरत युद्धों और निरन्तर उपद्रवों के कारण उस प्रान्त की दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। चारों ओर अनाचार और अराजकता फैल रही थी। ख़ानख़ाना के सम्मुख कठिन समस्यायें थीं। वह जानता था कि जिन गुत्थियों को शहाबुद्दीन तथा एतमाद ऐसे प्रवर तथा अनुभवी शासक भी न सुलझा सके, उनका सुलझाना उस युवक के लिए टेढ़ी खीर होगी। किन्तु वह निराश न हुआ और दत्तचित्त हो कार्य करता रहा। फलतः सात महीने के अल्पकाल में ही गुजरात की दशा सुधरने लगी। शासन व्यवस्था को नव जीवन मिला और विकल जनता को शान्ति के दर्शन हुए। ख़ानख़ाना के अथक परिश्रम ने मुगल अधीन क्षेत्रों में वह संतोष का वातावरण उत्पन्न किया कि मुजफ्फर को अब सहानुभूति प्राप्ति की आशा बहुत कम रह गयी।

अभागे मुजफ्फर को कहीं शान्ति नहीं थी। उसने सोचा था कि सतपुड़ा की अगम्य पर्वत मालाओं के मध्य वह सुरक्षित रह सकेगा किन्तु मुगलों ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। कुछ दिनों तक वह वहीं लुका-छिपी करता रहा किन्तु अन्त में मुगलों के दबाव से विवश हो वह वहाँ से निकला और उत्तर की ओर बढ़ा। इस बार उसकी दृष्टि पाटन की ओर थी जहाँ एतमाद ख़ाँ अपने सैनिकों के साथ डेरा डाले पड़ा था। उसने सोचा होगा कि उसका भूतपूर्व संरक्षक कदाचित् उसकी दयनीय दशा देख कर द्रवित हो जाय और फिर उसके झंडे के नीचे आकर उसकी सहायता को तत्पर हो जाय।

किन्तु यह केवल दुराशा थी। शाही सेना उसे यह

अवसर कैसे दे सकती थी। मुजफ्फर के उत्तर-प्रयाण की सूचना पाते ही ख़ानख़ाना ने एक टुकड़ी शाहमान बेग की अध्यक्षता में उसके मार्ग को रोकने के लिए भेजी। मुगलों को पीछा करते देख वह निराश शरणार्थी अब अहमदाबाद से चौंसठ मील उत्तर-पश्चिम ईदर नामक स्थान की ओर बढ़ा। किन्तु उस ओर भी उसका मार्ग अवरुद्ध था। अब वह क्या करता। विपत्ति में उसे अपने ननिहाल का स्मरण हुआ। उसने सोचा कि काठियों के अतिरिक्त उसकी सहायता अब कदाचित् ही कोई करे। इसलिए उत्तर अथवा पूर्व की ओर जाने का विचार त्याग वह पश्चिम की ओर मुड़ा। अपना नाम मनोहर रख कर चम्पानेर, वीरपुर तथा झलावर होते हुए अंत में काठियावाड़ पहुँचा। वह कुछ दिनों तक तो खम्भात की खाड़ी के एक बन्दरगाह, घोघा में रहा और फिर वहाँ से जूनागढ़ से तीस मील उत्तर-पश्चिम स्थित गोंडाल नामक उजड़े हुए उपनगर में गया। काठियावाड़ के तत्कालीन शासक अमीर ख़ाँ गोरी ने उसे वह स्थान रहने के लिए दे दिया।

इसी बीच मुगलों ने भड़ौच पर भी अधिकार कर लिया। समुद्र से तीस मील दूर, नर्मदा के उत्तर तट पर स्थित यह गढ़ अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण गुजरात के शासकों के लिए व्यापारिक तथा रक्षात्मक दोनों दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण था। अकबर ने इस तथ्य का अनुभव कर १५७३ ई० में अपनी प्रथम गुजरात यात्रा में ही इस पर अधिकार कर लिया था। तब से १५८३ ई० तक वह उसका स्वामी बना रहा। किन्तु जब मुजफ्फर ने विद्रोहियों के सहयोग से अपने पूर्वजों के राज्य पर

फिर अधिकार करने की चेष्टा प्रारम्भ की तो उसने उस किले के तत्कालीन मुगल अधिकारी कुतबुद्दीन की हत्या कर उसे पुनः प्राप्त कर लिया था। मुगलों ने उसको जीतने का कई बार प्रयास भी किया किन्तु उस दुर्ग के संरक्षक चरकस रूमी के, जो पहले मुगल सैनिक था किन्तु बाद में विश्वासघात कर विद्रोहियों की ओर चला गया था, प्रबल प्रत्याघातों के सम्मुख उनकी एक न चली। भड़ौच का दुर्ग अविजित ही रहा।

ख़ानख़ाना को यह बात खटक रही थी किन्तु मुजफ्फर के दमन में व्यस्त होने के कारण वह चुप था। ज्योंही नादौत विजय के पश्चात् उसे अवकाश मिला त्यों ही उसने मालवा से आई हुई सेना को कुलीच ख़ाँ आदि सेनानायकों की अध्यक्षता में उस गढ़ पर अधिकार करने को भेजा। १५८४ ई० के मार्च मास में शाही सेना ने उस किले के चारों ओर घेरा डाला। शत्रु उसका सामना करने के लिए पहले ही से तैयार था। मुगलों ने बड़े बड़े प्रयत्न किए किन्तु गुजरातियों के प्रबल प्रत्याघातों के कारण वह कुछ न कर सके। ख़ानख़ाना उस समय अहमदाबाद में था। शाही सेना की विवशता का समाचार पाते ही उसने शहाबुद्दीन को अध्यक्षता में एक कुमुक भेजी और उसको वचन दिया कि विजयोपरान्त वह सरकार उसे जागीर के रूप में दे दिया जावेगा। जागीर का प्रलोभन पा उस वयोवृद्ध अमीर ने जो कदाचित् वैसे उतना सहयोग न देता, सोत्साह भड़ौंच की ओर प्रयाण किया। उसके आगमन से शाही सेना का साहस बढ़ा और उन्होंने अपनी सारी शक्ति से किले पर छापा मारा। दुर्ग रक्षकों ने फिर भी उनका

वीरतापूर्वक सामना किया किन्तु अब परिस्थितियाँ उनके विपरीत थीं। बाहर से खाद्य-सामग्री न पहुँच सकने के कारण उनकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। उनका धैर्य जाता रहा। अन्त में २४ सितम्बर १५८४ ई० को उनके तोपख़ाने का नेता चुपके से बाहर निकला और उसने आक्रमणकारियों से कहा कि यदि वे फाटक की ओर बढ़ें तो उसके सहयोगी बिना किसी प्रतिरोध के किले के किवाड़ खोल देंगे। सात मास के निरंतर संघर्ष के पश्चात् शाही सेना भी काफी थक गई थी और युद्ध समाप्ति की इच्छुक भी थी। अतः बिना मीन मेख निकाले वह उसके शब्दों पर भरोसा कर फाटक की ओर बढ़ी। पहुँचते ही कपाट खुल गये और वह दुर्ग के भीतर घुस गई। वहाँ कुछ लोगों ने उसको रोकने की चेष्टा की किन्तु बेकार। किले पर मुगलों का पुनः अधिकार हो गया। गढ़ संरक्षक चुपके से जान बचाकर निकल भागा किन्तु अन्त में पकड़ा गया और मार डाला गया।[१]

मुजफ्फर की तीसरी पराजय

दो बार पराजित होने पर भी मुजफ्फर का साहस भंग न हुआ। वह ऐसी धातु का नहीं बना था जो अग्नि-दर्शन से ही पिघल जाता। उसे अब भी अपनी शक्ति पर विश्वास था और भाग्य पर भरोसा। वह जानता था कि धन-दान का प्रलोभन पा कर उसके साथी फिर सहायतार्थ प्रस्तुत हो जायँगे। मुगल अधिकारियों के पारस्परिक

१ अ० ना भाग ३, पृ० ६२६–६२७; त० अ० भाग २, पृ० ४७८; म० उ० भाग २, पृ० २४१; मिराते सिकंदरी पृ० ३२१।

वैमनस्य का भी उसे पता था। अतः अपने भाग्य की एक बार पुनः परीक्षा करने का निश्चय करके वह काठियावाड़ गया था। वहाँ पहुँचते ही उसने द्रव्य वितरण प्रारम्भ कर दिया और उसके लोभी सहकारी एक एक करके फिर उसके झंडे के नीचे आने लगे। देखते देखते उनकी संख्या तीन सहस्र तक पहुँच गई। किन्तु अनुभवी मुजफ्फर इस बार केवल उन्हीं के भरोसे मुगलों से लोहा नहीं लेना चाहता था। उसने उस प्रायद्वीप के दो प्रमुख व्यक्ति जूनागढ़ के शासक अमीन ख़ाँ गोरी तथा झलावर के राजा जामछत्रसाल से भी सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझा। अतः विपुल धन और उपहार देकर उन्हें भी उसने अपने पक्ष में कर लिया। उन्होंने मुजफ्फर को परामर्श दिया कि वह पहले अहमदाबाद की ओर चले और अश्वासन दिया कि पीछे से वे भी अपने सैनिकों के साथ उसकी सहायतार्थ आ जायेंगे। भोले मुजफ्फर ने उनके वचन पर भरोसा कर एक बार फिर मुगलों से युद्ध करने के लिए अहमदाबाद की ओर प्रयाण किया।

इधर ख़ानख़ाना पहले ही से सतर्क था। ज्यों ही उसे राजधानी की ओर मुजफ्फर के अग्रसर होने की सूचना मिली त्यों ही उसने शाही सेना की तीन टुकड़ियों को विभिन्न दिशाओं में भेजा जिससे वे शत्रु के आकस्मिक आक्रमणों से नगर की रक्षा कर सकें। पहली टुकड़ी को, जिसमें मेदिनी राय, रामचन्द्र, सैयद बहादुर तथा ख्वाजा वर्दी आदि प्रमुख राजपूत योद्धा और बारहा के वीर सैयद थे, आज्ञा हुई कि वह दन्दूका से बीस मील उत्तर-पूर्व हदाला नामक ग्राम में जाकर तैनात रहें। दूसरी टुकड़ी जिसमें मियाँ बहादुर,

भूपत राय एवं अन्य वीर थे, अहमदाबाद से पैंतीस मील उत्तर-पूर्व परंजित नामक स्थान पर नियुक्त हुई और तीसरी सैयद कासिम की अध्यक्षता में प्रान्त की प्राचीन राजधानी पाटन भेजी गई। इस प्रकार रक्षा के सारे उपलब्ध साधनों से इन चौकियों को सुदृढ़ कर और राजधानी की देख रेख का भार कुलीच ख़ाँ आदि विश्वसनीय सेवकों को सौंप, ख़ानख़ाना स्वतः निज़ामुद्दीन, नौरंग ख़ाँ तथा अन्य सेना नायकों के साथ पश्चिम की ओर रवाना हुआ।

इधर मुजफ्फर राजकोट से पैंतीस मील उत्तर-पूर्व, मच्छू नदी के तट पर मोर्वी नामक उपनगर तक पहुँच कर अपने नवीन खरीदे गए मित्रों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे विश्वास था कि वे अपने वचनानुसार सहायतार्थ अवश्य आएँगे। किन्तु अन्त में उसे निराशा ही हाथ लगी। वे विश्वासघाती तो उससे किसी प्रकार रुपया ऐंठना चाहते थे। वे इतने मूर्ख न थे कि उसका दुर्बल पक्ष लेकर शक्तिशाली मुगलों से अकारण ही शत्रुता मोल लेते। वे खूब समझते थे कि ऐसा करने से भविष्य में उन्हें क्या क्या फल भोगने पड़ेंगे। अतः वे चुपचाप अपने घर ही बैठे रहे। मुगलों को तीव्र गति से अग्रसर होते सुन और निकट भविष्य में किसी भी दिशा से सहायता आते न देख, मुजफ्फर बहुत घबराया। विवश हो वह पीछे लौटा और राजकोट होता हुआ अन्त में बार्दा की पहाड़ियों में जा कर उसने शरण ली। विपत्ति काल में विद्रोहियों का यह प्रिय आश्रय स्थान था।

ख़ानख़ाना को उक्त सूचना अहमदाबाद से चालीस मील उत्तर-पश्चिम वीरमगाँव नामक स्थान पर मिली। वह अविलम्ब

अपने शिविर को पीछे छोड़, कतिपय सहकारियों के साथ मुजफ्फर का पीछा करने के लिए आगे बढ़ा। रेगिस्तानी पथ की अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ मुगल दल शीघ्र ही उस पर्वतीय प्रदेश की बाह्य सीमा पर पहुँच गया जहाँ मुजफ्फर शरण की आशा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटक रहा था। जब उन भूपालों को, जिन्होंने मुजफ्फर से धन ले कर उसे सहायता का वचन दिया था, शाही सेना के आगमन का समाचार मिला तो वे बहुत भयभीत हुए। उन्होंने अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अपने प्रतिनिधियों को मुगल सेनापति के पास भेजा। उन्होंने अकबर के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रकट की और वचन दिया कि वे मुजफ्फर का दमन करने तथा अपने क्षेत्रों से उसे बाहर निकालने में शाही सेना को पूर्ण सहयोग देंगे। ख़ानख़ाना को उनके व्यवहारों से विश्वास हो गया कि वे उसकी सहायता अवश्य करेंगे। अतः उसने अपनी सेना के चार दस्तों को—तीन तो अपने अधीनस्थों की अध्यक्षता में और चौथा स्वतः अपने नेतृत्व में—विभिन्न दिशाओं से मुजफ्फर को पकड़ने के लिए आगे बढ़ाया। जाम के सेवक उनका पथ प्रदर्शन कर रहे थे। मार्ग में उन्हें पहाड़ी प्रदेश के राजपूत निवासियों से कई बार संघर्ष करना पड़ा क्योंकि वे अपनी जातिगत परम्परा के अनुसार घर में आए हुए शरणार्थी को समर्पित करने को उद्यत न थे। किन्तु शाही सेना शक्ति और संख्या दोनों में ही उनसे प्रबल और अधिक थी अतः उन शूरों का प्रतिरोध अन्त में असफल ही रहा। उनके अधिकांश नेता या तो बन्दी हुए या मारे गए। क्रूर सैनिकों ने उनके उपजाऊ प्रदेश को तहस नहस कर डाला और उनकी सम्पत्ति को मनमाना लूटा।

अपने राजपूत समर्थकों की पराजय से मुजफ्फर क्षुब्ध हो उठा। अब उसका उस प्रदेश में रहना दूभर हो गया। जब उसने देखा कि शाही सेना सभी दिशाओं से उसे घेरने के लिए बढ़ती चली आ रही है, तो वह वहाँ से निकला। उसके पास अब भी एक हजार सैनिक थे। उनके साथ लुकते छिपते वह झलावर पहुँचा। जाम ने उसका स्वागत किया और उसके पुत्र को अपनी शरण में रख, चुपके से उसे अपने राज्य से होकर बाहर निकल जाने दिया। मुजफ्फर एक बार फिर गुजरात की ओर बढ़ा।

जाम के इस आचरण ने खानखाना को आग बबूला कर दिया। उसका इतना साहस कि स्वमिभक्ति और सहयोग का वचन देकर भी वह उसके साथ ऐसा विश्वासघात करे। उसे इस कृत्य का पाठ अवश्य पढ़ाना चाहिए। अतः उसने मुजफ्फर का पीछा कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया और अपने सारे दस्तों को एकत्र कर वह जाम से निपटने के लिए उसकी राजधानी नवानगर की ओर चला। जाम का अनुमान था कि मुजफ्फर के गुजरात प्रयाण की सूचना पाते ही शाही सेना का अधिकांश भाग उधर चला जायगा और अवशेष भाग को पराजित करना उसके लिए कठिन न होगा। अतः वह भी अपनी विशाल सेना के साथ शत्रु का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। किन्तु अभी चार कोस भी न आया था कि उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ और अब मुगलों की अपार शक्ति के सम्मुख नत मस्तक हो जाने में ही उसने अपना कल्याण समझा। उसका प्रेषित दूत खानखाना की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने प्रार्थना की कि उसके स्वामी को वचन भंग के लिए क्षमा दान मिले। जाम ने इस निवेदन के साथ ही

अपने पुत्र, जैसा, को भी अनेक बहुमूल्य उपहारों के साथ, जिनमें शीराज नामक प्रसिद्ध हाथी और अट्ठारह बढ़िया नस्ल के अरबी घोड़े भी थे, मुगल सेनापति के यहाँ भेजा। उसने एक बार पुनः आश्वासन दिया कि भविष्य में वह अपने वचनों का सत्यता तथा ईमानदारी से पालन करेगा। खानखाना को अब भी उसकी बातों पर विश्वास न होता था किन्तु जब राय दुर्गा सीसोदिया और कल्याण राय ने मध्यस्थ होकर उसे बहुत समझाया बुझाया तो वह मान गया। जाम को क्षमा दान मिला और खानखाना अपने दल बल सहित शीघ्रता से अहमदाबाद की ओर अग्रसर हुआ।

उधर मुजफ्फर बार्दा की पर्वत मालाओं से बाहर निकल कर झलावर होता हुआ उथनियाँ पहुँचा[१]। यहाँ के कोली भूपाल, भाई, ने उसका स्वागत किया। धीरे धीरे यहाँ भी उसके समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी। मुजफ्फर ने सोचा कि मुगल सेनापति अपने अधिकांश सैनिकों के साथ काठियावाड़ में है। इसलिए यही समय अहमदाबाद पर आक्रमण करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। उसने अविलम्ब अपनी सेना सुसज्जित की और राजधानी की ओर चल दिया। किन्तु इधर मुगल पहले ही से सतर्क थे। शत्रु के आगे बढ़ने की सूचना पाते ही हदाला में नियुक्त शाही दस्ता तुरन्त परंतिज वाले दस्ते के सहायतार्थ झपटा। अहमदाबाद से पैंतीस मील उत्तर पूर्व परंतिज के निकट एक मैदान में दोनों पक्षों की मुठभेड़ हुई। खूब डटकर युद्ध हुआ और दोनों ही ओर के बहुत से वीर खेत रहे। अन्त में मुजफ्फर

---

१ साबरमती नदी और बार्दा की पहाड़ियों के मध्य कहीं एक स्थान।

पराजित हुआ और जान बचा कर रण क्षेत्र से भागा[१]।

ख़ानख़ाना को इस विजय का शुभ समाचार कठियावाड़ से गुजरात आते समय मौर्वी नामक स्थान पर मिला। वह शीघ्र ही राजधानी में पहुँचा और फिर पाँच मास तक शासन व्यवस्था संगठित करने में व्यस्त रहा। मुजफ्फर के उपद्रवों के कारण प्रान्त में फिर अराजकता फैलने लगी थी। लूट मार तथा नोच-खसोट से जनता तंग आ गई थी। मुगल राज्यपाल ने एक बार फिर शान्ति और व्यवस्था स्थापित की और उसके अधीन क्षेत्रों में लोगों की दशा फिर सुधरने लगी।

इसी बीच ख़ानख़ाना को अकबर का आदेश मिला कि ज्योंही गुजरात में शान्ति स्थापित हो जाय त्योंही वह फतेहपुर सीकरी आकर दरबार में उपस्थित हो। मुजफ्फर तीन बार पराजित हो ही चुका था। उसके अधिकांश सहयोगी या तो रणचंडी के ग्रास बन चुके थे या साथ छोड़ कर मुगल सेना में भरती हो गए थे। निकट भविष्य में किसी महान उपद्रव की सम्भवना न थी। अतः ख़ानख़ाना ने अपने कृपालु स्वामी से भेंट के लिए अनूठे गुजराती उपहारों के साथ प्रस्थान किया। अनवरत यात्रा के पश्चात् १५८५ ई० के अगस्त मास में वह अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ[२]।

ख़ानख़ाना को दरबार में वापस क्यों बुलाया गया ? इस प्रश्न का

अ० ना० भाग ३, पृ० ६८१-६८४; त० अ० भाग २, पृ० ५७८-५८२; म० उ० भाग २, पृ० २४१-२४२; बदायूनी भाग २ पृ० ३७०-३७१; मिराते सिकन्दरी पृ० ३२१-३२२; २ अ० ना० भाग ३, पृ० ६६६।

उत्तर समसामयिक इतिहास ग्रन्थों में कहीं भी नहीं दिया है। केवल ख़ानख़ाना के उन पत्रों से, जो उसने अपने गुजरात-शासन की अवधि में शेख़ अबुल फ़ज़ल को लिखे थे, इस विषय में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। युवक राज्यपाल को प्रारम्भ से ही अपने वयोवृद्ध अधीनस्थों का सम्पूर्ण हार्दिक सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा था। वे पग पग पर रोड़े अटकाते और टीका टिप्पणी करते। वे सदैव इसी प्रयत्न में रहते कि किसी प्रकार अपने नेता की योजनाओं को विफल कर उसे अपयश और अपकीर्ति का भागी बनावें। उनके स्वार्थ तथा ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार से ख़ानख़ाना बड़ा क्षुब्ध होता और इन उद्गारों को वह प्रायः शब्दबद्ध कर शेख़ अबुल फ़ज़ल के पास भेजता। उसने कई बार शेख़ से प्रार्थना की कि वह बादशाह से कहे कि आप या तो मिर्ज़ा ख़ाँ को गुजरात से वापस बुला लीजिए या स्वतः वहाँ जाकर उसकी सहायता कीजिए। उत्तर भारत की समस्याओं में उलझे होने के कारण अकबर स्वतः उस समय तो वहाँ जा नहीं सकता था, अतः बहुत सम्भव है कि ख़ानख़ाना को धैर्य एवं सान्त्वना देने के लिए उसी को कुछ समय के लिए दरबार में बुला लिया हो। इस समय गुजरात में शान्ति थी और उसकी अल्पकालीन अनुपस्थिति से प्रान्त की शासन व्यवस्था में कोई विशेष अंतर न पड़ता। ख़ानख़ाना के वापस बुलाए जाने का एक और कारण हो सकता है। अकबर उस समय नर्मदा के दक्षिण की ओर भी अपने साम्राज्य-विस्तार की योजना बना रहा था। बहुत सम्भव है कि उसने गुजरात के राज्यपाल को, जिसका प्रान्त दक्षिण देश की ठीक सीमा पर स्थित था, और जो प्रस्तावित आक्रमण के औचित्य के

विषय में बहुमूल्य परामर्श दे सकता था, विचार विमर्श के ही लिए बुलाया हो।

खानखाना के गुजरात शासन की द्वितीय अवधि।

ख़ानख़ाना दरबार में अधिक दिनों तक न रह सका। मुजफ्फर तीन बार बुरी तरह परास्त होने पर भी निराश न हुआ था। वह जब कभी अवसर पाता, मुगलों पर छापा मारता और उन्हें अपने पूर्वजों के राज्य से निकालने का प्रयत्न करता। ऐसी परिस्थिति में राज्यपाल की उपस्थिति वहाँ आवश्यक थी। अतः जब अकबर अपने दल बल के साथ पंजाब की ओर जा रहा था, तो मार्ग में सराय आबद नामक स्थान पर उसने ख़ानख़ाना को आज्ञा दी कि वह शीघ्र गुजरात जा कर अपना कार्यभार सम्हाले। स्वामी का आदेश शिरोधार्य कर और विशिष्ट उपहारों से पुरस्कृत हो, खानखाना ने एक बार पुनः जालार के मार्ग से गुजरात की ओर प्रयाण किया[१]।

सिरोही के निकट पहुँच कर उसने मार्ग में स्थित दो स्वतन्त्र राज्यों, सिरोही और जालौर, को जीतने का निश्चय किया। उसने किस उद्देश्य से ऐसा किया, उसका उल्लेख किसी भी समसामयिक स्रोतों में नहीं मिलता। स्पष्टतः अकबर के आदेश से ही उसने ऐसा किया होगा। स्वेच्छा से वह कदाचित् ही ऐसा करता। वास्तव में आगरा—गुजरात-मार्ग में बाधक इन दोनों राज्यों की स्वतंत्र स्थिति अखिल भारतीय साम्राज्य के स्वप्न द्रष्टा अकबर को कभी सहन नहीं

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ७०९।

हो सकती थी। इसके अतिरिक्त गुजरात का स्वामी होने के नाते भी इनका उसके लिए बड़ा महत्त्व था। ये राज्य उस प्रान्त की सीमा के निकट थे और आए दिन यहाँ के उपद्रवकारी यहाँ आकर शरण लेते और अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचा करते थे। साम्राज्यवादी अकबर के सम्मुख दो ही उपाय थे। या तो वे राज्य उसके अधिकार में रहें या किसी विश्वस्त मित्र के। इन स्वतन्त्र शासकों के व्यवहारों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि उन पर मित्र का सा भरोसा नहीं किया जा सकता। अतः उनको विजित करना आवश्यक था।

ख़ानख़ाना ने एक दस्ता अहमदाबाद से पहले ही बुलवा भेजा था। निज़ामुद्दीन की अध्यक्षता में वह शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा। मुग़लों के आगमन का समाचार पाते ही वहाँ का राजा भयभीत हो उठा। उसने समर्पण कर देने में ही अपना कल्याण समझा। बहुमूल्य भेंटों के साथ वह ख़ानख़ाना की शरण में उपस्थित हुआ और अकबर का आधिपत्य स्वीकार करने का उसने वचन दिया। ख़ानख़ाना तो यही चाहता ही था। उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई। अब मुग़ल सेना जालौर की ओर बढ़ी। वहाँ के शासक गजनी ख़ाँ को अपनी शक्ति पर अभिमान था। वह ख़ानख़ाना के कहने पर भी समर्पण करने को उद्यत न हुआ। किन्तु शक्तिशाली मुग़ल सेना के सम्मुख वह कितने दिनों टिकता। विवश हो उसे पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। ख़ानख़ाना उसके विद्रोहात्मक व्यवहार से पहले ही चिढ़ा हुआ था। अतः उसने उसका राज्य छीन लिया और उसे बन्दी बना कर अपने साथ अहमदाबाद ले आया[1]।

१. अ० ना० भाग ३, पृ० ७१०–७११; त० अ० भाग २, पृ० ३८३।

ख़ानख़ाना के कार्यकाल की द्वितीय अवधि अपेक्षाकृत शान्ति पूर्ण बीती। इस बार उसे कोई उल्लेखनीय युद्ध नहीं करना पड़ा। गुजरात पहुँचते ही वह शासन कार्यों में व्यस्त हो गया और जब तक वह वहाँ रहा उसका सारा ध्यान प्रान्त की आर्थिक स्थिति सुधारने में ही लगा रहा। उसकी उपस्थिति में मुजफ्फर को इतना साहस न होता था कि मुगलों को वह फिर छेड़े। इस काल में केवल एक विशेष घटना घटी और वह थी ख़ानख़ाना का अपने साले ख़ान आज़म की सहायतार्थ दक्षिण प्रयाण।

बात यह थी कि दक्षिण में बुरहान निज़ामुलमुल्क अपने पागल भाई से शासनसत्ता छीन कर अपने हाथ में लेना चाहता था। कई बार प्रयत्न करने पर भी जब वह अपने उद्देश्य में सफल न हुआ तो उसने अकबर से सहायता की याचना की। बादशाह ने ख़ान आज़म को जो उस समय मालवा का राज्यपाल था, बुरहान की सहायता के लिए दक्षिण भेजा। अकबर का यह हस्तक्षेप दक्षिण वालों को बहुत बुरा लगा और उन्होंने सामूहिक रूप से ख़ान आज़म का विरोध किया। इधर शाही सेना पारस्परिक ईर्ष्या के कारण अपने नेता को पूर्ण योग नहीं दे रही थी। फलतः ख़ान आज़म को विवश हो कर गुजरात की सीमा पर लौट आना पड़ा और वहाँ से उसने ख़ानख़ाना को तुरन्त सहायता भेजने की प्रार्थना करते हुए कई पत्र लिखे।

ख़ानख़ाना ने अविलम्ब निज़ामुद्दीन के नेतृत्व में एक दस्ता उसकी ओर भेजा। किन्तु अभी महमूदाबाद तक ही पहुँच पाया था कि ख़ान आज़म स्वतः अपनी सेना को पीछे छोड़ कर अहमदाबाद की

ओर चला। जब ख़ानख़ाना को यह सूचना मिली तो वह अपने साले के स्वागतार्थ स्वयं महमूदाबाद आया और उसे बड़ी आवभगत के साथ अहमदाबाद लिवा ले गया। यहाँ उन लोगों ने परस्पर विचार विमर्श के पश्चात् यह निश्चय किया कि ख़ान आज़म नन्दरबार वापस जा कर अपने सैनिकों को एकत्र करे और इधर से ख़ानख़ाना अपने दल के साथ दो दिन पश्चात् उसकी सहायतार्थ आ जाएगा। किन्तु जब ख़ानख़ाना अपनी अग्रगामी टुकड़ी के साथ भड़ौच पहुँचा तो उसे सूचना मिली कि ख़ान आज़म ने दक्षिण की चढ़ाई वर्षाकाल की समाप्ति तक स्थगित कर दी है। अतः ख़ानख़ाना अपनी राजधानी लौट आया[१]।

ख़ानख़ाना को गुजरात के राज्यपाल पद पर कार्य करते चार वर्ष हो चुके थे[२]। उसने इस अवधि में अपने स्वामी की सेवा बड़े ही लगन और साहस से की थी। मुज़फ़्फ़र के विरुद्ध किए गए युद्धों में उसने जिस सैनिक प्रतिभा, रणकौशल तथा शौर्य्य का परिचय दिया था उसकी अकबर के हृदय पर गहरी छाप पड़ी थी। शत्रु के पास अब न इतने साधन ही थे न शक्ति ही कि वह निकट भविष्य में मुग़लों के विरुद्ध सर उठा सके। उसकी दृढ़ शासन नीति के फल स्वरूप उस उपद्रवी प्रदेश में एक बार पुनः शान्ति और व्यवस्था की स्थापना हुई थी। उसकी अनुपम उदारता से प्रभावित, मित्र तथा शत्रु सभी एक स्वर से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

---

१. अ० ना० भाग ३, पृ० ७४२; त० अ० भाग २, पृ० ६८७।

२ सितम्बर, १५८३ ई० से मार्च, १५८७ ई० तक ख़ानख़ाना गुजरात का राज्यपाल रहा। मासिरे रहीमी का यह कथन कि वह उस पद पर सात वर्ष तक रहा, स्पष्टतः असमूलक है।

अब यह स्वाभाविक ही था कि वह महत्त्वाकांक्षी युवक अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन के हेतु किसी अन्य अधिक दायित्वपूर्ण पद की कामना करे। सौभाग्य से वह अवसर भी शीघ्र ही आ गया। अकबर उस समय लाहौर में बैठा अपने पूर्वजों के प्रदेश बदख़शाँ पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। ख़ानख़ाना ने निवेदन किया कि उसे भी इसमें भाग लेने का अवसर दिया जाय। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई और बादशाह ने आज्ञा दी कि वह शीघ्र दरबार में उपस्थित हो। ख़ानख़ाना को तो केवल आदेश की प्रतीक्षा थी। उसने अविलम्ब अपना कार्यभार अधीनस्थों को सौंपा और एक तीव्रगामिनी साँड़िनी पर सवार हो लाहौर की ओर प्रस्थान किया। समस्त यात्रा पन्द्रह दिनों में ही समाप्त कर वह १६ मार्च, १५८७ ई० को बादशाह के सम्मुख दरबार में उपस्थित हुआ[१]।

---

१. अ० ना० भाग ३, पृ० ७११; त० अ० भाग २, पृ० ४८६; बदायूनी भाग २, पृ० ३७३; म० र० भाग २, पृ० ३८४; मिराते सिकंदरी पृ० ३२२।

तृतीय अध्याय।

ख़ानख़ाना की सिंध विजय।

ख़ानख़ाना गुजरात से आया था, बदख्शाँ विजय में भाग लेने, किन्तु किन्हीं कारणों से अकबर की प्रस्तावित योजना कार्यान्वित न हो सकी। अतः तीन वर्ष तक ख़ानख़ाना दरबार में ही रहा। उसका यह अवकाश अत्यन्त सुख और शान्ति में बीता। इस समय किसी विशेष कार्य का दायित्व उस पर न था। जो काम सामने आता, करता, अन्य था अध्ययन में व्यस्त रहता। सन १५८८ ई० में अर्थ मंत्री राजा टोडरमल तथा प्रसिद्ध अमीर शाहबाज़ ख़ाँ में किसी विषय पर झगड़ा हो गया। मामला अकबर तक पहुँचा। उसने ख़ानख़ाना को अबुल फज़ल, अस्दुद्दौला तथा हकीम अब्दुल फतह के साथ उसकी जाँच करने को कहा। उनकी सम्यक जाँच से ज्ञात हुआ कि दोनों ही किसी न किसी रूप में दोषी थे। इसी प्रकार के अन्य कार्य भी समय समय पर उसे मिला करते थे[1]।

अप्रैल, १५८९ ई० में अकबर लाहौर से सपरिवार काश्मीर यात्रा को चला। ख़ानख़ाना भी साथ गया। जब शाहीदल उस पर्वतीय प्रदेश की सीमा पर भिम्बर नामक स्थान पर पहुँचा तो बादशाह के हृदय में एक तरंग उठी। उसने अपने पुत्र मुराद को आज्ञा दी कि वह बेगमों के साथ धीरे धीरे आवे और वह स्वतः कुछ विश्वस्त अमीरों के साथ आगे बढ़ा। इस बार भी

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ८०७।

ख़ानख़ाना बादशाह के ही साथ था। शैलमालाओं को पार करता हुआ जब अकबर काश्मीर की सुरम्य घाटी में पहुँचा तो वहाँ की मनोहर छटा देख कर मन्त्रमुग्ध सा हो गया। उसका हृदय हर्षातिरेक से नाच उठा। किन्तु उस विहार स्थल का पूर्ण रसास्वादन तो वह तभी कर सकता था जब कि उसकी प्रेयसियाँ भी साथ हों। अतः दल के सर्वाधिक विश्वासपात्र ख़ानख़ाना को उसने वापस भेजा कि वह बेगमों को ले आने में राजकुमार की सहायता करे।

किन्तु पर्वतीय पथ की कठिनाइयों के कारण बेगमों के ले आने में कुछ विलम्ब हुआ। अब अकबर अधीर हो उठा। इसके पूर्व युवराज सलीम को भी उसने इसी कार्य के लिए भेजा था और वह भी अपने कर्त्तव्यपालन में सफल न हो सका था। उसने क्रुद्ध हो कर ख़ानख़ाना को लिखा कि यदि युवराज ने अपने दुर्व्यसनों के कारण इस प्रकार का आचरण किया तो तुमने उसे ऐसी धृष्टता क्यों दिखलाने दी। क्रोधावेश में उसने निश्चय किया कि वह स्वयं जाकर बेगमों को ले आवेगा। किन्तु बहुत समझाने बुझाने के बाद मान गया। अब ख़ानख़ाना को एक दूसरा आदेश भेजा गया कि वह शीघ्रातिशीघ्र उन रमणियों को ले आवे। खानख़ाना ने इस बार अथक प्रयत्न किए। मार्ग प्रशस्त करता और पालकी-वाहकों को तीव्र गति से बढ़ने की प्रेरणा देता, अन्त में वह २० जून को बेगमों के साथ अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ। अन्तःपुर के लोगों (अहले हरम) को देख बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने ख़ानख़ाना आदि को जिन्होंने यह सराहनीय सेवा की थी, विभिन्न पारितोषिक दिए[१]।

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ८१६,८२१,८२४,८२५; बदायूनी भाग २, पृ० ३८१।

उस मनोहर घाटी में कुछ दिन विहार करने के पश्चात् ११ जूलाई, १५८९ ई० को शाही दल ने काबुल की ओर प्रयाण किया। ख़ानख़ाना इस समय भी उसके साथ था। पहले जल, फिर स्थल मार्ग से यात्रा करता हुआ, वह बहत्तर दिनों में अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा। अभी वह प्रकृति की गोद में स्थित उस चित्ताकर्षक प्रदेश के सौन्दर्य सुधापान में मग्न ही था कि उसे साम्राज्य के दो प्रधान स्तम्भों राजा भगवानदास और राजा टोडरमल के आकस्मिक निधन का समाचार मिला। इन हृदय विदारक घटनाओं ने रंग में भंग कर दिया। बादशाह शीघ्रातिशीघ्र राजधानी लौटने को आतुर था अतः केवल दो मास के पश्चात् ही शाही दल फिर भारत की ओर चला।

सेना एवं शासन के दायित्वों से मुक्त, ख़ानख़ाना ने उस समय अपने स्वामी के साथ काश्मीर तथा काबुल की स्वर्गोपम छटा का जी भर रसास्वादन किया होगा। अवकाश के उन क्षणों का सदुपयोग कर उसने तुज़के बाबरी का मूल तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद कर डाला। २४ नवम्बर, १५८९ ई० को मार्ग में ही यह ग्रंथ बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। अपने पितामह की आत्मकथा का सरल तथा सुबोध भाषा में रूपान्तर सुन वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसने इस प्रतिभाशाली अनुवादक की भूरि भूरि प्रशंसा की। साहित्य जगत को ख़ानख़ाना की यह प्रथम देन थी[१]।

इस समय ख़ानख़ाना के नक्षत्र अच्छे थे। उक्त घटनाओं के

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ८६२।

एक मास पश्चात् ही अकबर ने उसे साम्राज्य का वकील (उपप्रधान) नियुक्त किया। राजा टोडरमल की मृत्यु के बाद से यह स्थान रिक्त था और तभी से बादशाह इस पद के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति की खोज में था। ख़ानख़ाना की योग्यता तथा निःस्वार्थता से तो वह प्रभावित था ही, उस समय वह बेकार भी था। अतः जब शाही दल काबुल से भारत आता हुआ, सिन्ध के उसी पार था, तभी बादशाह ने उसे उक्तपद पर आसीन किया। साथ ही गुजरात स्थित जागीर के स्थान पर उसे जौनपुर का प्रान्त जागीर के रूप में दिया गया[१]।

सोलहवीं शताब्दि में वकील मुग़ल साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी समझा जाता था। प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी सभासद इस पद के लिए लालायित रहता था। साम्राज्य के सर्व प्रथम वकील नियुक्त होने का गौरव ख़ानख़ाना के पिता बैरमख़ाँ को प्राप्त हुआ था। उसके समय में वकील के अधिकार बहुत विस्तृत थे। शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों ही दृष्टियों से बादशाह के नीचे इसी का स्थान था। वह पूरे साम्राज्य का भाग्यविधाता था। कालान्तर में वकील की शक्ति कम होती गई और उसके बहुत से अधिकार दीवान को दे दिए गए। जिस समय ख़ानख़ाना की नियुक्ति इस पद पर हुई, उस समय वकील साम्राज्य का सर्वेसर्वा तो न था किन्तु प्रतिष्ठा तथा गौरव में अब भी वह सर्वोच्च ही था। शक्ति अवश्य कम हो गई थी किन्तु उसका बाह्य प्रभाव तथा आडम्बर अब भी अवशिष्ट था। किन्तु कुछ इतिहासकारों का यह अनुमान अधिक युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता कि ख़ानख़ाना की इस नियुक्ति का एकमात्र उद्देश्य था,

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ८६९; त० अ० भाग २, पृ० ३२६; बदायूनी भाग २, पृ० ३८४।

एक प्रियजन को प्रतिष्ठित करना न कि शासन कार्यों में उसका उपयोग। ख़ानख़ाना प्रियजन होने के साथ ही योग्य शासक भी था, इसका परिचय गुजरात प्रकरण में दिया जा चुका है। उसकी नियुक्ति के समय अकबर ने उक्त बातों को ध्यान में रखा होगा। प्रमाणों के अभाव में एकांगी धारणा बना लेना अनुचित है[१]।

ख़ानख़ाना को वकील पद पर कार्य करते अभी वर्ष ही हुआ था कि अकबर ने उसकी नियुक्ति कंधार विजय को भेजी जाने वाली सेना के प्रधान पद पर की। किन्तु खानखाना अभी मार्ग में ही था कि बादशाह ने अपना निश्चय बदल दिया और सेनापति को आज्ञा दी कि वह कंधार विजय से पूर्व सिंध विजय करे। फलतः खानखाना ने अपनी वाहिनी के साथ सिंध की राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

संघर्षों से मुक्त खानखाना का सुख एवं शान्तिमय यह अवकाश उसके साहित्यिक जीवन का सबसे बहुमूल्य काल था। काश्मीरी प्रपातों के नाद तथा काबुली उपवनों के विकसित वसंत ने उसके भीतर जिन काव्यभावनाओं का बीजारोपण किया, वे कालान्तर में पूर्ण सौष्ठव एवं शक्ति के साथ पल्लवित तथा पुष्पित और फलित हुईं। कदाचित् इसी समय हिन्दी के प्रातः स्मरणीय महाकवि तुलसीदास से उसकी प्रथम भेंट हुई। खानखाना उस समय जौनपुर का जागीरदार था और महाकवि उसी प्रान्त के प्रमुख नगर काशी में निवास करते थे। हिन्दी काव्य के अनन्य उपासक खानखाना ने सम्भवतः काशी जा कर उनके दर्शन किए होंगे। उसके पश्चात् खानखाना प्रायः उत्तरी भारत से दूर ही रहा किन्तु वह मित्रता जो उस समय इन दोनों

१. डा० इब्ने हसन सेन्ट्रल स्ट्रक्चर आफ दी मुगल एम्पायर पृ० १२०।

कवियों में स्थापित हुई, भविष्य में भी बनी रही। खानखाना और तुलसी के पारस्परिक सम्बन्ध का विशद विवेचन हम अन्यत्र करेंगे। भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से ज्ञात होता है कि सम्भवतः रहीम ने अपने बरवै नायिका-भेद ग्रंथ की रचना इसी समय की।

मुगल साम्राज्य में मिलाए जाने से पूर्व का सिंध का इतिहास

सिंध, अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण, अतीतकाल में, भारत का प्रवेश द्वार माना जाता था। ७१२ ई० में सर्वप्रथम यवन आक्रमण इसी प्रान्त पर हुआ। इन अरबी मुसलमानों ने लगभग एक शताब्दि तक वहाँ राज्य किया। उसके पश्चात् वहाँ की शासन-सत्ता विभिन्न वंशों के कितने ही व्यक्तियों के हाथों में आती जाती रही किन्तु कोई दृढ़ एवं स्थायी राज्य न स्थापित कर सका। अन्त में १५११? ई० में कंधार का शासक, शाहबेग अरगुन, स्वदेश में बाबर द्वारा पराजित होने पर यहाँ आया और उसे जीत कर अपनी सत्ता स्थापित की। १५२४ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने निकटस्थ मुलतान राज्य को जीत कर पैतृक राज्य की सीमा और विस्तृत कर ली। १५४१ ई० में शरणार्थी हुमायूँ ने जब सिंध में आश्रय लेना चाहा तो उस समय वहाँ यही सत्तारूढ़ था। उसे भली भाँति स्मरण था कि बाबर ने किस क्रूरता से उसके पिता को कंधार से निकाल भगाया था, अतः उसने उसके पुत्र को शरण देने में आनाकानी की। छः महीने तक मुगल दूत उसके दरबार में यह आशा लगाए पड़े रहे कि कदाचित् वह गुजरात पर आक्रमण करने में उनके स्वामी की सहायता करे, किन्तु अन्त में उन्हें

बिना निश्चित उत्तर प्राप्त किए ही वापस आना पड़ा। यही नहीं, जब हुमायूँ सेहवान तथा भक्कर को घेरे हुए था तो सिन्ध-शासक ने उसके रसद आने का मार्ग भी अवरुद्ध कर दिया और उसे नाना प्रकार का कष्ट दिया। किन्तु वह भी अधिक काल तक सत्तारूढ़ न रह सका। उसके उत्तरोत्तर गिरते हुए स्वास्थ्य को देख सभासद चिन्तित हो उठे और उन्होंने उसके स्थान पर अरगुन वर्ग की ज्येष्ठ शाखा के मिर्ज़ा मुहम्मद ईसा तरखान को अपना शासक चुना। १५६७ ई० में ईसा की मृत्यु हो गई और तब उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। किन्तु पागलपन में उसने १५८५ ई० में आत्महत्या कर ली। स्वर्गीय शासक का पुत्र मिर्ज़ा पायन्दा मुहम्मद तरखान भी पागल था, अतः वह उत्तराधिकार से वंचित रहा और उसके स्थान पर उसका पुत्र मिर्ज़ा जानी बेग तरखान सिन्ध का शासक चुना गया।

जिस समय अकबर सिंध की ओर आकृष्ट हुआ उस समय मिर्ज़ा जानी ही वहाँ शासन कर रहा था। वह बड़ा ही चतुर और नीति-कुशल था। वह जानता था कि अकबर का खुलेआम विरोध कर वह अपनी स्वतंत्रता अधिक काल तक अक्षुण्ण न बनाए रख सकेगा। अतः समय-समय पर उपहारादि भेज कर वह मुगल बादशाह को प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया करता था। किन्तु साम्राज्यवादी अकबर इतने से क्या सन्तुष्ट होता। वह तो सम्पूर्ण भारत पर एकच्छत्र अधिकार स्थापित करने का सुन्दर स्वप्न देख रहा था। १५७१ ई० तक सिंध की उत्तरी सीमा पर के राज्य मुल्तान और भक्कर उसके अधीन हो चुके थे। अब केवल मिर्ज़ा जानी के अधीनस्थ दक्षिणी भाग ही स्वतंत्र रह गया था। १५८६ ई० में बादशाह ने भक्कर के जागीरदार

मुहम्मद सादिक खाँ को आदेश दिया कि वह उस भाग को भी मुगल साम्राज्य में मिला ले। स्वामी की आज्ञा पाते ही सादिक वहाँ की ओर चला। प्रारम्भिक सफलताओं से उत्साहित हो कर उसने सेहवान पहुँचते ही वहाँ के प्रसिद्ध किले को चारों ओर से घेर लिया। मिर्जा जानी पहले से ही तैयार बैठा था। सूचना पाते ही वह अपनी जल-सेना के साथ दुर्ग रक्षकों की सहायतार्थ राजधानी से चला। सादिक ने सिंध-शासक को मार्ग में ही रोकना उचित समझ कर किले पर से घेरा उठा लिया और ससैन्य दक्षिण की ओर बढ़ा। सिंध नदी के प्रांगण में विरोधी पक्षों में डट कर युद्ध हुआ किन्तु मिर्जा जानी के विशाल युद्ध पोतों और अग्निवर्षक शस्त्रों के सम्मुख सादिक की एक न चली। विवश हो कर उसे पीछे हटना पड़ा। अकबर उस समय उत्तर भारत की अन्य जटिल समस्याओं में उलझा हुआ था। अतः उसने अपने सेनापति को आदेश दिया कि यदि मिर्जा जानी उपयुक्त उपहारादि देने को उद्यत हो तो उसे स्वतंत्र ही रहने दो। मिर्जा जानी के लिए यह कोई नई बात न थी, वह तो पहले भी यह सब करता रहा था। अतः उसने अकबर की शर्तें मान लीं और मुगल सेना उसके राज्य से वापस चली गई।

किन्तु मिर्जा जानी अब भी अकबर की आँख की किरकिरी ही बना रहा। १५८६ ई० की समाप्ति तक जब मुगलों की स्थिति उत्तर पश्चिम भारत में सुदृढ़ हो गई तो बादशाह ने सिंध विजय की फिर सोची। इसी समय कंधार में एक ऐसा अवसर उपस्थित हुआ जिससे लाभ उठा कर अकबर वहाँ भी अपनी सत्ता स्थापित कर सकता था। दूरदर्शी बादशाह ने कंधार विजय को अधिक आवश्यक

एवं सामयिक समझा अतः सिंध विजय की प्रस्तावित योजना पुनः कुछ काल के लिए स्थगित हो गई।

अकबर बहुत दिनों से कंधार पर अपना अधिकार स्थापित करने को इच्छुक था। रक्षा तथा व्यापार दोनों ही दृष्टियों से यह प्रदेश भारत की उत्तर पश्चिम सीमा की कुंजी समझा जाता था। उस समय जब कि काबुल दिल्ली साम्राज्य का एक अंग था, कंधार हमारी प्रथम रक्षा पंक्ति का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। अभी तक वह फारस के अधीन था और शाह का भतीजा सुलतान हुसेन मिर्जा उसकी ओर से वहाँ का शासन कर रहा था। १५९० ई० में सुलतान की मृत्यु हो गई। उसके दो पुत्र थे किन्तु दोनों ही अल्हड़ नवयुवक फारस के शत्रु तुर्कों और उजबेगों के बहकावे में आकर अपने स्वामी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने और उसे अनेक प्रकार के कष्ट देने लगे। नीति-कुशल अकबर ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। उसने फारस के शाह को संदेश भेजा कि यदि आप चाहें तो मैं इस विपत्ति में आपकी सहायतार्थ प्रस्तुत हो सकता हूँ। शाह मान गया। फलतः अकबर ने एक विशाल एवं सुसज्जित सेना खानखाना की अध्यक्षता में कंधार भेजने का निश्चय किया। स्पष्टतः शाह की सहायता के बहाने अकबर उस विद्रोह से लाभ उठा कर कंधार पर स्वतः अधिकार जमाना चाहता था। इस चाल से बिना शाह को अप्रसन्न किए ही वह उस महत्त्वपूर्ण स्थान का स्वामी बन जाता। इसके अतिरिक्त उसके प्रबल शत्रु उजबेगों की जो कंधार जीतने के बाद भारत पर आक्रमण करना चाहते थे, वह योजना भी मिट्टी में मिल जाती। किन्तु अकबर की यह कूटनीति इतनी शीघ्र सफल न हो सकी।

ख़ानख़ाना का मुलतान आगमन; योजना में परिवर्तन

अन्त में ४ जनवरी १५९० ई० को ख़ानख़ाना ने अपनी विशाल सेना के साथ लाहौर से कंधार की ओर प्रस्थान किया। उसका विचार बिलोचिस्तान वाले मार्ग से जाने का था। ख़ानख़ाना अपने कुछ कप्तानों के साथ नाव द्वारा रावी नदी के मार्ग से चला। शेष दल जिसमें पैदल सैनिक तथा हाथी थे, स्थल मार्ग से। प्रेमावेश में बादशाह स्वतः नाव में बैठकर प्रथम पड़ाव तक उसे पहुँचाने आया और अनेक परामर्श देकर वहाँ से विदा किया। ख़ानख़ाना को मार्ग में ही दो महत्त्वपूर्ण कार्य करने थे। प्रथम बलूचियों को परास्त करना था। बादशाह की आज्ञा थी कि यदि वे बिना प्रतिरोध के पराजय स्वीकार कर लें और कंधार विजय में योग का वचन दें तो उनकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न किया जाय अन्यथा उनका राज्य छीन कर उचित दंड दिया जाय। द्वितीय था, मिर्ज़ा जानी को धमकाने के हेतु एक टुकड़ी दक्षिण सिंध की ओर भेजना। सिंध शासक प्रत्यक्ष रूप से सदैव अकबर के प्रति स्वामिभक्ति का ही प्रदर्शन करता था और उसे प्रसन्न रखने के लिए समय समय पर उपहारादि भेजा करता था, किन्तु आज तक कभी बादशाह की सेवा में उपस्थित न हुआ था। अतः अकबर उसे चेतावनी देना चाहता था। उसने ख़ानख़ाना को आज्ञा दी थी कि यदि वह अभिमानी शासक अपनी उद्दण्डता की निद्रा से जाग्रत हो जाय और शाही सेना के संग अपनी सेना भी कंधार विजय के लिए भेजने को प्रस्तुत हो जाय या दरबार में उपस्थित होना स्वीकार कर ले तो उसे न छेड़ा जाय। अन्यथा, उस समय तो उसे केवल धमका दिया जाय

लेकिन कंधार से लौटते समय उसकी पूरी खबर ली जाय[१]। ख़ानख़ाना को कर्त्तव्य पालन में सभी प्रकार की सुविधा देने के विचार से बादशाह ने जौनपुर के स्थान पर, मुल्तान और भक्कर ये दोनों मध्यस्थ क्षेत्र उसे जागीर के रूप में दे दिए[२]।

शाही दल शीघ्र ही मुल्तान पहुँच गया। वहाँ से उसे चोटियाला दर्रे से होते हुए कंधार जाना था किन्तु ख़ानख़ाना अपनी नवीन जागीर की देखभाल कर तब आगे बढ़ना चाहता था, अतः उसने मुल्तन और भक्कर वाला अपेक्षाकृत दीर्घ मार्ग ही ग्रहण करने का निश्चय किया। कदाचित ख़ानख़ाना के मस्तिष्क में इसी समय यह विचार आया कि कंधार-विजय के पूर्व सिंध-विजय आवश्यक है और शाही सेना को पहले मिर्ज़ा जानी से निपट कर तब कंधार की ओर बढ़ना चाहिए। अपने विश्वस्त अधीनस्थों से परामर्श कर उसने बादशाह के पास यह प्रस्ताव भेजा। अकबर भी सहमत हो गया। उसने योजना परिवर्त्तन की स्वीकृति दे दी[३]।

अब सहज ही यह प्रश्न उठता है कि ख़ानख़ाना ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर योजना में परिवर्तन करने का प्रस्ताव किया तथा अकबर क्यों उससे सहमत हो गया। अबुल फ़ज़ल के अतिरिक्त अन्य कोई भी समसामयिक इतिहासकार इस तथ्य का उल्लेख नहीं करता कि ख़ानख़ाना कंधार विजय के हेतु भेजा जा रहा था और उस दरबारी इतिहासकार ने भी उक्त प्रश्न का उत्तर स्पष्ट नहीं दिया है।

---

१. अ० ना० भाग ३, पृ० ८८७ ८८८।

२. अ० ना० भाग ३, पृ० ६१७; त० अ० भाग २ पृ० ६३२; म० र० भाग पृ० ३०६।

३. अ० ना० भाग ३, पृ० ६१७।

अबुल फ़ज़ल ने उस समय खानखाना को जो पत्र लिखे थे, उनके सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि खानखाना की आदि योजना कंधार-विजय की ही थी, सिंध-विजय की नहीं। थोड़ी देर के लिए यदि यह मान लिया जाय कि कंधार-विजय के बहाने शाही सेना सिंध जा कर मिर्ज़ा जानी पर अकस्मात् आक्रमण करना चाहती थी, तो अबुल फ़ज़ल ने इस योजना परिवर्तन पर इतनी रुष्टता क्यों प्रकट की। इसके अतिरिक्त यदि मिर्ज़ा जानी को भुलावा ही देना था तो उसे धमकाने एवं चेतावनी देने के लिए शाही सेना की एक टुकड़ी को उसके विरुद्ध भेजने में क्या तुक था। ऐसी दशा में तो वह रहस्य गुप्त ही रखा जाता और यही प्रयत्न किया जाता कि सिंध शासक को उस षड्यन्त्र का आभास तक न होने पाये।

खानख़ाना ने जिन कारणों से मूल योजना में परिवर्त्तन करने का प्रस्ताव किया उनका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। प्रथम, दूरदर्शी सेनापति भली भाँति समझता था कि कंधार जैसे पर्वतीय प्रदेश पर आक्रमण करने में उसे भारी खतरों का सामना करना पड़ेगा। आवागमन की कठिनाइयों, मुगल मनसबदारों में सहयोग का अभाव, दुर्ग पर घेरा डालने के लिए आवश्यक साधनों की कमी, उसका अपेक्षाकृत घटिया तोपखाना आदि बातें तो थीं हीं, उसे दूरस्थ शैल क्षेत्रों में युद्ध करने का अनुभव भी नहीं था। अनवरत उपद्रवों से जर्जर गुजरात प्रान्त में निर्बल मुजफ्फर को परास्त करना और बात थी किन्तु गिरिखंडों से आवृत कंधार में युद्ध प्रिय ईरानियों के सम्मिलित तथा स्थिर मोर्चों का सामना करना टेढ़ी खीर थी। द्वितीय, यद्यपि सिंध अधिक उर्वर प्रान्त न था, तो भी कंधार की अपेक्षा वहाँ से अधिक आय की

आशा थी। ख़ानख़ाना ने अबुल फ़ज़ल को उस समय जो पत्र लिखे थे, उनसे स्पष्ट है कि उस समय मुगल सेनापति की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वह दानी तो था ही, गत तीन वर्षों में अपने धन का अधिकांश भाग उसने कवियों को पुरस्कृत करने तथा दीनों की सहायता देने में व्यय कर दिया था। इस समय उसे द्रव्य की अत्यधिक आवश्यकता थी। सैनिकों को वेतन देना था; युद्ध के अन्य आवश्यक साधन भी प्राप्त करने थे। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि वह ऐसे प्रदेश पर आक्रमण करे जहाँ अपेक्षाकृत कम कठिनाइयाँ हों और अधिक लाभ की आशा हो। भूखी तथा असंतुष्ट सेना के साथ, दुर्गम दूरस्थ तथा दुर्विजेय कंधार पर आक्रमण करने की मूर्खता वह कैसे कर सकता था।

अकबर जो उससे इतने शीघ्र सहमत हो गया, उसके भी सबल कारण थे। उसने समझा कि कंधार पर बिना किसी रोक-टोक के चढ़ाई करने तथा उसमें सफल होने के लिए पहले उस प्रदेश की सीमा पर स्थित सिंध तथा बिलोचिस्तान पर विजय प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। उसका पृष्ठभाग तभी सुरक्षित रहता जब कि ये दोनों आधार प्रान्त पूर्णरूपेण उसके अधिकार में होते। कालान्तर में अंग्रेजों ने भी इस तथ्य का अनुभव किया। द्वितीय, फारस के शाह की सहायता की आड़ में, कंधार के मामले में हस्तक्षेप करने का बहाना भी अब अकबर की साम्राज्यवादी भावनाओं पर आवरण नहीं डाल सकता था। कारण कि मुगलों के प्रस्तावित आक्रमण की सूचना पाते ही, कंधार के शासक मुजफ्फर हुसेन ने प्रार्थना-पत्रों तथा उपहारों के साथ अपने दूतों को अकबर की सेवा में भेजा।

इससे न केवल उसकी ही स्थिति सुरक्षित हो गई थी अपितु अवसरवादी अकबर की दुराशाओं पर भी तुषारपात हो गया। ऐसी स्थिति में मुल्तान तक पहुँची हुई शाही सेना को अभिमानी मिर्ज़ा जानी के विरुद्ध दक्षिण सिंध की ही ओर भेजना उसने समयोचित समझा होगा।

खानखाना का सेहवान पहुँचना; जल युद्ध

अकबर की अनुमति प्राप्त होते ही खानखाना ससैन्य अपनी नवीन योजना कार्यान्वित करने चला। उसकी उस विशिष्ट वाहिनी में ईरानी, बारहा के सैयद, हिन्दू आदि सभी वर्ग के योद्धा, सौ विशालकाय गजराज तथा एक तोपखाना सम्मिलित था। वह पहले बिलोचिस्तान पर अधिकार कर तब दक्षिण सिंध की ओर जाना चाहता था। जब बिलोची सरदारों को यह सूचना मिली तो वे बड़े भयभीत हुए। उन्होंने अप्रतिरोध समर्पण में ही कुशल समझा। अतः जब शाहीदल मुल्तान से कुछ ही मील आगे गया था, तभी सभी प्रमुख बिलोची सरदार सामूहिक रूप से खानखाना की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने अकबर के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित की और वचन दिया कि सिंध विजय में वे मुगलों को पूर्ण योग देंगे। इनकी सहायता का आश्वासन पाकर शाही दल फिर आगे बढ़ा। भक्कर पहुँचने पर खानखाना ने अपनी सेना की व्यूह रचना की और परम्परागत नियमों के अनुकूल विभिन्न कमानों की अध्यक्षता उपयुक्त कप्तानों में वितरित कर दी।

उधर जब मिर्ज़ा जानी को खानखाना की परिवर्तित योजना की

सूचना मिली तो वह बहुत घबड़ाया उसने संदेशवाहकों से कहलाया कि वह पूर्ववत् अब भी अकबर का भक्त है और कंधार विजय में मुगलों की सहायतार्थ सेना भेजने को उद्यत है। ख़ानख़ाना सिंध शासक की चालों से भली भाँति परिचित था। वह उसके जाल में इतनी सरलता से नहीं फँस सकता था। उसने तुरन्त उन संदेशवाहकों को बंदी बना लिया और शाही दल को ठट्टा की ओर तीव्र गति से बढ़ने की आज्ञा दी। ख़ानख़ाना ने सिंधी दूतों को गिरफ्तार कर बड़ी बुद्धिमानी की। यदि वे सुरक्षित वापस चले जाते तो अपने स्वामी से मुगलों के सारे सैनिक रहस्यों को बता देते और मिर्ज़ा जानी उनसे लाभ उठाकर अपना प्रतिरोध और भी सबल कर लेता।

जिस समय शाही सेना अविराम अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ रही थी, उसी समय उसे सूचना मिली कि सेहवान के प्रसिद्ध दुर्ग में भीषण आग लग गई है और वहाँ की संचित सारी खाद्य सामग्री जल कर भस्म हो गई है। ख़ानख़ाना को सुअवसर मिला। इस दैवी कृपा से प्रोत्साहित हो, उसने तुरन्त दो टुकड़ियों को एक स्थल तथा दूसरी जल मार्ग से, उस अभागे किले पर घेरा डालने को भेजा। उसमें से जल मार्ग से जाने वाली टुकड़ी शीघ्र ही गढ़ के पास पहुँच गई किन्तु जब उसने देखा कि सामने पथ में कोई अवरोध नहीं है तो वह दुर्ग पर आक्रमण न कर आगे बढ़ती चली गई। उसने सोचा कि पहले सैनिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण लाक्की दर्रे पर जो सिंध नदी के पश्चिमी तट पर कोटरी तालुका में स्थित है, अधिकार कर लें और तब सेहवान के दुर्ग को घेरें। फलतः आगे बढ़ उसने उस दर्रे को घेर लिया। सिंधी रक्षकों ने मुगलों का

कुछ प्रतिरोध किया किन्तु अन्त में पराजित हुए और उस दर्रे पर शाही सेना का अधिकार हो गया[१]।

लाकी दर्रे पर अधिकार हो जाने से मुगलों की स्थिति बड़ी प्रबल हो गई। यह दर्रा लाकी पहाड़ियों के ठीक नीचे है। उस युग में जब कि युद्ध का निर्णय आकाश में नहीं अपितु स्थल और जल पर होता था, यह सिंध का द्वार समझा जाता था। इसकी उस प्रान्त के लिए वही महत्ता थी, जो कि ढढ़ी की बंगाल के लिए या बारामूला की काश्मीर के लिए थी। आरम्भ में ही ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान पर विजय प्राप्त कर लेने से मुगलों को विश्वास हो गया कि वे अंत में सम्पूर्ण सिंध को भी विजय कर लेंगे। इसके पश्चात् शीघ्र ही ख़ानख़ाना सेना के अवशेष भाग के साथ सेहवान दुर्ग के समीप पहुँच कर उस पर घेरा डालने की तैयारियाँ करने लगा।

मिर्ज़ा जानी को जब उक्त समाचार मिला तो वह एक विशाल सेना के साथ मुगलों का विरोध करने के लिए अपनी राजधानी से उत्तर ओर चला। उसके साथ उस प्रदेश के सारे भूमिपतियों द्वारा प्रेषित बहुसंख्यक सैनिक, अनेकों युद्धपोत (गराब) तथा एक सुसज्जित तोपख़ाना भी था। ख़ानख़ाना ने यह सूचना पाते ही अपने परामर्शदाताओं से राय ली कि ऐसी स्थिति में क्या करना उचित होगा। उनमें से अधिकांश ने इस बात पर जोर दिया कि पृष्ठभाग को सुरक्षित रखने के लिए पहले सेहवान दुर्ग पर अधिकार कर लेना परमावश्यक है। अतः पूरी शक्ति के साथ उस गढ़ पर आक्रमण करना

१. अ० ना० भाग ३, पृ० ४१८; तारीखे ताहिरी इलियट भाग १ पृ० २८१।

चाहिए जिससे अन्नपीड़ित दुर्गरक्षक शीघ्र बिना शर्त आत्मसमर्पण करने पर बाध्य हो जायँ। किन्तु खानखाना उनसे सहमत नहीं हुआ। उसे भय था कि यदि मिर्जा जानी अपनी शक्तिशाली सेना के साथ दुर्गरक्षकों की सहायतार्थ आ जायगा तो उस समय मुगलों की स्थिति बड़ी विषम हो जायगी। वह सेहवान में समय नष्ट न कर सीधे जाकर मिर्जा जानी पर आक्रमण करना चाहता था। अतः उसने उस किले पर घेरा डालने का विचार त्याग नदी फिर पार की और बायें तट से होता हुआ, आगे बढ़ते हुए शत्रु का सामना करने चला[१]।

किन्तु खानखाना को यह भी भय था कि कहीं सेहवान स्थित सिंधी सेना उस पर पीछे से न आक्रमण कर दे। अतः सावधानी बरतने के लिए उसने वहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व ही मकसूद आगा की अध्यक्षता में कुछ विश्वस्त सैनिकों को पृष्ठभाग की रक्षा के हेतु नियुक्त कर दिया था। उनको आदेश था कि वे सेहवान के निकटस्थ घाटों पर पहरा रखें और दुर्गरक्षकों को धमकाते रहें जिससे शाही सेना का पृष्ठ पथ प्रशस्त बना रहे और सेहवान की सेना मिर्जा जानी से सम्पर्क न स्थापित कर सके। इसी प्रकार उस सावधान सेनापति ने दो टुकड़ियाँ आगे भी भेजीं, एक जल तथा दूसरी स्थल मार्ग से, जिससे शत्रु किसी भी मार्ग से आगे न बढ़ सके। सौभाग्य से इसी समय जैसलमेर तथा अन्य स्थानों से कुछ कुमक भी पहुँच गई। इससे उत्साहित हो शाही दल आगे बढ़ा[२]।

उधर मिर्जा जानी अपनी सुसज्जित सेना के साथ अब तक

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६११; तारीखे मासूमी पृ० २५२; त० अ भाग २, ६३६; म० र० भाग २ पृ० ३४६, ३६०।
२ अ० ना० भाग ३, पृ० ६१९।

नसरपुर के निकट पहुँच गया था। पहले तो उसने वहीं रुक मुगलों से लोहा लेना चाहा किन्तु बाद में सोचा कि वह स्थान रक्षात्मक दृष्टि से अधिक उपयुक्त न होगा। अतः वह वहाँ से फिर आगे बढ़ा और दस मील दूर जा कर लुहिरी नामक ग्राम में अपना डेरा डाला। वहाँ उसे सुरक्षा की सभी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। वह जिस स्थान पर रुका, उसके एक ओर तो सिंध नदी थी और दूसरी ओर गहरे जलपूर्ण नाले। इनके मध्य के खुले भू भाग को उसने एक सुदृढ़ प्राचीर से अवरुद्ध कर उस पर तोपखाने का पहरा बिठा दिया। वहाँ उसके युद्धपोत सरलता से लंगर भी डाल सकते थे। सरिता का दक्षिणी भाग अब आवागमन के हेतु पूर्ण सुरक्षित था और ठट्टा से वह बिना अवरोध खाद्य सामग्री प्राप्त कर सकता था।

इस प्रकार अपनी स्थिति पूर्ण सुरक्षित कर, मिर्जा जानी ने अब आगे बढ़ते हुए शत्रु की ओर ध्यान दिया। उसे मार्ग में ही रोकने के लिए उसने तीन दस्ते उत्तर की ओर भेजे। एक जिसमें एक सौ बीस सशस्त्र नावें तथा धनुर्धरों, बन्दूक चलानेवालों एवं तोपों से सुसज्जित दो सौ युद्धपोत थे, सिंध शासक के प्रिय अधिकारी खुसरो खाँ की अध्यक्षता में जल मार्ग से चला तथा अन्य दो सरिता के दोनों तटों के स्थल मार्ग से। उसका आदेश था कि तीनों दस्ते पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखें और एक साथ शत्रु पर आक्रमण करें।

उक्त सूचना खानखाना को तब मिली जब वह वर्त्तमान भीटशाह नामक सुप्रसिद्ध ग्राम से तीन मील उत्तर पश्चिम में था। वह तुरन्त सरिता की ओर मुड़ा और तट के समीप एक ऐसे स्थान पर जहाँ बलुए करारों के बीच नदी का पेट कुछ संकुचित हो गया था,

अपना शिविर डाला। उसने रक्षार्थ चारों ओर बालू की भित्ति निर्मित कर ली और शत्रु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

अन्त में ३१ अक्टूबर, १५६१ ई० को अपराह्न काल में रिपु का बेड़ा धारा के प्रतिकूल श्रमपूर्वक बढ़ता दृष्टिगोचर हुआ। सिंध-शासक की पूर्व योजना, जिसके अनुसार वह मुगलों पर स्थल तथा जल दोनों ओर से एक साथ आक्रमण करना चाहता था, पहले ही विफल हो गई थी। कारण कि सिंधी सैनिक, खुसरो के उद्दण्ड स्वभाव से घृणा करते थे और उससे सहयोग करने को उद्यत न थे। खुसरो को आगे बढ़ा कर वे पीछे ही रुक गए थे। खुसरो को इस तथ्य का ज्ञान तब हुआ जब कि वह शत्रु शिविर के निकट पहुँच चुका था। पीछे लौटने का अब प्रश्न ही न था, अतः उसने कठिनाइयों की परवाह न कर अकेले अपने ही युद्धपोतों के बल पर शत्रु पर हमला करने का निश्चय किया। ज्यों ही वह उन बलुए करारों के पास पहुँचा जहाँ मुगल डेरा डाले पड़े थे त्योंही उसने गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। बस फिर क्या था, मुगलों के भी प्रत्याघात होने लगे और शीघ्र ही वह अग्नि, भीषण रणज्वाला में परिणत हो गई।

जैसे जैसे दिन ढलता गया युद्ध की गति तीव्रतर होती गई। खानखाना ने जिस स्थान को युद्ध के लिए चुना था, वह रक्षात्मक दृष्टि से उसके लिए बहुत ही उपयुक्त था। उसके एक ओर तो बलुए करारों वाली सरिता थी और दूसरी ओर जलपूर्ण नालों से सुरक्षित दुर्ग प्राचीर। उसकी तोपें भी अपेक्षाकृत अधिक भारी थीं। वे ऊपर करारों से निरन्तर अग्नि-वर्षा कर रही थीं। किन्तु सिन्धियों के पास जल-पोत अधिक थे। वे भी ईंट का जवाब पत्थर से दे रहे

थे। रात्रि होने को आ गई किन्तु कोई भी पक्ष टस से मस न हुआ।

रात्रि के समय ख़ानख़ाना को सूचना मिली कि मिर्ज़ा जानी स्वयं नदी के पश्चिमी तट से शाही दल पर आक्रमण करने आ रहा है। मुगल सेनापति ने तुरन्त एक टुकड़ी अंधकार के आवरण में नदी के उस पार भेजी जिससे वह सिंध शासक को मार्ग ही में रोके। इसके कुछ ही देर पश्चात् सिंधियों की उस टुकड़ी ने जिसे मिर्ज़ा जानी ने पहले ही सरिता के बायें तट से भेजी थी, शाही शिविर पर अकस्मात् धावा करना चाहा किन्तु उनका प्रयास विफल रहा। खानखाना ने ऐसी आपत्तियों का सामना करने के लिए एक चुना हुआ दस्ता मीर मासूम भक्करी की अध्यक्षता में वहाँ पहले से ही नियुक्त कर रखा था। आक्रमणकारी शीघ्र ही खदेड़ दिए गये और शिविर को तनिक भी क्षति न पहुँचने पाई। इसी बीच जो टुकड़ी मिर्ज़ा जानी के विरुद्ध भेजी गई थी, वह शत्रु आगमन का कुछ पता न पा वापस लौट आई और नदी के पश्चिमी तट पर रुक वहीं से शत्रु पर भीषण अग्निवर्षा करने लगी।

इस प्रकार दोनों तटों से गोलियों की बौछार सहता हुआ, खुसरो रात भर संघर्ष करता रहा। प्रातः होते ही उसने और अधिक वेग से प्रहार करना प्रारम्भ किया। अब उसका विशेष ध्यान पश्चिमी तट पर था। ख़ानखाना सरिता के पूर्वी तट से शत्रु की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था, और वहीं से शाही तोपखाने को निरन्तर अग्नि-वर्षा करने का आदेश दे रहा था। खुसरो बार बार भूमि पर आने का प्रयत्न करता किन्तु शाही गोलों के अनवरत प्रहार उसे अपने उद्देश्य में सफल न होने देते। छिछला किनारा भी उसके मार्ग में बाधा डाल रहा था। ख़ानख़ाना के पास उस

समय केवल पच्चीस युद्धपोत थे किन्तु धारा अनुकूल होने के कारण उन्हें शत्रु के समीप पहुँचने में कोई कठिनाई न हुई। वे शीघ्र ही सिंधियों के बेड़े के मध्य में घुस गए और मार काट मचाने लगे।

दोपहर तक इसी प्रकार द्वन्द्व चलता रहा। क्रोधावेश में नौसिखए मुगल तोपों का मुख ऊँचा कर इतने वेग से गोला छोड़ते कि प्रायः वह अपना लक्ष्य चूक जाते और वे गोले शत्रु के ऊपर से होते हुए सरिता के उस पार उन्हीं के पक्ष पर जा गिरते। इससे बहुत से शाही सैनिक हताहत हुए। खानखाना को ज्योंही यह तथ्य ज्ञात हुआ, उसने तोपों का मुख नीचा करा दिया और अब गोले ऐसे अन्दाज़ से छोड़े जाने लगे कि वे ठीक शत्रु के बेड़े पर ही जा कर गिरते थे। किन्तु सिंधियों का साहस अब भी कम न हुआ। वे निरन्तर यही प्रयत्न कर रहे थे कि किसी प्रकार शाही दल को बाँये तट से खदेड़ कर उसके शिविर पर अधिकार कर लें। उनकी नावों में बढ़ई भी थे। यदि किसी नौका को क्षति पहुँचती तो वे तुरन्त उसकी मरम्मत कर देते थे।

किन्तु खुसरो इन विषम परिस्थितियों का कितनी देर सामना करता। खानखाना की विशाल तोपें सरिता के दोनों तटों से उस पर अविरल अग्निवर्षा कर ही रही थीं, इधर शाही बेड़ा भी सामने से उस पर टूट पड़ा। जब उसने देखा कि उसकी सहायतार्थ आये हुये योरोपीय और मालाबारी भी जो जल युद्ध के विशेषज्ञ माने जाते थे, उसका साथ त्याग भागे जा रहे हैं तो वह अधीर हो उठा। अन्त में उसे पीछे हटने पर विवश हो जाना पड़ा। उसने बड़े शौर्य्य और कौशल से अपने सारे पोतों को पीछे हटाया और जब तक वे



[illegible] किया जा रहा है

[illegible] में [illegible]

ख़तरे के क्षेत्र से बाहर न निकल गए तब तक वह अपने स्थान पर डटा रहा। अभी वह वहीं था कि शाही पोतों ने उस पर आक्रमण कर उसे पकड़ लिया किन्तु इतने ही में ख़ानख़ाना की एक नौका में तोप फट गई। इससे बड़ा तहलका मचा। ख़ुसरो को शुभ अवसर मिला और किसी प्रकार वह मुक्त हो वहाँ से भगा।

शत्रु को इस जल युद्ध में काफ़ी क्षति हुई। उसके बहुत से युद्धपोत जिनमें सुसज्जित शस्त्र एवं खाद्य पदार्थ थे, या तो जल-मग्न हो गए या शाही सेना के हाथ लगे। लगभग दो सौ सिंधी मारे गए और एक हज़ार से भी अधिक घायल हुए। शाही सेना की उतनी क्षति न हुई। उदार ख़ानख़ाना ने इस विजयोपलक्ष में एक प्रीति-भोज का आयोजन किया और सफलता के लिए ईश्वर को अनेक धन्यवाद दिया।

इस युद्ध में शत्रु के पक्ष के जो लोग बन्दी हुए, उनमें उरमूज़ का एक दूत भी था। उस समय उरमूज़ के अधिकारी की ओर से उसका एक प्रतिनिधि ठट्टा में रहा करता था, जो उरमूज़ जाने वाले सिंधी व्यापारियों के हितों की रक्षा का उत्तरदायी होता था। मिर्ज़ा जानी ने उसे इस युद्ध में विशेषतः इसलिए भेजा था कि लोग समझें कि उसके पक्ष के समर्थन में बहुत से विदेशी भी हैं। किन्तु ये विदेशी बहुत अल्प संख्या में थे। अतः चतुर सिंधी-शासक ने बहुत से अपने सैनिकों को ही विभिन्न देशों की वेष-भूषा पहना रखी थी जिससे शाही दल उनको विदेशी ही समझे[१]।

१. इस युद्ध के विशद वर्णन के लिए देखिए अ० ना० भाग ३, पृ० ६१६–६२०; म० र० भाग २ पृ० ३४६, ३६०–३६१; तारीख़े मासूमी, पृ० २५२–२५३; तारीख़े ताहिरी (इलियट) भाग १, पृ० २८७–२८८।

बुहिरी का घेरा।

मिर्ज़ा जानी ख़ुसरो की पराजय से हतोत्साह न हुआ। उसे अब भी अपनी शक्ति पर विश्वास था और भाग्य पर भरोसा भी। वह बुहिरी ग्राम के निकट डेरा डाले पड़ा था। वहाँ उसे रक्षा के पर्याप्त प्राकृतिक साधन उपलब्ध थे। अपने शिविर की रक्षा और भी सुदृढ़ करने के विचार से उसने उसके चारों ओर बालू की दीवारें उठा रखी थीं जो दुर्ग प्राचीर का काम दे सकती थीं। खाद्य-सामग्री इतना अधिक एकत्र कर रखी थी कि महीनों चलती। दक्षिण सिंध से अपना यातायात खुला रखने के हेतु उसने सरिता-तट पर एक सुदृढ़ तोपख़ाना नियुक्त कर रखा था। सारा कृषक-वर्ग भी उसकी सहायतार्थ उद्यत था। अतः आवश्यकता के समय वह उनसे बराबर खाद्यान्न प्राप्त कर सकता था। वर्षा ऋतु निकट थी। उसने सोचा कि यदि कुछ समय तक वह मुगलों का प्रतिरोध कर ले तो उसकी विजय निश्चित है। पावस प्रारम्भ होते ही सरिता तथा नालों में बाढ़ आ जाएगी और तब शत्रु का वहाँ टिकना असम्भव हो जायगा। अतः वह उसी स्थान पर डटा रहा।

इधर खानख़ाना सिंध-शासक पर शीघ्रातिशीघ्र आक्रमण करने को उतावला हो रहा था। उसके अधीनस्थों ने निवेदन किया कि कुछ और कुमक आ जाने पर ही आगे बढ़ना उचित होगा, किन्तु उसने उनकी एक न सुनी। उस विजय के दूसरे ही दिन उसने अपने दल-बल सहित मिर्ज़ा जानी के विरुद्ध प्रस्थान कर दिया। बुहिरी निकट ही था, वहाँ पहुँचते ही वह शत्रु शिविर पर घेरा डालने की तैयारियों में व्यस्त हो गया। प्राकृतिक एवं मानवकृत दोनों ही साधनों से सुरक्षित स्थान पर आक्रमण करना टेढ़ी खीर थी। किन्तु ख़ानख़ाना साहस-विहीन न हुआ। उसने पहले तो वहाँ के इर्द गिर्द की स्थिति का पूर्ण निरीक्षण किया

और फिर चारों ओर उपयुक्त स्थानों पर शाही सेना की चौकियाँ बैठा दीं। उसने आदेश दिया कि सभी सैनिक अपनी अपनी चौकियों से आगे बढ़ें और एक साथ शत्रु शिविर पर आक्रमण करने की चेष्टा करें। खाइयाँ खोदता और उनमें छुप-छुप कर चलता हुआ उसका दल शीघ्र ही मिर्ज़ा जानी के दुर्ग के निकट पहुँच गया। बस फिर क्या था, मोर्चे स्थापित हो गए और उस बलुएगढ़ पर भीषण गोलाबारी होने लगी। मिर्ज़ा जानी तो ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए पहले ही से तैयार था। उसकी ओर से भी प्रयत्न करने पर भी मुगल सैनिक शत्रु के गढ़ पर अधिकार न कर सके।

दो मास व्यतीत हो गए किन्तु घेरा डालने का असफल प्रयत्न अब भी पूर्ववत होता रहा। दुर्ग-रक्षक जब भी अवसर पाते, बाहर निकल शाही मोर्चों पर आक्रमण करते। ख़ानख़ाना के सैनिक भी निरन्तर यही प्रयास करते कि किसी प्रकार उन दृढ़ प्राचीरों को ढहा दें, किन्तु घोर प्रतिरोध के कारण प्रायः विफल ही रहते। वैसे भी मुगल घेरा डालने की कला में कभी कुशल न थे। रेत में उनके पैर धँस जाते और उन्हें आगे बढ़ने में बड़ी कठिनाई होती। सरिता पर भी शत्रु का ही अधिकार निरन्तर बना रहा। शाही बेड़ा बार बार प्रयास करता कि बाहर से जल-मार्ग द्वारा कुछ भी कुमक या खाद्य सामग्री गढ़ में न पहुँचने पाए, किन्तु सशक्त सिंधी बेड़े के सम्मुख उसकी एक न चलती। अब सिंधी जनता भी मुगलों के विरुद्ध हो गई। वह उन्हें विभिन्न प्रकार से कष्ट देने लगी। कभी उनकी रसद को लूट लेती, कभी उनके शिविर पर छापा मारती। धीरे-धीरे शाही सेना में खाद्य सामग्री कम पड़ने लगी और भूखे पेटों घेरा डालना कठिन प्रतीत होने लगा। दिन प्रतिदिन उनकी दशा

बिगड़ती ही गई। अन्त में अकाल पड़ने तक की नौबत आ पहुँची। निजामुद्दीन लिखता है कि उस समय अनाज की इतनी कमी हो गई थी कि रोटी का एक टुकड़ा एक मनुष्य के जीवन के बराबर मूल्यवान समझा जाने लगा था। सभी रोटी के दर्शन को लालायित रहते। दूरस्थ शत्रु प्रदेश में अकाल पीड़ित शाही सेना की क्या दुर्दशा हो रही थी, इसका अनुमान उक्त कथन से सहज ही लगाया जा सकता है।

ऐसे संकटकाल में खानखाना ने अकबर को एक बड़ा ही हृदय-द्रावक पत्र लिखा, जिसमें शाही सेना की दयनीय दशा की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हुए उससे निवेदन किया कि वह उसे शीघ्रातिशीघ्र कुछ सहायता भेजे। बादशाह उस समय काश्मीर जा रहा था। उसने अविलम्ब राय रायसिंह के साथ ढाई लाख रुपया, एक लाख मन अनाज और तोपों से सुसज्जित कुछ नौकायें अपने सेनापति के पास भेजीं[१]।

किन्तु इस सामयिक सहायता से भी मुगलों की विपत्तिपूर्ण स्थिति में कुछ विशेष सुधार न हो सका। दिन प्रतिदिन उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती ही जा रही थीं और युद्ध का अन्त अब भी समीप न दिखाई देता था। शत्रु की स्थिति इतनी सुदृढ़ थी कि उस पर विजय प्राप्त करना प्रायः असम्भव ही प्रतीत हो रहा था। खानखाना के लिए यह काल बड़ा ही संकटमय था। उसके सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न था। किन्तु ऐसी स्थिति में भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने अनुभव किया कि जब तक मिर्ज़ा जानी के पास उसके विभिन्न आधारों से खाद्य सामग्री पहुँचती रहेगी तब तक उसे परास्त करना

१, त०अ० भाग २ पृ० ६३७; म० उ० भाग २, पृ० ३६३; अ० ना० भाग ३ पृ० ६२५।

बहुत ही कठिन है यदि वह उन आधारों पर अधिकार स्थापित कर ले तो उसकी सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। प्रथम, इससे शत्रु को रसद प्राप्त होना बंद हो जायगा। द्वितीय, उन उर्वर प्रदेशों से अन्न पीड़ित शाही सेना को भी पर्याप्त खाद्य सामग्री मिलने लगेगी। और तृताय यदि उन क्षेत्रों पर आक्रमण होगा तो दुर्ग रक्षकों में से अधिकांश जो उन्हीं भागों के निवासी थे, अपने सम्बन्धियों की रक्षार्थ गढ़ से बाहर निकलने पर विवश हो जायँगे। उक्त परिस्थितियों में मिर्ज़ा जानी का गढ़ में अनिश्चित काल तक रहना असम्भव हो जाएगा। और उसे बाहर आ मुगलों से लोहा लेना ही पड़ेगा। ख़ानख़ाना के पास अब भी शत्रु से कई गुना अधिक स्थल सेना थी। जहाँ एक बार आमने सामने युद्ध हुआ तहाँ मिर्ज़ा जानी को उस विशाल सेना के सम्मुख ठहरना कठिन हो जाएगा। अतः ख़ानख़ाना ने उक्त कारणों से उस समय बुहिरी पर से घेरा उठा लेने में ही अपना कल्याण समझा। उसने अपने साथियों से परामर्श किया और उनके समर्थन से उसने अंत में किले पर से घेरा उठा लिया।

ख़ानख़ाना को अब अपनी नवीन योजना कार्यान्वित करनी थी। उसने इस उद्देश्य से शाही सेना को पाँच भागों में विभक्त किया। एक मासूम भक्करी आदि योद्धाओं की अध्यक्षता में शक्तिशाली बेड़े के साथ उत्तर की ओर भेजी गई और उसे आदेश दिया गया कि वह जाकर सेहवान दुर्ग पर घेरा डाले। शेष तीन, दक्षिण सिंध के उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों की ओर भेजा गई जहाँ से मिर्ज़ा जानी के पास निरन्तर खाद्य सामग्री भेजी जा रही थी। और पाँचवे भाग के साथ ख़ानख़ाना स्वतः दक्षिण की ओर चला। वह जून नामक स्थान पर अपना डेरा डालना चाहता था, क्योंकि वह स्थान-दक्षिण सिन्ध के

ठीक मध्य में था और वहाँ से वह अपनी विस्तृत क्षेत्रों में बिखरी हुई टुकड़ियों का सरलता से निर्देशन कर सकता था[१]।

ख़ानख़ाना की यह सूझ उसकी सैनिक प्रतिभा की परिचायक है। कालान्तर की घटनाओं ने स्पष्ट प्रमाणित कर दिया कि उसका अनुमान बहुत ही युक्ति संगत था। वह कोरी कल्पना पर नहीं अपितु वास्तविक सम्भावनाओं पर आधारित था। इससे उसकी सारी आशाएँ पूर्ण हुईं। शाही दल ने उस उपजाऊ प्रदेश को खूब लूटा। अब इसके पास खाद्य सामग्री की कोई कमी न थी। मिर्ज़ा जानी को भी विवश हो कर अपना सुरक्षित गढ़ त्यागना पड़ा और भाग्य-निर्णय के लिए उसे मुग़लों से खुले मैदान में युद्ध करना पड़ा।

मिर्ज़ा जानी के साथ खुले मैदान में युद्ध।

इधर ख़ानख़ाना दक्षिण सिंध में मुग़ल-सत्ता स्थापित करने में व्यस्त था और उधर उसकी उत्तर की ओर भेजी गई टुकड़ी ने सेहवान के ऐतिहासिक दुर्ग पर घेरा डाल रखा था। गढ़-रक्षक संख्या में वैसे ही कम थे और जब शाही बेड़े ने रसद का मार्ग भी बन्द कर दिया तो उनकी दशा और भी शोचनीय हो गई। क्षुधापीड़ित वे अल्पसंख्यक सिंधी, सशक्त मुग़लों का कितनी देर प्रतिरोध करते! उनका शीघ्र समर्पण प्रायः निश्चित ही था। ऐसी दशा में उन्होंने अपने स्वामी से अविलम्ब सहायता की याचना की। उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई और मिर्ज़ा जानी स्वतः बुहिरी से गढ़-रक्षकों की सहायतार्थ उत्तर की ओर चला। ख़ानख़ाना को

---

१. म० उ० भाग २ पृ० ३९३; अ० ना० भाग ३ पृ० ६२६; तारीखे मासूमी पृ० २५४

चिर-अपेक्षित शुभ अवसर प्राप्त हुआ। उसने तुरन्त एक दस्ता बुड्ढिरी भेजा। शाही सैनिकों ने उस रेतीले गढ़ को जिस पर अभी कुछ ही समय पूर्व वे लाख प्रयत्न करने पर भी अधिकार न कर सके थे, अब अरक्षित पा कुछ ही क्षणों में नष्ट कर दिया। ख़ानख़ाना को आशंका थी कि कदाचित् मिर्ज़ा जानी भविष्य में फिर वहाँ जाकर शरण ले, अतः उसने उसको ऐसा अवसर न देने के विचार से एक सशक्त शाही टुकड़ी वहाँ तैनात कर दी।

जब ख़ानख़ाना को मिर्ज़ा जानी के सेहवान की ओर बढ़ने की सूचना मिली तो उसने तुरन्त अपने वकील एवं प्रिय सहयोगी दौलत ख़ाँ लोदी की अध्यक्षता में, दो हज़ार वीरों की एक टुकड़ी घेरा डालने वालों के पास अतिरिक्त सहायता के रूप में भेजी। रास्ता सौ मील से भी अधिक का था, किन्तु उन अश्वारोहियों ने उसे दो ही दिन में तय कर लिया और सेहवान के समीप पहुँच गए। ख़ानख़ाना स्थिति की गंभीरता को भली भाँति समझ रहा था, अतः वह स्वयं भी शीघ्र ही उनके पीछे उत्तर की ओर चला। किन्तु अभी वह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच भी न पाया था कि युद्ध लड़ा और जीता जा चुका था।

जब मुग़लों ने सुना कि मिर्ज़ा जानी स्वयं दुर्गरक्षकों की सहायतार्थ आ रहा है तो वे बहुत घबड़ाए। उन्होंने तुरन्त एक गोष्ठी की और विचार विमर्श के पश्चात् निश्चय किया कि किले पर से घेरा उठा लिया जाए और आगे बढ़कर शत्रु का मार्ग में किसी खुले स्थान पर सामना किया जाए। अतः वे सेहवान से दक्षिण की ओर चले। बारह मील जाने पर दौलत ख़ाँ लोदी की टुकड़ी से उनकी भेंट हुई। इससे उनका साहस और भी बढ़ा। किन्तु शाहीदल में अब भी कुछ

मिला कर दो हजार से अधिक सैनिक न थे। उधर मिर्ज़ा जानी के पास पाँच हजार से अधिक केवल अश्वारोही ही थे, पैदल सैनिकों और धनुर्धरों की तो गिनती ही नहीं थी। इसके अतिरिक्त उसके पास तोपखाना तथा एक सुसज्जित बेड़ा भी था।

कुछ मुगल योद्धाओं की राय हुई कि वे तत्काल निकटस्थ लाकी दर्रे को सुदृढ़ करने में ही अपना ध्यान केन्द्रित करें और जब तक ख़ानख़ाना के पास से और कुमक न आ जाए तब तक आगे न बढ़ें। किन्तु दौलत खाँ उनसे सहमत न था। उसने कहा कि यदि हम दर्रे पर ही डटे रहेंगे तो हमारी स्थिति बड़ी विषम हो जाएगी। वहाँ हम पर पहाड़ियों की ओर से वैरी की स्थल सेना, नदी की ओर से उसकी जल सेना तथा पृष्ठ भाग से सेहवान के दुर्ग रक्षक सभी आक्रमण कर सकते हैं। हमारे लिए सर्वोत्तम यही होगा कि हम आगे बढ़ कर किसी अनुकूल स्थान पर रिपु से आमने सामने युद्ध करें। अन्त में दौलत खाँ की बात मान ली गई और शाही दल वहाँ से बारह या चौदह मील दक्षिण पश्चिम की ओर शत्रु से खुले मैदान में लोहा लेने के लिए पहुँचा।

मिर्ज़ा जानी अभी सेहवान से कुछ दूर ही था कि उसे मुगलों की इस नवीन योजना की सूचना मिली। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे अपनी शक्ति पर अभिमान था। वह कल्पना ही नहीं कर सकता था कि मुट्ठी भर मुगल उसके विरुद्ध इस प्रकार लड़ने का साहस करेंगे। जब उसके चरों ने दक्षिण से दौलत ख़ाँ के आने और लाकी दर्रे के निकट दो दिन पूर्व ही सेहवान दस्ते से उसके संयोग करने की बात बताई तो पहले तो उसे विश्वास ही न हुआ। थोड़ी देर में उसे सामने धूल का बादल उठता दिखाई दिया। चरों ने

संकेत किया कि यह धूल शाही सेना के शीघ्र प्रयाण के कारण उड़ रही है। अब उसे वास्तविकता का बोध हुआ। वह तुरन्त अपनी सेना की व्यूह रचना कर मुगलों की ओर बढ़ा।

शाही दल में कमानों का वितरण पहले ही हो चुका था। दौलत खाँ कतिपय विशिष्ट वीरों के साथ मध्य भाग की अध्यक्षता कर रहा था। दक्षिण एवं वामपार्श्वों के नेता थे, क्रमशः मीर मासूम भक्करी तथा सैयद बहाउद्दीन। बारहा के वीर सैयद तथा कुछ अफगान और तुर्कमान सदा की भाँति इस बार भी अग्रभाग को सुशोभित कर रहे थे।

अन्त में सेहवान से लगभग चौबीस मील दूर, लंकी ग्राम के निकट विरोधी सेनाओं का सामना हुआ और शीघ्र ही घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। सर्व प्रथम, शत्रु के अग्रभाग ने खुसरो की अध्यक्षता में मुगलों के अग्रभाग पर प्रबल प्रहार किया। स्मरण रहे, यह वही खुसरो था जो कुछ समय पूर्व जल युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ था। शाही अग्रभाग सिंधियों के वेग को रोकने में अपने को असमर्थ पा शीघ्र ही तितर बितर हो गया। उनमें शमशेर अरब नामक योद्धा ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की किन्तु बुरी तरह घायल हो जाने पर अन्त में उसे भी विवश होकर अपने स्थान से हटना ही पड़ा। सामने का प्रतिरोध समाप्त कर खुसरो अब शाही सेना के दक्षिण पार्श्व की ओर मुड़ा। वहाँ भी मुगलों की वही दशा हुई। राजा टोडरमल का पुत्र धार बहादुर भी दाहिने भाग में था। जब उसने अपने पार्श्व को छिन्न-भिन्न होते देखा तो उसका खून उबल पड़ा। उसने अपने घोड़े को ऐंड़ लगाई और सामने आ मिर्ज़ा जानी को चुनौती देते हुए चिल्ला कर कहा कि यदि सिंध शासक में साहस हो तो वह स्वयं आकर

उससे युद्ध करे। मिर्ज़ा जानी की धाय का बेटा, अरब बहादुर समीप ही था। नव युवक को कोधावेश में देख उसे भय हुआ कि कहीं वास्तव में वह उसके स्वामी पर प्रहार न कर बैठे। अतः उसने आगे बढ़ कर कहा कि मैं ही मिर्ज़ा जानी हूँ। उस युवक ने सिंध शासक को पहले कभी देखा तो था नहीं, उसे ही वास्तविक मिर्ज़ा जानी समझ वह उस पर भूखे सिंह की भाँति टूट पड़ा। फिर क्या था, रक्तमय द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। दोनों ही योद्धा विजय पर तुले हुए थे। कोई भी हटने का नाम न लेता था। एक दूसरे पर अनवरत प्रहार करते हुए उन वीरों ने ऐसा कौतूहल उत्पन्न कर दिया कि थोड़ी देर के लिए अन्य मोर्चों पर युद्ध प्रायः स्थगित ही हो गया और सब के सब उस अनुपम द्वन्द्व को देखने के लिए एकत्र हो गए। वे इस प्रकार अभी परस्पर भिड़े ही हुए थे कि एकाएक अरब बहादुर ने उस युवक राजा के माथे पर भाले का प्रहार किया। इतने में ही मिर्ज़ा जानी ने पीछे से आकर उसे घोड़े पर से भी गिरा दिया। वह साहसी युवक अब भी रणक्षेत्र से न हटा और अपने कुछ सहायकों के सहारे युद्ध करता ही रहा। किन्तु ऐसी स्थिति में वह कब तक रहता। निरन्तर रक्तस्राव के कारण वह संज्ञा-शून्य होने लगा और अन्त में मृत्यु ने ही उसे अपनी गोद में उठा कर रण क्षेत्र से अलग किया।

मुगलों का अग्रभाग तथा दक्षिण पार्श्व पहले ही भंग हो चुका था। अब सिन्धियों के दक्षिण पार्श्व ने मलिक मुहम्मद की अध्यक्षता में मुगलों के वाम पार्श्व पर आक्रमण किया। यहाँ भी शाही सेना शत्रु के प्रबल वेग को रोकने में समर्थ न हो सकी और घबड़ा कर इधर उधर विभिन्न दिशाओं में भागने लगी। शत्रु को आगे बढ़ने के लिए पथ प्रशस्त हो गया। सिन्धियों का एक अल्प संख्यक

समूह विरोधी पक्ष के सेना नायक, नहारखाँ को एक ओर ढकेलता हुआ, शाही शिविर की ओर झपटा और वहाँ पहुँच कर लूट पाट मचाने लगा।

मुगलों के लिए युद्ध का यह काल बड़ा हो संकटमय था। उनका अग्रभाग और दोनों पार्श्व बुरी तरह पराजित हो चुके थे और रणक्षेत्र में शत्रु का प्रभाव पूर्ण रूप से स्थापित हो गया था। किन्तु शीघ्र ही भाग्य ने उनका साथ दिया। उसी समय बड़े जोर की आँधी आई और ऐसी धूल उड़ी कि लोगों की आँख भी न खुलने पाती थी। ऐसे अवसर से लाभ उठा कर मुगलों के वाम पार्श्व के नेता बहाउद्दीन ने, सिंधियों के उस समूह पर जो अभी शाही शिविर को लूटने में ही व्यस्त था, प्रबल वेग से आक्रमण किया। इसी बीच मुगलों के मध्य भाग के सैनिक भी वहाँ पहुँच गए और उनकी सहायता से बहाउद्दीन ने शीघ्र ही सिंधियों को वहाँ से खदेड़ दिया। अब संध्या हो चली थी, अतः अन्धकार ने भी मुगलों की सफलता में योग दिया। दोनों ही पक्षों का ऐसे समय में व्यूह बनाए रखना तथा सुनियोजित आक्रमण करना प्रायः असम्भव ही था। अभी दौलत खाँ शाही सेना के मध्य भाग में खड़ा घबड़ाया हुआ अपने साथियों की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि एकाएक उसके दोनों पार्श्वों के नेता उससे आ मिले। अब युद्ध सभी मोर्चों पर होने लगा। मिर्ज़ा जानी चार सौ विशिष्ट योद्धाओं के साथ अब भी अपने मध्यभाग में ही था। संयोगवश उसी समय उसके पक्ष का एक हाथी बिगड़ उठा और मदान्ध हो वह इधर उधर दौड़ने लगा। इससे भयभीत हो उसके सैनिक विभिन्न दिशाओं में भागने लगे। दौलत ख़ाँ ने इस अवसर से लाभ उठा कर तुरन्त उस पर आक्रमण कर दिया।

मिर्ज़ा जानी बड़ी वीरता से लड़ा, किन्तु मुगलों की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख उसका अधिक देर तक टिकना कठिन हो गया। अन्त में जब उसने देखा कि अब उसकी पराजय निश्चित है तो वह अपने बहुत से साथियों को हताहत छोड़ युद्ध क्षेत्र से भाग गया [१]।

जब ख़ानख़ाना को बुहिरी में इस अनुपम विजय की सूचना मिली तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने विजय दाता भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और दीन दुःखियों को खूब दान दिया। इस संघर्ष में प्रमुख भाग लेनेवाले सैनिकों को भी उसने पुरस्कृत कर उत्साहित किया और सारे युद्ध-बंदियों को मुक्त कर दिया।

उनरपुर का घेरा तथा मिर्ज़ा जानी की अन्तिम पराजय

मिर्ज़ा जानी इस पराजय के पश्चात् शीघ्रता से सरिता की ओर बढ़ा और नाव में बैठ कर बुहिरी में एक बार पुनः शरण लेने के उद्देश्य से दक्षिण की ओर चला। किन्तु मार्ग में जब उसे ज्ञात हुआ कि मुगलों ने उस स्थान पर पहले ही से अधिकार कर रखा है, तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। उसे समझ में नहीं आता था कि अब वह कहाँ जाए। उतावली में उसने साथियों से विचार विमर्श किया और उनके पारमर्श से इस बार उनरपुर नामक स्थान में जो कोठरी से बाईस मील उत्तर था, शरण लेने का निश्चय किया।

उनरपुर को, सूम्र वंश के प्रथम शासक, जाम उनर ने बसाया था और उसी के नाम पर वह उनरपुर कहलाता था। उस समय वह स्थान मातारी नामक वर्त्तमान उपनगर से चार मील उत्तर था।

१ इस युद्ध के विशेष वर्णन के लिए देखिए तारीखे मासूमी, पृ० २५४-२५५; अ० ना० भाग ३, पृ० ६२४, ६२६; त० अ० भाग २, पृ० ६३९; म० र० भाग २, पृ० ६६२, ३६७

उसके तीन ओर सिंध नदी चक्कर काटती हुई बहती थी और केवल एक ओर से स्थल मार्ग द्वारा वहाँ पहुँचा जा सकता था। प्राकृतिक अवरोधों से सुरक्षित यह स्थान मिर्ज़ा जानी के शरण के लिए सर्वथा उपयुक्त था। वहाँ पहुँचते ही उसने इस बार भी अपने शिविर के चारों ओर मिट्टी की दीवारें निर्मित कर लीं। पूर्व भाग को विशेष रूप से सुदृढ़ रखने के उद्देश्य से उसने उधर बड़े ऊँचे ऊँचे बालू के टीले उठवा लिए और उन पर अपनी तोपें लगवा दीं, जिससे सरिता पर उसका पूर्ण अधिकार बना रहे। इसी प्रकार पश्चिम की ओर भी उसने एक ऊँची दीवार उठवा ली और नदी के दोनों मोड़ों को एक विस्तृत खाई से सम्बन्ध कर दिया, जिससे स्थल मार्ग से भी उस पर कोई आकस्मिक आक्रमण न हो सके। कृषक वर्ग तो उसके पक्ष में था ही। अपने सुदृढ़ बेड़ों द्वारा वह उनके पास से बराबर खाद्य सामग्री मँगा सकता था।

ख़ानख़ाना ने उक्त सूचना पाते ही अविलम्ब उनरपुर की ओर प्रयाण किया और वहाँ पहुँचते ही शत्रु के शिविर पर घेरा डाल दिया। बुहिरी के कटु अनुभव उसे भूले न थे। अतः इस बार उसने प्रारम्भ से ही पूर्ण सावधानी रखी। पश्चिम की ओर के स्थल मार्ग से उस रेतीले किले पर सफलता पूर्वक घेरा डाला जा सकता था, इसलिए ख़ानख़ाना ने अपने अधीनस्थ सेना नायकों को उस ओर विभिन्न स्थानों पर नियुक्त कर दिया। उन्हें आज्ञा हुई कि वे खाइयाँ खोदते और मोर्चे बाँधते हुए दुर्ग की ओर बढ़े। ख़ानख़ाना ने युवावस्था के आवेश में प्रतिज्ञा की कि जब तक वह मिर्ज़ा जानी के गढ़ पर अधिकार न कर लेगा तब तक वह न तो बाल बनवाएगा और न स्नान ही करेगा।

घेरा डालने का कार्य निरन्तर एक महीने तक चलता रहा। ख़ानख़ाना अपने उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु अथक प्रयास कर रहा था। यार मुहम्मद नामक एक ईरानी अभी कुछ ही समय पूर्व उसकी सेवा में भरती हुआ था। वह घेरा डालने की कला का विशेषज्ञ माना जाता था। ख़ानख़ाना ने उसे इस कार्य के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया। पहले तो उस गहरी खाई को जिसे शत्रु ने नदी के दो मोड़ों के बीच खुदवा रखी थी, बालू से पाट दिया। फिर रेतीले टीले बनाते और उनके मध्य की सुरंगों से गोलाबारी करते मुगल धीरे धीरे गढ़ की ओर बढ़ने लगे।

किन्तु इन उपायों से भी वे शत्रु को समर्पण कराने पर बाध्य न कर सके। दुर्ग रक्षकों को अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। वे भी जी जान से मुगलों का प्रतिरोध कर रहे थे। खाद्य सामग्री उनके पास निरन्तर पहुँचती जा रही थी, इसलिए इस विषय में वे निश्चिन्त थे। वर्षा प्रारम्भ हो जाने के कारण मुगलों की स्थिति विषम होने लगी। उस जलमग्न भाग में आगे बढ़ना उन्हें बड़ा कठिन हो रहा था। धीरे धीरे रसद भी कम पड़ने लगी। ऐसी दशा में ख़ानख़ाना का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। उसने इस संकटकाल में एक बार फिर अकबर से शीघ्र सहायता भेजने का निवेदन किया। बादशाह ने उसकी प्रार्थना पर तुरन्त ध्यान दिया और अल्ला बख़्श की अध्यक्षता में एक सबल दस्ता तथा बहुत साधन और खाद्य-सामग्री सेनापति के पास भेजी।

इस सामयिक सहायता से मुगलों का साहस बढ़ा। वे अब और भी अधिक वेग से शत्रु पर प्रहार करने लगे। प्रकृति ने भी उनका साथ दिया। वर्षा के प्रारम्भ होते ही नदी में बाढ़ आने लगी और

उसका सारा तटीय भाग जल मग्न हो गया। मिर्ज़ा जानी के प्रतिरोध का क्षेत्र अब बहुत संकुचित हो गया। निरन्तर वृष्टि के कारण उसके गढ़ की प्राचीरें भी घुल घुल कर गिरने लगीं। तीन ओर से लहरों की सेनाएँ (अफवाजे मौज) और चौथी ओर से शाही सेना उस पर निरन्तर प्रहार कर रही थी। ऐसी स्थिति में उसका वहाँ बने रहना प्रायः असम्भव ही हो गया। उसी समय महामारी का प्रकोप हुआ जिसमें बहुत से सिंधियों के प्राण गए। सरिता पर भी अब उसका अधिकार पूर्ववत् न था। फलतः समय पर खाद्य सामग्री भी न पहुँच पाती थी। दुर्ग रक्षकों की दशा बड़ी शोचनीय हो गई। निज़ामुद्दीन के कथनानुकूल जीवन रक्षा के लिए उन्हें घोड़ों और ऊँटों तक को खाने पर विवश होना पड़ा। इसी बीच घेरा डालने वालों का मोर्चा दीवार के निकट तक पहुँच गया और उनकी भीषण गोलाबारी से भी बहुत से सिंधी मारे जाने लगे। मिर्ज़ा जानी ने ऐसी स्थिति में सन्धि कर लेना ही सर्वोत्तम समझा। अतः उसने अपने संदेश वाहकों को सन्धि का प्रस्ताव लेकर ख़ानख़ाना के पास भेजा।

पहले तो ख़ानख़ाना को मिर्ज़ा जानी की नीयत पर विश्वास न हुआ। उसने समझा कि वह कूटनीति से किसी प्रकार शक्ति संचय का अवसर प्राप्त करना चाहता है। अतः उसने उन दूतों को बिना कुछ उत्तर दिए ही वापस भेज दिया और घेरे को पूर्ववत् बनाए रखा। धीरे धीरे मिर्ज़ा जानी के कतिपय विश्वस्त सहयोगी उसका साथ छोड़ कर ख़ानख़ाना की शरण में आने लगे। मुगल सेनापति भी उनको उनके स्तर के अनुकूल ही मनसब तथा पारितोषिक देने लगा। ख़ानख़ाना की इस उदारता से प्रभावित हो,

बहुत से और भी सिंधी अपने स्वामी को छोड़ मुग़लों की ओर चले आए। मिर्ज़ा जानी अब विक्षिप्त हो उठा और उसने अपने कुछ परमनिष्ठ सहकारियों को ख़ानख़ाना की सेवा में भेज कर निवेदन किया कि अल्ला के नाम पर वह अपने सहधर्मियों की हत्या अब बन्द करवा दे। ख़ानख़ाना को अब पूर्ण विश्वास हो गया कि मिर्ज़ा जानी वास्तव में सन्धि करना चाहता है। अतः अपने कुछ सहयोगियों की सम्मति न होते हुए भी उसने उन दूतों का स्वागत किया और निम्नलिखित शर्तों पर सन्धि का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया[१]।

१ सेहवान का दुर्ग तथा बीस युद्ध पोत मुग़लों को दे दिए जाएँ।
२ मिर्ज़ा जानी अपनी पुत्री का विवाह ख़ानख़ाना के ज्येष्ठ पुत्र मिर्ज़ा इरीज से करे।
३ सिंधी शासक वर्षा ऋतु समाप्त होते ही दरबार में जाए और वहाँ बादशाह की सेवा में स्वयं उपस्थित हो।

दोनों पक्षों के सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् ख़ानख़ाना ने घेरा उठा लेने का आदेश दे दिया। इन शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए यह निश्चय हुआ कि सेहवान का दुर्ग शाही सेना के वहाँ पहुँचते ही समर्पित कर दिया जाए और वह वर्षा ऋतु भर वहीं रहे। मिर्ज़ा जानी ने प्रार्थना की कि उसे तीन मास का अवकाश दिया जाए जिससे वह अपनी राजधानी ठट्टा जाकर लाहौर यात्रा का समुचित प्रबन्ध कर ले। ख़ानख़ाना ने उसका निवेदन स्वीकार कर लिया और उसे वचन दिया कि ज्यों ही वह दरबार में पहुँचेगा त्यों ही मुग़ल सेनापति अपने स्वामी से उसे पंच हज़ारी मनसब दिलवा देगा। इसके

१ इस घेरे के विस्तृत विवरण के लिए देखिए :—तारीखे-मासूमी, पृ० २५५-२५८ म० र० भाग २, पृ० ३६४-३७०; अ० ना० भाग ३, पृ० ६३४

पश्चात् वहीं बड़ी धूमधाम से मिर्ज़ा ईरीज का विवाह सिन्ध शासक की पुत्री से सम्पन्न हुआ। घृणा का वातावरण प्रेम में परिवर्तित हो गया और दोनों पक्ष जो अभी कुछ ही समय पूर्व एक दूसरे के रक्त-पिपासु हो रहे थे, परस्पर स्नेहालिंगन में बद्ध हो गए। प्रीतिभोज और उत्सव के बाद दोनों ने एक दूसरे से विदा ली। मिर्ज़ा जानी ने ठट्ठा की ओर प्रयाण किया और ख़ानख़ाना सिन्धियों द्वारा दिए गए युद्धपोत में बैठ उत्तर की ओर सेहवान पर अधिकार करने चला। जब वह सेहवान दुर्ग के ठीक सामने नदी के बाएँ तट पर सारों नामक ग्राम में पहुँचा तो उस ऐतिहासिक दुर्ग का सिंधी अधिकारी रुस्तम उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और सन्धि की शर्तों के अनुकूल उसने उस गढ़ की कुञ्जी ख़ानख़ाना को सौंप दी। शीघ्र ही सेविस्तान का समूचा प्रदेश मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया।

तीन मास की अवधि समाप्त हो गई किन्तु मिर्ज़ा जानी अब भी न लौटा। उसकी विलम्बकारी चालों ने ख़ानख़ाना के मन में संदेह उत्पन्न कर दिया। वह समझ गया कि दाल में अवश्य कुछ काला है। इतने ही में सहसा उसे सिंध-शासक का संदेश मिला कि वह अस्वस्थ होने के कारण उस समय लाहौर तक की दीर्घ तथा श्रमपूर्ण यात्रा करने में असमर्थ है अतः वह हेमंत के पश्चात् ही दरबार की ओर प्रयाण कर सकेगा। इससे ख़ानख़ाना के सन्देह की और भी पुष्टि हो गई। उसने सन्देशवाहकों को बन्दी बना लिया और मिर्ज़ा जानी की सम्भाव्य कपटपूर्ण चालों को विफल करने के लिए तीन टुकड़ियाँ तुरन्त दक्षिण की ओर भेजीं—एक सरिता के बाएँ तट से, दूसरी दाहिने तट से और तीसरी जल मार्ग से। उसने सिंध-

शासक को संधि शर्तों का स्मरण दिलाने और चेतावनी देने के हेतु अपना एक विशेष दूत भी ठट्टा भेजा। ख़ानख़ाना को अब भी संतोष न हुआ। कुछ समय पश्चात् वह स्वयं भी दक्षिण सिंध के तात्कालिक प्रसिद्ध बन्दरगाह लाहौरी बन्दर को देखने के बहाने अपनी टुकड़ियों के पीछे पीछे चला और बुहिरी पहुँच कर उनके साथ हो लिया।

मिर्ज़ा जानी भी कम चालाक न था। शाही दल के ठट्टा की ओर बढ़ने की सूचना पाते ही वह राजधानी से निकला और छः मील दूर रेन नदी के तट पर फतेह बाग में जाकर उसने अपना डेरा डाला। स्पष्टतः ऐसा उसने मुगलों को धोखा देने के लिए ही किया था। अपने निवास स्थान से कुछ दूर प्रयाण कर वह ख़ानख़ाना को यह दिखलाना चाहता था कि वह दरबार की ओर जा रहा है। किन्तु वास्तव में वह वहाँ पुर्तगालियों की, जो उसकी सहायतार्थ आने का वचन दिए थे, प्रतीक्षा में रुका हुआ था। वह स्थान सामरिक दृष्टि से उसके लिए उपयुक्त भी था, कारण कि वहाँ से पृष्ठभाग में बहती हुई सरिता के साथ वह अपना यातायात खुला तथा सुरक्षित रख सकता था।

किन्तु इन छलपूर्ण चालों से भी सिंध-शासक अपने को अधिक दिन तक स्वतंत्र न रख सका। शाही सेना पुर्तगालियों को समुद्र तट की ओर खदेड़ने के बहाने, आगे बढ़ती ही गई और शीघ्र ही फतेह बाग पहुँच गई। अब मिर्ज़ा जानी बड़ा भयभीत हुआ। वह ख़ानख़ाना के स्वागतार्थ आगे-बढ़ा और मार्ग ही में दोनों अश्वारोही एक दूसरे से गले मिले। नीतिकुशल मिर्ज़ा जानी ने मुगल

सेनापति को विश्वास दिलाया कि वह शीघ्रातिशीघ्र अकबर की सेवा में उपस्थित होने को उत्सुक है और यदि अस्वस्थ न होता तो निश्चित अवधि के उपरान्त ही उसने लाहौर की ओर प्रयाण कर दिया होता। ख़ानख़ाना भी कम चतुर न था। उसने सिंध शासक को निर्बल करने का यह अवसर अच्छा देखा। उसने कहा कि यदि वह मुगलों को अपनी सच्ची मित्रता का आश्वासन देना चाहता है तो वह अपना जहाजी बेड़ा उन्हें समर्पित कर दे। मिर्ज़ा जानी निरुत्तर हो गया और उसने अपने सारे युद्ध पोत, जिन के बल पर वह इतने दिनों तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करता आ रहा था, विवश हो शाहीदल को सौंप दिए। वहाँ से निश्चिन्त हो खानख़ाना अब ठट्ठा की ओर चला।

उस ऐतिहासिक नगर को देखने के पश्चात् खानख़ाना लाहौरी बन्दर गया जो उस समय सिंध का मुख्य बन्दरगाह माना जाता था। उदार सेनापति ने ठट्ठा से प्रस्थान करने के पूर्व ही अपनी सारी सम्पत्ति जो उस समय उसके पास थी, अपने अधिकारियों और सैनिकों में वितरित कर दी। उसे अब भी यह आशंका बनी रहती थी कि कहीं मिर्ज़ा जानी फिर छलपूर्ण चालें न चलने लगे, इसलिए समुद्र तट पर कुछ ही दिन विहार कर वह फिर फतेहबाग लौट आया। इसी बीच उसे शाही आदेश मिला कि वह पराजित शत्रु के साथ शीघ्रातिशीघ्र दरबार में उपस्थित हो। अतः विजित प्रान्त का कार्य भार अपने अधीनस्थों को सौंप उसने मिर्ज़ा जानी के साथ अविलम्ब उत्तर की ओर प्रयाण किया और शीघ्रतम गति से चलता हुआ लाहौर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ।

खानखाना के आश्रित कवियों में एक मुल्ला शकेबी नाम का प्रसिद्ध फारसी कवि था। उसने खानखाना की सिंध विजय की प्रशंसा में एक बड़ी उत्कृष्ट मसनवी लिखी। गुण पारखी खानखाना उसके एक शेर पर इतना प्रसन्न हुआ कि उसे एक सहस्र अशर्फियाँ पारितोषिक रूप में दीं। वह शेर इस प्रकार है :

"हुमाए कि बर अर्श कर्दे हजाम, गिरफ्ती व आज़ाद कर्दी ज़दाम"

"जो हुमा पक्षी आकाश में प्रसन्नता पूर्वक विहार कर रहा था, उसे पकड़ा और पुनः जाल में से मुक्त कर दिया।"

जब यह शेर पढ़ा गया तो मिर्जा जानी भी वहाँ उपस्थित था। उसने भी प्रसन्न हो कर उस मुल्ला को एक सहस्र अशर्फियाँ प्रदान कीं और कहा कि ईश्वर की कृपा है कि इसने मुझे हुमा पक्षी बनाया। यदि यह मुझे गीदड़ भी कह डालता, तो मैं इसकी जबान थोड़े ही पकड़ लेता।

चतुर्थ अध्याय

खानखाना और दक्षिण-प्रदेश (१५६३–१६०५)

सिंध से लौटने के पश्चात् खानखाना छः मास तक दरबार में रहा। इसी बीच अकबर ने दक्षिण-देश पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उसने इस उद्देश्य से एक विशाल सेना एकत्र की और अपने तृतीय पुत्र दानियाल को उसका प्रधान नियुक्त किया। किन्तु राजकुमार अभी अनुभवहीन नवयुवक था, अतः बादशाह ने खानखाना को उसका अभिभावक 'अतालिक' और मुख्य सेनापति नियुक्त किया। साथ ही उसने खानखाना की पुत्री जाना बेगम का विवाह भी राजकुमार के साथ कर दिया और अपने नए समधी को बहुत सा सोना तथा अन्य बहुमूल्य उपहार भेंट किए जिससे उसे सेना-संग्रह में आर्थिक कठिनाई न पड़े[१]।

दक्षिण-देश में उस समय चार स्वतंत्र रियासतें थीं—खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा। उनमें पारस्परिक ऐक्य न था और अनवरत आंतरिक संघर्षों के कारण वे प्रायः जर्जर हो चली थीं। अखिल भारतीय साम्राज्य का स्वप्नद्रष्टा अकबर, बहुत दिनों से उन पर अधिकार जमाने का लालायित था और जैसा पहले उल्लेख हो चुका है, १५८६ ई० में उसने खान आजम को दक्षिण में हस्तक्षेप करने के लिए भेजा भी था। किन्तु दक्षिणियों के सम्मिलित प्रतिरोध एवं शाही सैनिकों के पारस्परिक द्वेष के कारण उसकी कूटनीति सफल न हो सकी। उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम भारत की समस्याओं में उलझे

---

१ बदायूनी भाग २, पृ० ४०३।

होने के कारण वह उस समय चुप बैठ रहा किन्तु उसकी लालसा पूर्ववत ही बनी रही। जब उत्तर भारत में उसकी स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ हो गई तो उसने दक्षिण की ओर पुनः ध्यान दिया। स्वाभावानुकूल, बल प्रयोग करने के पूर्व, उसने अपने दूतों को अगस्त, १५९१ ई० में उक्त राज्यों में भेज कर कहलाया कि वे उसकी महाप्रभुता स्वीकार करें। खानदेश, जो उन सब में छोटा था और जो मुगल-राज्य की सीमा पर ही स्थित था, उसकी माँग स्वीकार करने पर उद्यत हो गया किन्तु औरों ने कोई निश्चित उत्तर न दिया। अब अकबर के सम्मुख अपने लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु बल-प्रयोग के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न था। इनमें अहमदनगर उसका प्रथम कोपभाजन बना। वह मुगल-राज्य की सीमा के समीप तो था ही, वहाँ के शासक बुरहान-उल-मुल्क की विपत्ति में बादशाह ने सहायता भी की थी। जब उसके प्रतिद्वन्दी ने उसे सिंहासन-च्युत कर राज्य-निकाला दे दिया था तो अकबर ने ही उसे शरण दी थी। ख़ान आज़म को दक्षिण में उसने विशेषतः उसको पुनः राज्य दिलाने के लिए ही भेजा था। इसलिए जब उसने भी उसकी महाप्रभुता स्वीकार न की और केवल कुछ उपहार ही भेज कर रह गया, तो अकबर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने ख़ानख़ाना को सर्वप्रथम अहमद नगर पर ही आक्रमण करने का आदेश दिया।

बादशाह सेनापति के दायित्व की गुरुता को समझता था, अतः उसने एक विशाल सेना संगठित की जिसमें सत्तर हज़ार अश्वारोही, असंख्य पैदल सैनिक, बहुत से हाथी तथा एक सुसज्जित तोपखाना भी था। बहुत से अनुभवी सेना-नायकों को, जिनमें राय रायसिंह और राय भील के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं,

आज्ञा हुई कि वे इस सेना को ले ख़ानख़ाना के साथ जाएँ। मालवा के जागीरदारों को आदेश भेजा गया कि वे भी अपनी सुसज्जित वाहिनियों के साथ सेनापति के साथ जाएँ। अकबर इतने से भी संतुष्ट न हुआ। उसने बंगाल के राज्यपाल मानसिंह को आदेश भेजा कि यदि उसके प्रान्त में परिस्थितियाँ अनुकूल हों और निकट भविष्य में किसी आपत्ति की सम्भावना न हो तो वह भी दक्षिण चला जाए। इसी प्रकार उसने अपने द्वितीय पुत्र मुराद को जो उस समय गुजरात का राज्यपाल था, आज्ञा दी कि वह भी दक्षिण-विजय की तैयारियाँ करे और जब सभी ओर की सेनाएँ उसके निकट कहीं एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो जाएँ, तो वह भी दक्षिण की ओर प्रयाण कर दे[१]।

अन्त में अक्टूबर, १५९३ ई० में ख़ानख़ाना ससैन्य लाहौर से दक्षिण की ओर चला। अकबर यह देखने के लिए कि वह विशाल वाहिनी किस गति से प्रयाण कर रही है, उसके पीछे पीछे, आखेट के बहाने लाहौर से पैंतीस कोस, व्यास के किनारे, सुल्तानपुर तक आया। यहाँ उसे सूचना मिली कि सरहिन्द पहुँचने के पश्चात् सेना की गति मन्द पड़ गई है। बादशाह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने तुरन्त ख़ानख़ाना को इसका कारण बताने के लिए वापस बुलवाया। आदेश पाते ही सेनापति लौटा और शेख़ूपुरा उपनगर के पास बादशाह से भेंट की। उसने बताया कि सेना की मन्द गति का एक मात्र कारण है, अत्यधिक वर्षा। उसने यह भी कहा कि वर्षा-समाप्ति के पश्चात् ही दक्षिण पर आक्रमण करना अधिक सुविधाजनक होगा। उस समय यातायात की सुविधा तो रहेगी ही, अन्न और चारा भी

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६६९; त० अ० भाग २, पृ० ४२२।

सरलता से रास्ते में मिल सकेगा। अकबर उससे सहमत हो गया और दक्षिण-विजय-योजना में परिवर्त्तन कर दिया। कदाचित् इसी समय अकबर को सूझा कि यदि एक कमान में वह दो राजकुमारों को रखेगा तो संघर्ष की सम्भावना बनी रहेगी। उसने इस विषय में खानखाना से परामर्श किया। सेनापति ने भी उसकी आशंका की पुष्टि की और कहा की यदि कोई भी राजकुमार न भेजा जाए तो वह अकेले ही इस कार्य को सम्पन्न कर सकता है। अकबर द्विविधा में पड़ गया। पहले तो उसने उस समय दक्षिण-विजय की योजना त्याग देना चाहा किन्तु बाद में विचार बदल दिया। उसने दानियाल को तो पंजाब का शासन-भार सम्हालने के लिए वापस बुला लिया और खानखाना को आज्ञा दी कि वर्षा समाप्त होते ही वह अपनी सेना के साथ आगरे के मार्ग से दक्षिण की ओर प्रस्थान करे[१]।

खानखाना आगरे आया और वहाँ से कुछ और सेना एकत्र कर, १५९४ ई० में लगभग अक्टूबर के मध्य में मालवा के मार्ग से दक्षिण की ओर प्रयाण किया। मार्ग में ग्वालियर के निकट भिलसा उसकी जागीर थी, अतः उसकी देखभाल करने तथा सेना के लिए कुछ आवश्यक सामग्री एकत्र करने में वहाँ उसे कुछ समय तक रुकना पड़ा। १९ जुलाई, १५९५ ई० को उसने वहाँ से अपनी दक्षिण-यात्रा पुनः प्रारम्भ की। उज्जैन में मिर्जा शाहरूख, अपनी मालवा की सेना के साथ उससे आ मिला। जब वह माँडू के समीप पहुँचा तब उसे दक्षिण-देश के हाल के घटना-चक्रों का पता चला। बुरहान निजामुल मुल्क की मृत्यु हो चुकी थी और इसके

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ६६६; त० अ० भाग २, पृ० ६४०; बदायूनी भाग २, पृ० ४०३।

परिणाम स्वरूप उत्पन्न परिस्थियों से लाभ उठा कर आदिलशाह ने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया था। दरबार के अमारों में एकता न थी, वे स्वार्थवश आपस ही में मरे-कटे जा रहे थे। स्वर्गीय शासक के प्रधान मंत्री, मियाँ मंभू ने किसी एक बालक को जिसका नाम अहमद था, निजामशाही सिंहासन पर बैठा दिया था। किन्तु उसके प्रतिद्वन्द्वी अमीर अहमद को नवीन शासक स्वीकार करने को प्रस्तुत न थे। जब मियाँ मंभू ने उनकी न सुनी तो उन्होंने विद्रोह कर दिया और मंभू को अहमदनगर में घेर लिया। प्रधान मंत्री ने जब देखा कि वह अकेले शत्रुओं का सामना नहीं कर सकता तो उसने गुजरात के तात्कालीन मुगल राज्यपाल राजकुमार मुराद से सहायता की प्रार्थना की[१]।

उक्त समाचार उत्साहवर्धक अवश्य था, किन्तु सावधान सेनापति ने उतावली करना उचित न समझा। उसने अनुभव किया कि जब तक पृष्ठभाग में स्थित खानदेश-राज्य अधिकार में नहीं आ जाता या वहाँ का शासक मित्र नहीं बना लिया जाता तब तक आगे अहमदनगर की ओर बढ़ना अदूरदर्शिता ही होगी। अतः उसने खानदेश के शासक, राजा अली ख़ाँ को लिखा कि वह मुगल सम्राट की महाप्रभुता स्वीकार करे, अपने सिक्कों पर उसका नाम खुदवाए, उसके नाम में खुतबा पढ़े और जन-धन के साथ प्रस्तावित दक्षिण-विजय में सक्रिय योग दे। इनके बदले ख़ानख़ाना ने उसे पूर्ण रक्षा तथा शाही कृपा का आश्वासन दिया। राजा अली ख़ाँ

१, अ० ना० भाग ३, पृ० १०४९; फरिश्ता भाग २, पृ० १९६; बुरहाने मासिर पृ० २६५।

दूरदर्शी शासक था। उसने देखा कि शक्तिशाली मुगलों से मित्रता बनाए रखने में ही उसका कल्याण है। अतः उसने उक्त सारी शर्तें मान लीं और अभी ख़ानख़ाना बुरहानपुर से तीस कोस दूर ही था कि वह उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। उनका मिलन बड़ा ही मैत्रीपूर्ण रहा और दोनों में परस्पर बहुमूल्य उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। जब अकबर को इसकी सूचना मिली तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ और अपने सेनापति की सिफ़ारिश पर उसने राजा अली ख़ाँ को उसका पूर्वराज्य जागीर में दे दिया। खानदेश अब मुगल साम्राज्य का एक सुरक्षित प्रान्त बन गया[१]।

खानखाना का यह महान् कृत्य सर्वथा प्रशंसनीय है। खानदेश दक्षिण की कुंजी माना जाता था और राजा अली खाँ दक्षिण देश के शासकों में सबसे अधिक वीर, बुद्धिमान और प्रतिभाशाली था। ऐसे महत्वपूर्ण राज्य को बिना रक्तपात के, मैत्री पूर्ण ढँग से, मुगल साम्राज्य में मिला कर वास्तव में खानख़ाना ने बड़ी नीति-कुशलता तथा दूरदर्शिता का परिचय दिया। आगे चल कर दक्षिण-विजय में राजा अली खाँ ने बहुमूल्य योग दिया और अन्त में उसी में उसने अपने प्राणों की आहुति भी दे दी।

ख़ानख़ाना का मुराद से मतभेद

मुराद ने, बादशाह के आदेशानुकूल, गुजरात में दक्षिण विजय की तैयारियाँ पहले ही कर रखीं थीं। इतने में उसे मियाँ मंझू का

१, अ० ना० भाग ३, पृ० १०४२; म० र० भाग २ ० ४७६–४७७।

निवेदन पत्र मिला। उसमें निजाम शाही प्रधान मंत्री ने राजकुमार से अविलम्ब सहायता की प्रार्थना की थी। और वचन दिया था कि शाही सेना के पहुँचते ही वह अहमदनगर का दुर्ग उसे समर्पित कर देगा। इससे शाहजादे का उत्साह और भी बढ़ा। २० अक्टूबर १५५४ ई० को वह अहमदाबाद से चला और भड़ौच पहुँच कर वहीं सात मास तक खानखाना के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु सेनापति अब भी न पहुँचा। इतने दीर्घकाल तक बाट देखते देखते वह थक गया था और उधर मियाँ मंझू भी शाही सहायता के लिए विकल हो रहा था। राजकुमार ने सोचा कि खानखाना अपनी सेना के साथ आता ही होगा, इसलिए जून १५९५ ई० के प्रारम्भ में उसने वहाँ से भी प्रयाण कर दिया। अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसे खानखाना के भिलसा में कुछ मास तक रुकने और फिर खानदेश की ओर प्रयाण करने का समाचार प्राप्त हुआ। मुराद क्षुब्ध हो उठा। उसने क्रोधावेश में खानखाना को एक पत्र लिखा जिसमें उसने सेनापति के विलम्ब करने पर बड़ा रोष प्रकट किया और आज्ञा दी कि वह खानदेश न जा कर शीघ्रातिशीघ्र उसकी सेवा में उपस्थित हो।

किन्तु खानखाना ने अब भी अपनी योजना में परिवर्तन नहीं किया। उसने राजकुमार के पत्रोत्तर में लिखा कि खानदेश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण दक्षिण विजय के आकांक्षी के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण है। बहुत सम्भव है कि समझाने बुझाने से वहाँ का शासक बिना प्रतिरोध ही अकबर की महाप्रभुता स्वीकार कर ले और शाही सेना को उसकी लक्ष्य प्राप्ति में योग देने को

प्रस्तुत हो जाए। अतः जब तक वह खानदेश में उक्त उद्देश्य में सफल न हो जाए, तब तक राजकुमार प्रतीक्षा करे। उसने उसे यह भी सलाह दी कि तब तक वह अपने अवकाश का उपयोग आखेट आदि विनोदों में करे और शीघ्र प्रयाण के लिए अधीर न हो।

मगर खानख़ाना की बात का शाहजादे पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह अभी अनुभव हीन अल्हड़ युवक था। दुर्भाग्य वश, उसके परामर्श दाता भी स्वार्थ और ईर्ष्या के ही पुतले थे। वे खानखाना के विरुद्ध सदैव उसका कान भरा करते थे। उन्होंने सुझाया कि यदि वह सेनापति की प्रतीक्षा न कर अकेले ही अविलम्ब अहमदनगर पर आक्रमण कर दे तो मियाँ मंझू के सहयोग से उसकी विजय निश्चित है। शाहजादा भी विजय का सेहरा अपने ही सिर बंधा देखना चाहता था। अतः उसने खानखाना की प्रार्थना ठुकरा दी और अकेले ही दक्षिण की ओर चल पड़ा।

अभी खानख़ाना राजा अली खाँ के साथ, गुजरात के मार्ग ही में था कि उसे राजकुमार के उतावले प्रयाण की सूचना मिली। इससे उसे बड़ी ठेस पहुँची। वह स्थिति को और नहीं बिगड़ने देना चाहता था। अतः उसने अपनी मंदगामिनी वाहिनी को मिर्ज़ा शाहरुख की अध्यक्षता में पीछे छोड़ा और स्वयं तीव्रगति से चलता हुआ शीघ्र ही अहमदनगर से तीस कोस दूर चंदोर नामक स्थान पर, जहाँ शाहजादा डेरा डाले पड़ा था, पहुँचा।

खानखाना को वहाँ का वातावरण बड़ा ही विषाक्त दीख पड़ा। इतने ईर्ष्या द्वेष की तो उसे कल्पना भी न थी। उसने सेवा में उपस्थित होने की प्रार्थना की किन्तु राजकुमार ने आज्ञा नहीं दी। इतना ही नहीं,

उसने अपना शिविर भी वहाँ से कुछ दूर एक अन्य स्थान पर हटा लिया। अन्त में जब बहुत अनुनय विनय करने पर उसने सेनापति से भेंट की तो राजकुमार का बर्ताव उसके प्रति बड़ा ही असंतोषजनक रहा। "ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता ही गया।" धीरे धीरे उनके सम्बन्ध कटुतर होते गए। अन्त में जब शाही सेना अहमदनगर दुर्ग पर घेरा डालने के लिए चली तो न तो उसमें भावों ही की एकता थी और न उद्देश्य ही की[१]।

अहमदनगर दुर्ग पर मुगलों का प्रथम घेरा

उधर मुगलों के सौभाग्य से, अहमदनगर में, बुरहान शाह द्वितीय के निधन के पश्चात् बड़ी उथल पुथल मच रही थी। वैसे उस राज्य की स्थापना के समय से ही वहाँ आन्तरिक कलह और पारस्परिक द्वेष चला करते थे। किन्तु १५९५ ई० में तो उनकी अति हो गई। सिंहासन का कोई ऐसा उत्तराधिकारी न था जो सर्वसम्मति से मान्य होता। सामन्तों का बोलबाला था। वे विभिन्न जातियों के थे और उनमें प्रायः प्रतिद्वन्द्व चला करता था। उनके चार दल थे और चारों ने अपने अपने व्यक्तियों को बुरहान शाह का उत्तराधिकारी घोषित किया था। अन्त में बुरहान शाह की बहन और अली आदिल शाह प्रथम की विधवा, चाँद सुलताना से अपने मायके की यह दुर्दशा न देखी गई। उसने बीजापुर से अहमदनगर आकर बहादुर नामक एक अल्प वयस्क बालक को अपने भाई का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया और स्वयं उसकी संरक्षिका बन, मुगलों से अहमदनगर दुर्ग की रक्षार्थ समुचित तैयारियाँ कीं।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० १०४९-१०५६; बदायूनी भाग २, पृ० ३९६।

इधर ख़ानख़ाना का सैन्यदल, जिसमें राजा अली ख़ाँ के छः सहस्र अश्वारोही भी थे राजकुमार मुराद के सैन्य दल से, ख़ानदेश में गालना नामक स्थान पर आ मिला और वहाँ से सम्मिलित शाही सेना ने नियमित गति से दक्षिण की ओर प्रयाण किया। अहमदनगर के समीप पहुँचते पहुँचते अकबरी सेना की संख्या कुल मिला कर तीस सहस्र हो गई थी। अन्त में १७ दिसम्बर, १५९५ ई० को वह दल नगर के लगभग एक मील दूरी पर एकत्र हुआ[१]।

मुगलों ने पहले नगर के उत्तरी सिरे पर हश्त बहिश्त नामक उद्यान में अपना डेरा डाला। ख़ानख़ाना ने सोचा कि दुर्ग पर घेरा डालने के पूर्व नगर निवासियों को अपनी ओर मिला लेना आवश्यक है। अतः वह शाहबाज़ ख़ाँ के साथ शहर में गया। उसने प्रत्येक वर्ग को आश्वासन दिया कि यदि वे मुगलों का प्रतिरोध न करेंगे तो उन्हें किसी प्रकार से भी क्षति न पहुँचने पायगी। उसी समय कुछ शाही सैनिक शहर में गश्त लगाने गए थे। वे नागरिकों की सम्पत्ति अरक्षित देख अपने लोभ का संवरण न कर सके और लूट पाट करने लगे। जब ख़ानख़ाना को इस कुकृत्य की सूचना मिली तो उसने उन्हें ऐसा न करने से मना ही नहीं किया अपितु उन्हें कठोर दंड भी दिया[२]।

दूसरे दिन १८ दिसम्बर को, गढ़ पर घेरा डालने का कार्य

---

१. फ़रिश्ता भाग २, पृ० १६६।

२. बुरहाने मासिर पृ० ६०४-६०६; अ० ना० भाग ३, पृ० १०४६; दक्षिणी इतिहासकारों के अनुसार शाहबाज़ ख़ाँ इस लूट के लिए उत्तरदायी था।

नियमित रूप से प्रारम्भ हुआ। दुर्ग रक्षकों को पहले ही से ज्ञात था कि शाही दल में ऐक्य नहीं है, अतः उनका साहस बढ़ा और उन्होंने वीरांगना चाँद बीबी के नेतृत्व में मुगलों का प्रबल प्रतिरोध किया। उस संरक्षिका रानी ने राज्य के सभी सामन्तों से अपील कि वे उस विपत्ति काल में अपने पारस्परिक द्वेषों को भूल जाएँ और निजाम-शाही वंश को विनाश से बचाने के लिए उसे हार्दिक एवं सक्रिय सहयोग दें। इसी प्रकार तीव्रगामी संदेश-वाहकों को बीजापुर तथा गोलकुंडा भेज कर उसने वहाँ के शासकों को प्रेरित किया कि वे भी उसकी सहायता करें और दक्षिण की सारी शक्तियाँ सम्मिलित रूप से उत्तरीय शत्रु का सामना करें। उसकी अपील का वांछित फल हुआ। सभी ने उसे योग-दान का वचन दिया।[१]

इधर शाही सेना दुर्ग पर अधिकार करने का निरन्तर प्रयत्न कर रही थी। घेरा डालने का काम रात दिन चलता रहा। खाइयाँ खोदते और मोर्चे बाँधते मुगल आगे बढ़ने का बार बार प्रयास करते किन्तु वीर रमणी के प्रबल प्रत्याघातों के सम्मुख वे प्रायः विफल ही रहते।

१६ दिसम्बर को दिन भर तो इसी प्रकार के घात प्रत्याघात होते रहे, किन्तु रात्रि को एक विशेष उल्लेखनीय घटना घटी। निजाम शाह के सामन्तों में एक अभंग खाँ नामक हब्शी था। वैसे तो अन्य प्रमुख सरदारों की भाँति वह भी एक शाह अली नामक व्यक्ति को अहमदनगर राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर उसकी आड़ में स्वार्थसिद्ध करने में लगा हुआ था, किन्तु मुगलों के आक्रमण करने पर जब चाँद बीबी ने निजाम शाही वंश के नाम पर उससे सहायता की

१. फरिश्ता भाग २, पृ० १६० ।

अपील की तो उसका हृदय द्रवीभूत हो उठा। सात सहस्र सैनिकों को ले वह अविलम्ब अपनी जागीर से अहमदनगर की ओर चल पड़ा। और गढ़ के निकट पहुँच उसने गुप्तचरों को यह पता लगाने भेजा कि किस ओर से वह दुर्ग में सरलता से प्रवेश कर सकता है। दूतों ने समाचार दिया कि किले का पूर्वी भाग बिलकुल अरक्षित है। अतः अभंग खाँ ने रात्रि के अन्धकार में उसी ओर से किले में घुसने का निश्चय किया। किन्तु इधर प्रातःकाल ही मोर्चों का निरीक्षण करते समय जब शाहजादे ने पूर्वी भाग खाली देखा तो उसने ख़ानख़ाना को तुरन्त तीन सहस्र सैनिकों के साथ उस भाग में मोर्चा स्थापित करने के लिए भेज दिया। अभंग खाँ जब किले के एकदम समीप पहुँचा तो उसने उस रिक्त भाग को भी मुग़लों से भरा पाया। अब वह क्या करता। पीछे लौट जाना उचित न समझ कर उसने ख़ानख़ाना के मोर्चे पर तुरन्त ही आकस्मिक प्रहार कर दिया। किन्तु ख़ानख़ाना भी सतर्क था। उसने हब्शी सरदार का डट कर सामना किया। उसके वकील दौलत खाँ लोदी ने अपने नवयुवक पुत्र भावी ख़ान जहाँ लोदी के साथ उस रात बड़ा पराक्रम दिखाया। अन्त में अपने अधिकांश सैनिकों की बलि देकर अभंग खाँ किसी प्रकार कुछ अनुगामियों के साथ दुर्ग में प्रवेश कर गया। वृद्ध शाहअली अपने समर्थक का साथ न दे सका। वह स्वयं तो किसी प्रकार जान बचा कर भागा, मगर उसके सात सौ सैनिक दौलत खाँ के हाथों मारे गए[१]।

१ अ० ना० भाग ३, पृ० १०४७; म० १० भाग २, पृ० ४७४-४८०; बुरहाने मासिर पृ० ६०६-६०८।

किन्तु पारस्परिक फूट के कारण मुगल इस विजय से यथोचित लाभ न उठा सके। यदि वे एका कर दृढ़ता से उस समय दुर्ग के पूर्वी भाग पर प्रहार कर देते तो सम्भवतः वे भी शत्रु के साथ किले में प्रवेश कर गए होते। किन्तु विजय का श्रेय ख़ानख़ाना को मिले, यह वह ईर्ष्यालु राजकुमार कैसे सहन कर सकता था। उसने ख़ानख़ाना के साथ सहयोग नहीं किया और इस प्रकार मुगलों ने गढ़ पर अधिकार करने का एक स्वर्ण अवसर खो दिया।

उस समय शाही दल का सम्मिलित रूप से कार्य करना प्रायः असम्भव ही प्रतीत हो रहा था। इसलिए मुराद ने प्रस्ताव किया कि निज़ामशाही राज्य पर अधिकार करने का काम तीन स्वतंत्र वर्गों में वितरित कर दिया जाए। प्रत्येक को निश्चित दायित्व सौंप दिया जाए और एक दूसरे के क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। एक दुर्ग पर घेरा डाले, दूसरा राज्य के बाह्य क्षेत्रों को जीते तथा तीसरा यातायात की देखरेख करे। किन्तु अभिमानी राजकुमार इस पर भी सहमत न हुआ। वह तो सर्वोपरि कमान अपने ही हाथों में रखना चाहता था। उसकी एकमात्र आकांक्षा यही थी कि दक्षिण विजय का सम्पूर्ण श्रेय केवल उसी को प्राप्त हो। अतः वे प्रस्ताव भी रद्द हो गए[१]।

इस बीच घेरा डालने का कार्य किसी प्रकार चलता रहा। आघातों प्रत्याघातों का क्रम निरन्तर बना रहा। किन्तु अब शाही सेना की स्थिति शनैः शनैः विषम होती जा रही थी। दक्षिणियों ने

---

१. अ० ना० भाग ३, पृ० १०४७; फरिश्ता भाग २ पृष्ठ २५०; बुरहाने मासिर पृ० ६११।

यातायात बन्द कर दिए। बनजारे लोग मार्ग ही में लुट जाते। मुगलों के पास खाद्य सामग्री पहुँचनी कठिन हो गई।

२९ दिसम्बर को, जब मुगल जी जान से गढ़ पर अधिकार करने के प्रयास में व्यस्त थे तभी उनको सूचना मिली कि अब निज़ाम शाही राज्य का एक अन्य प्रमुख सामंत, इखलास खाँ, एक विशाल सेना के साथ दुर्ग रक्षकों को सहायतार्थ आ रहा है। खानखाना ने सोचा कि यदि इखलास खाँ अपने मन्तव्य में सफल हो गया तो शाही सेना की स्थिति और भी विषम हो जाएगी। अतः उसने अविलम्ब एक टुकड़ी अपने विश्वस्त वकील दौलत खाँ की अध्यक्षता में शत्रु को मार्ग ही में रोकने के लिए भेजा। गोदावरी के तट पर पैथन नामक स्थान पर दोनों पक्षों की मुठभेड़ हुई। बहुत अधिक मार काट एवं रक्तपात के उपरांत, इखलास खाँ को पीछे हटने पर बाध्य होना पड़ा। वह तो जान बचा कर भागा किन्तु उसके बहुत से सैनिक खेत रहे[१]।

इस प्रकार दो मास बीत गए किन्तु अकबरी सेना अब भी दुर्ग पर अधिकार न कर सकी। युद्ध का अन्त कहीं दिखाई ही नहीं देता था। खाद्यसामग्री की कमी के कारण घेरा डालने वालों की दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी। इतना ही नहीं, उधर दक्षिण की सारी शक्तियाँ सामूहिक रूप से उनका विरोध करने के लिए प्रस्तुत थीं। बीजापुर के आदिल शाह, गोलकुंडा के कुतुबशाह तथा निजाम शाही राज्यों के अन्य सामन्तों की सम्मिलित वाहिनी बीजापुर की सीमा पर

---

१. अ० ना० भाग ३, पृ० १०४७; फरिश्ता भाग २ पृ० १६०; बुरहाने मासिर पृ० ६११

हदुर्ग में एकत्र हो कर मुगलों पर एक साथ आक्रमण करने की
नना बना रही थी। चाँद सुलताना के अनुपम व्यक्तित्व ने
क्षिणियों पर जादू-सा प्रभाव डाला था। वे इस राष्ट्रीय संकट
ल में अपने मतभेदों को भूल गए थे। उनके सामने चाँद बीबी
ा अकबर का नहीं, दक्षिण उत्तर का प्रश्न था। अब उस उद्दंड
नकुमार की आँखें खुलीं। उसने अपने सेना नायकों की एक गोष्ठी की
र उनसे परामर्श किया कि ऐसी आपत्ति में क्या करना समयोचित होगा।
नखाना ने इस बात पर जोर दिया कि शाहीदल को अविलम्ब ही
पनी सम्पूर्ण शक्ति से दुर्ग पर अन्तिम रूप में प्रहार करना चाहिए
न्यथा जब दक्षिणी मित्रों की सम्मिलित वाहिनी गढ़ रक्षकों की
हायतार्थ आ जाएगी तब मुगलों का किले पर अधिकार करना
हा ही कठिन हो जाएगा। कुछ अन्य सेनानायकों ने भी
नखाना का समर्थन किया और राजकुमार सहमत हो गया[१]।

अतः मोर्चे बढ़ाता हुआ शाही दल दुर्ग प्राचीर की ओर
प्रसर हुआ और निकट पहुँच कर उसने किसी प्रकार तीन सुरंगें
र्जों के नीचे खोदीं। ये सब सुरंगें गढ़ के एक ही ओर थीं। बारूद
र कर उन्हें पत्थरों और गारों से बन्द कर दिया गया। प्रत्येक में
वल थोड़ा सा भाग खुला छोड़ दिया गया था जिससे बारूदों में
ाग लगाई जा सके। यह समस्त कार्य २० फरवरी, १५९६ ई० तक
माप्त हो गया। दूसरे दिन प्रातः काल ही उन्हें उड़ा देने का
नश्चय हुआ। किन्तु अभाग्यवश उनकी यह योजना सफल न

---

१ फरिश्ता भाग २, पृ० १६०; बुरहाने मासिर पृ० ६१३-६१४।

हो सकी। शाही सेना में एक ख्वाजा मुहम्मद खाँ नामक ईरानी था। वह दुर्ग रक्षकों के साहस और दृढ़ता से बहुत ही प्रभावित हुआ था। उससे उन वीरों का विनाश होते न देखा गया और चुपके से दीवार के पास जा उसने दुर्ग रक्षकों से यह सब रहस्य बतला दिया। बस फिर क्या था, रातों रात दक्षिणियों ने उस ललनारत्न चाँद सुलताना के व्यक्तिगत निरीक्षण में, दो सुरंगों को खोज कर सारा बारूद निकाल लिया और उनमें पानी भर दिया। अब तक प्रातः काल हो चुका था किन्तु वे तीसरी सुरंग की खोज करते ही रहे[१]।

२१ फरवरी को, बड़े तड़के ही राजकुमार सुरंगों की ओर बढ़ा और वहाँ पहुँचते ही उसने तुरन्त उन्हे उड़ाने की आज्ञा दी। उसने खानाखाना को अपने मनोभावों का तनिक भी पता न लगने दिया था। संयोग वश, तीसरी सुरंग दीर्घतम होने के कारण सर्वप्रथम उड़ाई गई। दुर्गरक्षकों ने उसे अभी ही रिक्त करना प्रारम्भ किया था। बारूद के फटते ही उनमें से अधिकांश वहीं भस्म हो गए। लगभग पचास गज दीवार गिर पड़ी और मुगलों के लिए दुर्ग प्रवेश का एक चौड़ा मार्ग खुल गया। किन्तु वे इस अवसर से लाभ न उठा सके। वे अन्य दोनों सुरंगों के भी उड़ने की प्रतीक्षा करते रहे। उनको यह पीछे ही ज्ञात था कि उन्हें रात भर में ही दुर्ग रक्षकों ने बारूद से खाली कर जलमय कर दिया है। अपराह्न काल में जब मुगलों को वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने जी जान से दुर्ग पर प्रहार करने का प्रयास किया। किन्तु अवसर अब हाथ से निकल चुका था।

---

१ फरिश्ता भाग २, पृ० १६१।

की दीवार टूटते ही सारे दुर्ग रक्षक उधर आ धमके थे। की बात में उन्होंने सामने की खाई में बारूद तथा अन्य नेय सामग्रियाँ भर दी थीं और खुले हुए भाग में बड़ी बड़ी बैठा दी थीं। मुगलों के विलम्ब करने से उन्हें अपनी ा के प्रबन्ध का और भी अवसर मिल गया था। दिन के ाग दो बजे से सूर्यास्त पर्यन्त शाही सेना उस भग्न भाग पर के बाद एक प्रहार करती रही किन्तु प्रत्येक बार उसे मुँह की ही ी पड़ती थी। खाई के विस्फोटों तथा तोपों की निरन्तर मार के मुगल एक पग भी आगे न बढ़ सके। संध्या होते होते सारी खाई ों से पट गई। अन्त में रात्रि हो जाने के कारण अकबरी सेना अपने र में लौट आई। दूसरे दिन प्रातः काल जब वह अंतिम प्रहार करने ढ़ निश्चय कर किले की ओर फिर बढ़ी तो उन्होंने देखा कि हुई दीवार ज्योंकी त्यं फिर खड़ी है। वीरांगना चाँद सुलताना ने ी भर में ईंटों, गारों यहाँ तक कि शवों से भी उस टूटे हुए र को पूर्ववत् चुनवा लिया था[१]। मुगल हाथ मलते रह गए।

शाही सेना खाद्य सामग्री की कमी के कारण पहले ही से ाई अनुभव कर रही थी। अब जब उन्होंने सुना कि दक्षिण की सम्मिलित वाहिनी, बीर नामक स्थान तक पहुँच गई है तो ा साहस और भी कम हो चला। इधर दुर्गरक्षक भी ालीन संघर्ष से ऊब चले थे। उनमें भी रसद की

---

[१] रहीमे मासिर पृ० ६१६-६२१; फरिश्ता भाग २, पृ० १६१; अ० ना० भाग पृ० १०४७-१०४८।

कमी होने लगी थी[१]। क्लान्त और थकित, दोनों ही पक्ष शान्ति के लिए इच्छुक थे। जब संधि के प्रस्ताव होने लगे तो दोनों ही ने उसका स्वागत किया। अकबर के महाप्रभुत्व में, बहादुर, निजामशाह मना लिया गया और बरार मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। २३ फरवरी को मुगलों ने दुर्ग पर से घेरा उठा लिया और इस प्रकार मुगलों की दक्षिण विजय का प्रथम प्रयत्न समाप्त हुआ।

बरार पर अधिकार तथा शाहपुर की स्थापना

खानखाना ने आगामी ग्यारह मास, बरार पर अधिकार जमाने तथा वहाँ शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में व्यतीत किए। अहमदनगर राज्य के हब्शी सामन्त चाँद सुलताना द्वारा की गई संधि मानने को प्रस्तुत न थे। वे आए दिन चारों ओर उत्पात मचाया करते थे और मुगलों को बरार से खदेड़ने का निरन्तर प्रयास कर रहे थे। अन्त में १७ नवम्बर, १५९६ ई० को उन्होंने सामूहिक रूप से पातरी से सोलह मील दूर बाणगंगा के तट पर शाही दल का सामना किया। बड़ी मार काट और रक्तपात के पश्चात् वे पराजित हुए और बरार पर पुनः अधिकार करने की उनकी सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। खानखाना ने इस दृष्टि से कि कहीं वे फिर आकस्मिक आक्रमण न कर दें, दो सशक्त सैन्यदल एक अहमदनगर की सीमा पर मेहकर नामक उपनगर में तथा दूसरा बरार की राजधानी

१ दक्षिणी इतिहासकारों के लेखानुसार, संधि का प्रस्ताव पहले शाहजाद मुराद ने भेजा किन्तु अबुलफज्ल के कथनानुसार पहले चाँद बीबी ही ने शान्ति की बात प्रारम्भ की।

लीचपुर में नियुक्त कर दिया। अब खानखाना ने आवश्यकता प्रतीत की कि रार पर प्रभावपूर्ण शासन स्थापित करने के लिए उसे अपना शिविर कहीं से स्थान पर डालना चाहिए जहाँ से वह उस क्षेत्र के सभी ागों पर समान रूप से ध्यान दे सके। इस उद्देश्य से वह शाहज़ादे को ाथ ले उस प्रान्त के मध्यभाग में गया और विधिवत् निरीक्षण के श्चात् उसने बालापुर के दक्षिण में आठ मील की दूरी पर एक पयुक्त स्थान चुना। वहीं पर शाहपुर नामक एक नए नगर की थापना हुई और खानखाना ने उसे अपना प्रधान केन्द्र बनाया।[1]

किन्तु राजकुमार मुराद का बर्ताव खानाखाना तथा उसके निष्ट मित्र राजा अली खाँ के प्रति अब भी संतोषजनक न था। सकी उद्दंडता से खानदेश का पूर्व शासक बहुत ही क्षुभित था। ानख़ाना को इससे बड़ी ठेस पहुँचती थी। वह राजा अली खाँ का ास्तविक मूल्य जानता था और दक्षिण विजय में उसका सहयोग त्यन्त आवश्यक समझता था। चतुर सेनापति ने सोचा कि यदि ाहज़ादे और राजा अली खाँ में रक्त-सम्बन्ध स्थापित हो जाए तो यह नोमालिन्य दूर हो जाएगा। अतः शाहपुर में ही उसने बड़ी सजधज और धूमधाम के साथ राजकुमार का विवाह राजा अली ख़ाँ की ुत्री से सम्पन्न कराया[2]। ख़ानख़ाना को प्रत्याशित फल मिला और दक्षिण-विजय-पथ का एक बहुत बड़ा अवरोध दूर हो गया।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० २०५२, १०६५-१०६६; म० र० भाग २ पृ ४८१।

२ म० र० भाग २ पृ० ४८१; ख़फ़ी ख़ाँ भाग १ पृ० २०८।

अस्थी का युद्ध

मुगलों के आगमन से दक्षिण देश के सभी शासक सशंकित हो उठे थे। उन्हें आक्रमणकारियों की सफलता में अपना विनाश स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था। अतः जब स्वदेश उपासिका चाँद बीबी ने उनसे दाक्षिणात्य की रक्षार्थ उत्तरीय शत्रु के विरुद्ध सम्मिलित मोर्चा स्थापित करने की अपील की तो वे तुरन्त उद्यत हो गए। शीघ्र ही साठ हजार आदिलशाही, कुतुबशाही, निजामशाही तथा बीदरशाही, सैनिकों की सम्मिलित वाहिनी मुगलों का दक्षिण से सदैव के लिए निष्कासन कर देने के उद्देश्य से बरार की ओर चल पड़ी।

दक्षिणियों के इस प्रयाण की सूचना ख़ानख़ाना को जालना में मिली। उसने अविलम्ब विभिन्न चौकियों को आदेश भेजे कि वे अपनी अपनी टुकड़ियों को छावनी में भेजें और स्वयं राजकुमार मुराद से परामर्श के हेतु मारामार शाहपुर को चला। उसका अभिन्न मित्र राजा अली ख़ाँ पहले ही से शाहज़ादे के पास था। विचार विमर्श के पश्चात् निश्चय हुआ कि ख़ानख़ाना मिर्ज़ा शाहरुख तथा कतिपय अन्य सामन्तों के संग दक्षिणियों का सामना करने के लिए आगे चले और राजकुमार शीघ्र ही उनके पीछे वहाँ आ जाएगा। अतएव ख़ानख़ाना मुगलों, राजपूतों और ख़ानदेश के सैनिकों की सम्मिलित वाहिनी के साथ जालना होता हुआ दक्षिण की ओर चला और गोदावरी के तट पर, पातरी से बारह कोस दूर, अस्थी नामक स्थान पर उसने अपना डेरा डाला।

उधर दक्षिणी सेनाएँ, आदिल शाही योद्धा, सुहेल ख़ाँ के

सर्वोपरि कमान में, सोनपत नामक उपनगर में पहले ही पहुँच चुकी थीं। जब उन्हें वहाँ मुगलों के अग्रसर होने की सूचना प्राप्त हुई तो वे वहीं रुक, व्यूह बना, शत्रु-आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं। परम्परागत प्रथा के अनुकूल निजाम शाही सैन्य दल मध्यभाग में था और आदिल शाही तथा कुतुबशाही सैन्यदल क्रमशः दक्षिण और वाम पार्श्वों में। बीदर शाही सेना, कुतुबशाही सेना के साथ वाम पार्श्व में ही थी।

मुगलों ने अपनी व्यूह रचना पहले ही कर ली थी। मध्यभाग की अध्यक्षता ख़ानख़ाना स्वयं कर रहा था और दक्षिण तथा वाम पार्श्वों के नेता थे, क्रमशः शेर ख्वाजा और राजा अली ख़ाँ। सदा की भाँति इस बार भी राजपूत ही अग्रभाग में थे। उनके नेता थे, राजा रामचन्द्र और सूरजसिंह।

पूरे पन्द्रह दिनों तक दोनों पक्ष गोदावरी के आर पार एक दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा करते रहे किन्तु कुछ छिट पुट हमलों के अतिरिक्त कोई डटकर संग्राम न हुआ। अंत में जब ख़ानख़ाना को दक्षिणियों की वास्तविक शक्ति का पूर्ण ज्ञान हो गया तो उसने २६ जनवरी, १५९७ ई० को प्रातः काल नौ बजे अपनी वाहिनी के साथ नदी पार की। सौभाग्य से उस समय सरिता में घुटनों तक ही जल था अतः उसे कोई अड़चन न पड़ी। उस पार पहुँचते ही विरोधी पक्षों का सामना हुआ। दूरस्थ तोपों की गोलाबारी से पहले रण प्रारम्भ हुआ, किन्तु जैसे ही जैसे दिन चढ़ता गया, वैसे ही वैसे विरोधी पक्ष एक दूसरे के निकट आते गए। अपराह्नकाल में तीन बजे तक चारों ओर गुथ कर संघर्ष होने लगा। दक्षिणी, अपनी

अगणित संख्या तथा अपेक्षाकृत उत्कृष्टतर तोपखाने के कारण युद्ध स्थल में प्रबल हो रहे थे, किन्तु इधर अग्रभाग में जूझते हुए पराक्रमी राजपूत भी अपने स्थान से टस से मस नहीं हो रहे थे। जब कि शाही दल के अनेक सैनिक रिपु के प्रबल आघातों को सहन करने में असमर्थ हो साहसहीन हो रहे थे, तब भी राजा जगन्नाथ, राय दुर्गा तथा राजसिंह आदि राजपूत योद्धा अपने स्थान पर दृढ़ता से डटे हुए थे।

पूरे दिन भर धुआँ-धार युद्ध होता रहा। लाशों पर लाशें गिर रहीं थी किन्तु कोई पक्ष हटने का नाम न लेता था। अन्त में सूर्यास्त के समय अकबरी सेना ने खिसिया कर वैरी पर बड़े वेग से प्रहार किया। दक्षिणी भी विजय पर तुले हुए थे, वे भी प्रत्याघात करने से न चूके। कुछ देर तक यह रक्तमय संघर्ष चलता रहा। अंततः जब निजामशाही और कुतुबशाही सैनिकों को मुगलों की प्रबल मार असह्य हो गई तो वे अपनी रक्षा पंक्ति पर लौट आए। किन्तु आदिलशाही सेना, सुहेल खाँ के उत्साहवर्द्धक नेतृत्व में, अपने स्थान पर अब भी डटी रही। सुहेल खाँ ने जब देखा कि उसका वाम पार्श्व तथा मध्यभाग भागता जा रहा है तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपने अश्वारोहियों की सहायता से आगे बढ़, उसने और अधिक वेग से विरोधी पक्ष पर प्रहार करने आरम्भ कर दिए। इससे शाही दल में बड़ा आतंक फैला और उसमें बहुत से कायरों ने, रणक्षेत्र से भाग, तीस मील दूर, शाहपुर ही में जा कर साँस ली।

अपने विरोधी पार्श्व को तितर बितर कर, आदिलशाही सेना अब मुगलों के मध्य भाग की ओर बढ़ी। खानखाना ने बीजापुरी तोपों की

धुआँधार गोलाबारी को विफल कर देने के उद्देश्य से अपने सैन्यभाग को तुरन्त एक ओर हटा लिया और राजा अली खाँ को भी ऐसा ही करने को कहा। वह सच्चा मित्र, शत्रु की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण दाहिनी ओर मुड़ा और भ्रम से उसी मध्यभाग में रुका जहाँ से ख़ानख़ाना अभी हटा ही था। किन्तु यह भूल उसके लिए घातक प्रमाणित हुई। अब आदिलशाही तोपें उसी पर भयंकर अग्निवर्षा करने लगीं। इधर पार्श्वों से और पृष्ठभाग से बीजापुरी अश्वारोहियों ने भी उस पर धावा बोल दिया। वह बड़ी विषम स्थिति में पड़ गया। किन्तु इतने पर भी वह वीर हतोत्साह न हुआ और अपने पैंतीस चुने हुए योद्धाओं तथा पाँच सौ स्वामिभक्त सैनिकों के साथ अंतिम साँस तक अपने मित्र के पक्ष के लिए लड़ता रहा।

मुगलों को राजा अली खाँ की इस वीरोचित बलि का तनिक भी ज्ञान न था। जब उसका कुछ भी पता न चला तो उन्होंने अनुमान लगाया कि या तो वह उन्हें धोखा देकर दक्षिणियों की ओर जा मिला है या कायरतावश रणक्षेत्र से भाग गया है। इससे वे बड़े क्रुद्ध हुए और उसके शिविर पर धावा बोल कर सारी वस्तुएँ लूट ले गए। किन्तु जब दूसरे दिन प्रातः काल उसका शव उन्हें मृतकों के ढेरों के नीचे मिला तो वे अपने इस कुकृत्य पर बड़े लज्जित हुए। पश्चाताप के सिवा अब वे कर ही क्या सकते थे।

आदिलशाही सेना ने मुगलों के दक्षिण तथा वामपार्श्वों को पहले ही तितर-बितर कर दिया था। ख़ानख़ाना के एक ओर हट जाने तथा राजा अली खाँ की पराजय के पश्चात् उन्होंने उनके

सेनापति के हृदय वर्धक शब्दों से उत्तेजित हो, दौलत खाँ भूखे सिंह की भाँति शत्रु पर टूट पड़ा। यद्यपि शाही सेना में उस समय कुल मिला कर सात सहस्र ही सैनिक थे, किन्तु तो भी वे हतोत्साह न हुए। दोनों ओर की तोपों की भीषण गोलाबारी के साथ कुछ घण्टों तक यह दुर्धर्ष संग्राम चलता रहा। सुहेल खाँ बड़ी वीरता से लड़ा। उसे कई घाव लगे। अन्त में अविरल रक्त-स्राव तथा युद्ध जनित थकान के कारण वह संज्ञाहीन हो घोड़े पर से गिर पड़ा। सेनापति के गिरते ही दक्षिणियों का साहस जाता रहा। वे उसे उठा रणक्षेत्र से भगे। मुगल सैनिक भी लड़ते लड़ते थक कर चूर हो रहे थे। अतः शत्रु का बिना पीछा किए ही वे अपने डेरों में लौट आए।

इस युद्ध में दोनों ही पक्षों की भारी क्षति हुई। बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर तथा अहमदनगर चारों सेनाओं के बहुत से ख्यातिप्राप्त योद्धा खेत रहे। उनके चालीस चुने हुए गजराज, एक तोपखाना तथा अन्य बहुत से अग्नि शस्त्र विजेताओं के हाथ लगे। अकबरी सेना के जो वीर इस रण में काम आए, उनमें राजा रामचन्द्र, द्वारकादास तथा खानदेश शासक, राजा अली खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

खानखाना को गोदावरी तट पर जो अनुपम विजय प्राप्त हुई, इसका उसके सैनिक जीवन के कृत्यों में विशिष्ट स्थान है। शत्रु से भिड़ने के पूर्व उसकी शक्ति एवं सामरिक योग्यता का ठीक मूल्यांकन कर लेना, भीषण अग्नि प्रहारों के मध्य अपने सैन्य भागों को सावधानी से उचित स्थानों पर खिसकाते रहना, तथा भारी विषमताओं के होते हुए भी साहस के साथ रणक्षेत्र में डटे रहना, ये सभी बातें स्पष्ट प्रमाणित करती हैं कि वह अपने युग का एक प्रवीण सेना

नायक था। उसकी सेना में विभिन्न वर्गों के लोग थे। और वह कुशल सेनापति सभी की निष्ठा एवं प्रेम का पात्र था। राजा अली खाँ तथा कतिपय राजपूतों के इस समरांगण में निःस्वार्थ बलिदान उक्त कथन के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। यदि आन्तरिक कलह और पारस्परिक वैमनस्य मार्ग में अवरोधक न होते और यदि इस विजय के पश्चात् शाही दल ने एक मत से कार्य किया होता तो परिणामतः दक्षिण को ऐतिहासिक गाथा आज कुछ दूसरी ही होती।

कहते हैं कि जब ख़ानखाना रणक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने को प्रस्तुत हुआ तो उसने सहगामियों से कहा कि वे शकुन विचारें। संयोग से, जैसे ही खानखाना ने रेकाब में पैर रखा, वैसे ही एक बिलोची शिशु ने चिल्ला कर कहा, "नवाब सलामत, फतेह मुबारक"। "भगवान नवाब को सुरक्षित रखे और उसे विजयी बनावे।" भोले बालक के मुख से निस्सृत इन शब्दों को सेनापति ने दैवी वाणी समझा और उसकी माँ को आदेश दिया कि विजयोपरान्त वह अपने पुत्र को उसके पास ले आए। जब खानखाना युद्ध क्षेत्र से लौटा तो आदेशानुकूल वह बिलोची स्त्री सपुत्र उसकी सेवा में उपस्थित हुई। ख़ानख़ाना ने उसका नाम बदल कर फतेहमुबारक रखा और वयस्क होने पर उसे अपने आधीन एक उच्चपद पर नियुक्त किया। उसकी माँ को सेनापति ने पर्याप्त धन दिया जिससे वह बालक का भरण पोषण कर सके[१]।

---

१ म० र० भाग २, पृ० ४८५ उक्त युद्ध के विस्तृत विवरण के लिए; देखिए अ० ना० भाग ३ पृ० १०७०–१०७२; म० र० भाग २, पृ० ४८१-४९४ फरिश्ता भाग २, पृ० १६३; खफी खाँ भाग १, पृ० २०६-२१२; मआसिर उल उमरा भाग १, पृ० ७००।

मुराद से उग्रतर मतभेद, ख़ानख़ाना की वापसी

अनुग्रहीत ख़ानख़ाना ने अपनी इस सफलता के लिए विजयदाता अखिलेश्वर को कोटिशः धन्यवाद दिए। सदा की भाँति इस बार भी उदार सेनापति ने कतिपय अत्यधिक आवश्यकता की वस्तुओं के अतिरिक्त अपनी सारी शिविर सामग्री, जिनका मूल्य लगभग पचहत्तर लाख रुपया था, सैनिकों में वितरित कर दी। उसके पश्चात् उसने इस युद्ध का विस्तृत विवरण देने के लिए अपने विशेष संदेश वाहकों को बादशाह के पास लाहौर तथा शाहजादे के पास शाहपुर भेजा। जिन सैनिकों ने इस रण में प्रमुख भाग लिया था, उन्हें उसने बहुत से पारितोषिक तथा उपहार दे कर उत्साहित किया। अब उसने आगे की सोची। बरार प्रान्त में अब भी कितने ही ऐसे दुर्ग थे जिन पर मुगलों का अधिकार न हो सका था। वे गढ़पति चाँद बीबी द्वारा की गई संधि की शर्तों को मानने को प्रस्तुत न थे। अतः ख़ानख़ाना ने अपनी कुछ टुकड़ियों को उन अविजित दुर्गों पर अधिकार करने के लिए भेजा और स्वयं शेष सैनिकों के साथ जालना की छावनी में लौट आया। अब उसका आगामी कार्यक्रम राजकुमार की आज्ञा पर निर्भर था।

ख़ानख़ाना ने अपने पत्र में राजकुमार को लिखा था कि बीजापुर और गोलकुंडा की सेनाएँ अस्थी के युद्ध में बुरी तरह पराजित हो चुकी हैं। उनमें इतनी सामर्थ्य अवशेष नहीं रह गई है कि वे अकबरी सेना का सशक्त प्रतिरोध कर सकें। यदि उन पर अविलम्ब आक्रमण कर दिया जाए तो उनका समर्पण निश्चित है। इस तथ्य को ध्यान में रख ख़ानख़ाना ने प्रस्ताव किया था कि यदि राजकुमार उसे कुमक भेजने पर प्रस्तुत हो

तो वह अब उक्त दोनों राज्यों की विजय का कार्य अपने हाथों में ले। शाहज़ादे ने पहले तो इस प्रस्ताव का स्वागत किया और वह अपने संरक्षक मुहम्मद सादिक को सहायक सेना के साथ भेजने को सहमत हो गया। किन्तु बाद में चाटुकार परामर्शदाताओं के बहकाने में आकर उसने विचार बदल दिया। यद्यपि बैरम ख़ाँ ने अपने जीवन काल में मुहम्मद सादिक पर बड़ी कृपायें की थीं तो भी वह अकृतज्ञ अपने उपकारी के पुत्र के प्रति द्वेष ही रखता था। वह सर्व प्रकार ख़ानख़ाना के विरुद्ध शाहज़ादे का कान भरा करता। भला ऐसा ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ सहयोग करने पर कैसे उद्यत होता। अतः सेनापति का वह प्रस्ताव रद्द हो गया[१]।

राजकुमार और ख़ानख़ाना में कटुता इतनी अधिक बढ़ गई कि सेनापति के प्रत्येक कार्य को वह सन्देहात्मक दृष्टि से देखता। वह समझता कि ख़ानख़ाना उसको अयशी बनाने पर तुला हुआ है। सादिक के हाथ की कठपुतली तो वह था ही। उसकी प्रेरणा से उसने सेनापति को लिखा कि वह उस विजय के पश्चात् तुरन्त अहमद नगर के विरुद्ध प्रयाण करे। ख़ानख़ाना ने शाहज़ादे के पत्रोत्तर में लिखा कि अभी बरार के ही क्षेत्र में कितने ऐसे दुर्ग हैं जिन पर मुग़लों का अधिकार नहीं स्थापित हुआ है। सर्वप्रथम उन्हीं के पराभव पर सारी उपलब्ध शाही शक्ति केन्द्रित होनी चाहिए। जब तक वे अधीन नहीं हो जाते, तब तक बिना सोचे समझे, निज़ाम शाही राजधानी पर आक्रमण करना अदूरदर्शिता ही होगी।

१ म० उ० भाग २, पृ० ४४१; फ़रिश्ता भाग २, पृ० १९२।

किन्तु ख़ानख़ाना की सारी दलीलें बेकार गईं। वह जितना ही अपने पक्ष का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करता शाहज़ादा उतना ही और चिढ़ता जाता। दिन प्रतिदिन दोनों में मतभेद उभरकर होता जा रहा था। राजकुमार की उद्दण्डता से वह बड़ा क्षुब्ध हो रहा था। उसकी अवरोधकारी नीति के कारण उसकी कोई योजना कार्यान्वित न हो पाती। अन्त में अपने को विवश पा वह जालना से अपनी जागीर में चला गया। ख़ानख़ाना ने उस समय शेख अबुल फ़ज़ल को जो पत्र लिखे थे, उनसे उसकी मनोदशा का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। उनके प्रत्येक शब्द उसकी विवशता, व्यथा तथा निराशा का सजीव चित्रण करते हैं। जब स्थिति असह्य हो गई तो उसने भावावेश में शेख को यहाँ तक लिखा कि अब वह संसार से विरक्त हो, संन्यासी बन जाना चाहता है। इधर राजकुमार भी उसे अपने से दूर रखना चाहता था। जब सेनापति छावनी से अपनी जागीर में चला गया तो शाहज़ादे को अवसर मिला। उसने अपने पिता को लिखा कि ख़ानख़ाना अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन रहता है और उसकी अवज्ञा किया करता है। उसने बादशाह से प्रार्थना की कि वह ख़ानख़ाना को अविलम्ब वापस बुलाले और उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्ति करे जिससे दक्षिण विजय का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो सके।

दूरदर्शी बादशाह ने, अपने स्वभावानुकूल, उतावली में कोई निश्चय न कर, पहले राजकुमार और ख़ानख़ाना के एक दूसरे के प्रति लगाए गए आरोपों की सम्यक् जाँच की। फिर उसने राजा शालिवाहन को शाहपुर भेजा कि वह जाकर राजकुमार को दरबार में वापस ले आवे।

इसी प्रकार रूपखवास को आज्ञा हुई कि वह ख़ानखाना की जागीर में जाकर उसे चेतावनी देकर तुरन्त शाहपुर भेजे जहाँ वह शाहजादे की अनुपस्थिति में उसका कार्य सँभाले।

किन्तु शीघ्र ही राजा शालिवाहन तथा रूपखवास दोनों ही विफल उद्देश्य दरबार में वापस लौट आए। राजकुमार अपनी दुर्बलताओं के प्रति जागरूक था, इसलिए पिता के पास आने में हिचकता था। उसके स्वार्थी सहयोगी भी उसके वहीं बने रहने में अपना हित सुरक्षित समझते थे। उन लोगों ने बादशाह के पास निवेदन पत्र भेज कर प्रार्थना की कि दक्षिण देश की समस्याओं को सुलझाने के लिए राजकुमार की उपस्थिति वहाँ नितान्त आवश्यक है, अतः उसे उस समय दरबार में न बुलाया जाए। उन लोगों ने बादशाह को यह भी आश्वासन दिया कि भविष्य में उसके सभी आदेशों का पूर्णतः पालन होगा और कोई कटुता उत्पन्न होने का अवसर ही न दिया जाएगा। खानखाना ने भी निवेदन किया था कि यदि उसकी सेवाओं की आवश्यकता हुई तो वह शाहपुर अवश्य जायगा किन्तु तभी, जब राजकुमार दरबार में वापस बुला लिया जाय[१]।

अकबर उक्त निवेदनों से संतुष्ट न हुआ। विशेषतः वह खानखाना से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसने अब शाहज़ादे को न बुला कर खानखाना ही को अविलम्ब दरबार में उपस्थित होने को लिखा। स्वामी का आदेश पाते ही खानखाना अपनी जागीर से चल कर लाहौर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने मुराद से अपने मतभेद की सारी कहानी

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११११।

अकबर को सुनाई और स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की। अकबर उसे अपने पुत्र के ही समान मानता था। उसने खानखाना को क्षमा कर दिया[१]।

खानखाना की जागीर, मालवा में, जोगीगढ़ नामक एक सुदृढ़ दुर्ग था जो उस समय कबीर खाँ नामक अफगान के अधिकार में था। कबीर खाँ बड़ा निर्दयी और लोभी शासक था। वह आए दिन अपनी प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार किया करता था। प्रायः वह वहाँ के समृद्धिशाली वर्गों की सारी सम्पत्ति लूट लिया करता। उन कष्ट पीड़ितों ने अकबर से प्रार्थना की वह उस हृदयहीन शासक से उनकी रक्षा करे। उस पर बादशाह ने खानखाना को लिखा कि आश्चर्य है कि उसकी जागीर ही में ऐसे अत्याचार हो रहे हैं और आदेश दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र उनका अन्त करे। अतः खानखाना ने उस दुर्ग पर घेरा डाला। कबीर खाँ ने कुछ प्रतिरोध किया किन्तु खानखाना के सम्मुख उसकी एक न चली। अन्त में विवश हो उसने समर्पण किया। दौलत खाँ की मध्यस्थता से, कबीर खाँ को सारी लूट की सामग्री समर्पित कर देने के पश्चात्, क्षमादान मिला और उस क्षेत्र में शान्ति तथा व्यवस्था पुनः स्थापित हो गई[२]।

खानखाना के पुत्र तथा पत्नी की मृत्यु, दक्षिण का घटना चक्र।

दक्षिण से बुला लिए जाने के पश्चात् खानखाना लगभग एक वर्ष तक दरबार में रहा। उसका यह अवकाश काल बड़ा ही दुःखमय बीता। मुराद के साथ सहयोग न करने के कारण अकबर तो

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११९२।
२ म० उ० भाग २, पृ० ४४३।

उससे अप्रसन्न था ही, इस समय नियति भी उससे रूठी हुई थी। एक ही मास के भीतर उसके पुत्र हैदरी तथा उसकी पत्नी माहबानों बेगम की मृत्यु हो गई। हैदरी का प्राणान्त एक दुर्घटना में हुआ। वह बालक अत्यधिक मदपान कर एक सराय में बेसुध सोया हुआ था। सहसा उस भवन में आग लग गई। संज्ञाहीन होने के कारण उसे इसका कुछ भी बोध न हुआ और वह अग्नि की प्रचंड ज्वाला में जलकर भस्म हो गया। इस दुर्घटना के तीन दिन पश्चात् ही ख़ानख़ाना की मुख्यपत्नी का देहान्त हो गया। वह बहुत दिनों से रोग ग्रसित थी। पुत्र के शोक समाचार से पीड़ा और भी उग्र हो उठी। जब शाही दल लाहौर से आगरा आ रहा था तो वह भी साथ थी। अम्बाला पहुँचकर उसकी दशा अत्यधिक चिन्ताजनक हो गई। फलतः बादशाह ने ख़ानख़ाना के साथ परिचर्या के हेतु उसे वहीं छोड़ दिया। किन्तु अन्त में उसकी वहीं मृत्यु हो गई। माहबानों बेगम विदुषी तथा पतिपरायणा स्त्री थी। जीवन भर उसने अपने पति के दायित्व निर्वाह में योग दिया। बादशाह को भी उसके निधन पर बड़ा शोक हुआ[१]।

ख़ानख़ाना की अनुपस्थिति में, मुगलों की दक्षिण विजय में कोई विशेष प्रगति न हुई। राजकुमार मुराद ने, अपने दक्षिण में बने रहने के औचित्य को प्रमाणित करने के हेतु कुछ प्रयास अवश्य किए थे, किन्तु बरार में इधर उधर बिखरे हुए कतिपय दुर्गों पर अधिकार स्थापित करने के अतिरिक्त, उसे कोई उल्लेखनीय सफलता न प्राप्त हो सकी थी। अत्यधिक मदपान के कारण उसका स्वास्थ्य चौपट हो गया था। जब वह अहमदनगर पर आक्रमण करने जा रहा था तो मार्ग में ही

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११२७

बीमार पड़ गया और २ मई १५९९ ई० को दौलताबाद से बीस कोस दूर पूर्णा नदी के तट पर डोहवारी नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई।

दक्षिण की स्थिति को सुधरते न देख, अकबर ने पहले ही शेख अबुलफ़जल को वहाँ का सेनापति नियुक्त कर दिया था। शेख के पहुँचने पर मुगलों के दक्षिण विजय के प्रयत्नों में कुछ समय के लिए नवीन उत्साह अवश्य आ गया था किन्तु रूढ़िगत स्पर्धा, विद्वेष तथा ईर्ष्या के कारण अन्त में नवीन सेनापति भी विशेष प्रगति न कर सका था। उधर विजित क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने में दक्षिणी सतत प्रयत्नशील थे। दरबार में शेख के विरोधी उसकी असफलताओं से अनुचित लाभ उठाने में कभी न चूकते। अकबर ने स्पष्ट अनुभव किया कि जब तक या तो वह स्वयं या कोई राजकुमार दक्षिण नहीं जायगा तब तक वहाँ की स्थिति में कोई सुधार सम्भव नहीं।

खानखाना की दक्षिण कमान में पुनर्नियुक्ति।

अकबर ने सर्वप्रथम युवराज सलीम को वहाँ भेजने का निश्चय किया। किन्तु युवराज को अपने पिता की बातों पर विश्वास न था। उसे सन्देह हुआ कि बादशाह सुदूर दक्षिण में भेज कर उसे उत्तराधिकार से वंचित करना चाहता है। अतः उसने वहाँ जाने में अनिच्छा प्रकट की। अकबर भी ताड़ गया और उसने उस विषय को आगे नहीं बढ़ाया। तब उसने दानियाल को चुना। उसे दक्षिण के विजित क्षेत्रों के शासक का दायित्व सौंपा गया और अबुलफ़जल उसका संरक्षक और वास्तविक सेनापति नियुक्त हुआ। प्रेमावेश में पिता पुत्र को पहुँचाने के लिए

प्रथम पड़ाव तक गया और खूब समझा बुझा कर उसे वहाँ से विदा किया१।

किन्तु राजकुमार मार्ग ही में लटका रहा। तीन मास बीत गए किन्तु उसके प्रयाण में कोई विशेष प्रगति न हुई। बादशाह ने उसके सन्निकट रह उसे स्फूर्ति प्रदान करना आवश्यक समझा। अतः १६ सितम्बर १५९९ ई० को वह लाहौर से आखेट के बहाने मालवा की ओर चला। मगर वह कब तक शाहज़ादे के साथ रहता। उसे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता अनुभव हो रहा था जो अपनी योग्यता, सम्बन्ध तथा अनुभव के बल पर उस अल्हड़ युवक को निरन्तर वश में रख सके। अबुलफ़ज़ल दक्षिण की स्थिति से ऊब कर पहले से ही वहाँ के कार्यभार से मुक्त होने के लिए व्यग्र हो रहा था। तब उसके स्थान पर किसकी नियुक्ति की जाय? अकबर ने इस प्रश्न पर बड़ी गहराई से विचार किया और अन्त में उसे ख़ानख़ाना ही इस पद के लिए सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ा। वह राजकुमार का श्वसुर था। ख़ानख़ाना की पुत्री जाना बेगम का विवाह दानियाल से हुआ था। उसे दक्षिण की स्थिति का सम्यक् ज्ञान था और उसने इधर दक्षिण में शाही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निष्ठापूर्वक कार्य करने का कई बार वचन भी दिया था। सौभाग्य से वह उस समय उसके साथ ही था। अतः उक्त विचारों से प्रेरित हो कर बादशाह ने ख़ानख़ाना को एक बार पुनः राजकुमार का अभिभावक तथा दक्षिण कमान का वास्तविक सेनापति नियुक्त किया।

२९ सितम्बर १५९९ ई० को अकबर ने अपनी मालवा यात्रा के द्वितीय पड़ाव पर ख़ानख़ाना को विदाई दी और आदेश दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र जाकर राजकुमार के साथ हो ले। तीन दिन पश्चात्

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११३२।

ख़ानख़ाना की प्रार्थना पर बादशाह उसके शिविर में गया और सायंकाल तक वहीं मनोरंजन करता रहा। अनुगृहीत सेनापति ने अपने कृपालु स्वामी को अनेकों उपहार भेंट किए जिनमें एक विशेष अश्व भी था जो गजराजों के साथ युद्ध कर सकता था[१]।

ख़ानख़ाना तीव्रगति से चलता हुआ शीघ्र ही राजकुमार के साथ हो लिया। मार्ग में सूचना मिली कि अबुल फ़ज़ल अहमदनगर पर आक्रमण करने जा रहा है। इधर ख़ानख़ाना और दरबारी इतिहासकार के पारस्परिक सम्बन्धों में बड़ी कटुता आ गई थी। यद्यपि इस वैमनस्य के कारणों का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है तब भी अकबरनामा के सूक्ष्म अध्ययन से पाठकों को विश्वास हो जायगा कि दक्षिण में मुग़ल योजनाओं की विफलता के लिए अबुल फ़ज़ल ख़ानख़ाना ही को मुख्यतः उत्तरदायी समझता था। वह स्पष्टतः ख़ानख़ाना के नाम का तो उल्लेख नहीं करता किन्तु उसका आशय उसी से प्रतीत होता है। वह संकेत करता है कि सेनापति दक्षिणियों से मिला हुआ था। वह चाँद बीबी के साथ की गई संधि के शर्तों की भर्त्सना करता है और उन्हें अशोभनीय कहता है। यही नहीं वह उस पर भ्रष्टाचार का भी आरोप लगाता है[२]। बहुत सम्भव है कि उसी ने ख़ानख़ाना के विरुद्ध बादशाह के कान भरे हों और उसी के कारण सेनापति को अपनी कमान से वापस बुला लिया जाने का अपमान सहन करना पड़ा हो। जो कुछ भी हो, ख़ानख़ाना को स्वभावतः यह कभी सहन न होता कि निज़ामशाही राज्य के विजय का श्रेय उसके प्रतिद्वन्द्वी को प्राप्त हो। अतः उसने

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११४०-११४१।
२ अ० ना० भाग ३, पृ० १०४८।

दानियाल को प्रेरित किया कि वह अबुल फज़ल को ऐसी उतावली करने से रोके। राजकुमार सेनापति के हाथ की कठपुतली था। वह उसे जिस प्रकार चाहता, नचाता। उसने अविलम्ब अबुल फज़ल को आदेश भेजा कि वह अहमदनगर के विरुद्ध आगे न बढ़े और उसके आगमन तक प्रतीक्षा करे। इतिहासकार को यह आज्ञापत्र गोदावरी के पूर्व तट पर, मुंगीपाटन नामक उपनगर में प्राप्त हुआ और फलतः वह वहीं रुक गया[१]।

जब शाहजादा अपने दल के साथ बुरहानपुर पहुँचा तो राजा अली खाँ का पुत्र मीरन बहादुर स्वाभिमान के कारण अपने दुर्ग ही में बैठा रहा और राजकुमार की सेवा में नहीं उपस्थित हुआ। दानियाल इस अपमान से बहुत चिढ़ा और उसने उस उद्दंड शासक को दंड देने का निश्चय किया। खानखाना तो ऐसे शुभावसर की खोज ही में था। दक्षिण में अबुल फज़ल की स्थिति और भी अस्थिर बना देने के उद्देश्य से उसने उसके अधीनस्थ अधिकांश सैनिकों को खानदेश में लड़ने के लिए बुला लिया। संयोग से बादशाह ने, जो उस समय मांडू तक पहुँच गया था, शाहजादे को ऐसा करनेसे रोका और आदेश दिया कि वह अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े। उसने अपने पुत्र को आश्वासन दिया कि खानदेश शासक की समस्या को वह स्वयं ही सुलझाएगा।

१ अ० ना० भाग३, पृ० ११४४।
२ अ० ना० भाग ३, पृ० ११४४-११४६।

अहमदनगर का द्वितीय घेरा।

अब बुरहानपुर से शाहज़ादा अपने दल के साथ आगे बढ़ा। उधर बादशाह के आदेश से अबुलफ़ज़ल दरबार वापस आ रहा था। मार्ग ही में आहूवाड़ा नामक स्थान पर उसकी इन लोगों से भेंट हुई। तीन दिन तक वहीं रुक, दरबारी इतिहासकार से दक्षिण के हाल के घटनाचक्र का पूर्ण परिचय प्राप्त कर, शाहज़ादे का दल फिर आगे चला। मार्ग में उन्होंने योजना बनाई कि अहमदनगर दुर्ग पर वर्षा ऋतु के पश्चात् डेरा डाला जाए किन्तु इधर अकबर दक्षिण समस्या को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने को अधीर हो रहा था, अतः उन लोगों ने वहाँ पहुँचते ही तुरन्त घेरा डालने का निश्चय किया।

मुग़लों के सौभाग्य से, निज़ामशाही राज्य की शक्ति, दलबन्दी के कारण अब भी छिन्न भिन्न हो रही थी। उस समय वहाँ दो दल प्रमुख थे। एक संरक्षिका रानी चाँद बीबी का और दूसरा उसके प्रधान मंत्री अभंग ख़ाँ का। बहादुर निज़ामशाह तो केवल नाम मात्र का सुलतान था, वास्तविक शासिका उसकी संरक्षिका ही थी। अभंग ख़ाँ भी महत्त्वाकांक्षी और शक्ति सम्पन्न था। वह राज्य की सारी सत्ता अपने ही हाथों में केन्द्रित रखना चाहता था। चाँद बीबी इसके लिए उद्यत न थी, अतः दोनों में संघर्ष अनिवार्य था। संरक्षिका और उसकी कठपुतली, दोनों को बंदी बनाने के उद्देश्य से, अभंग ख़ाँ ने उस समय अहमदनगर दुर्ग पर घेरा डाल रखा था। शत्रु के आन्तरिक कलह के कारण ख़ानख़ाना को स्वर्ण अवसर मिला। उसने अपने सैनिकों को एकत्र किया और पूर्ण सावधानी

बरतता हुआ वह गढ़ पर घेरा डालने के लिए सोत्साह आगे बढ़ा।

मुगलों को अग्रसर होते सुन, चाँद बीबी तथा अभंग खाँ, दोनों ही घबरा उठे। अभंग खाँ स्वदेश भक्त था। बाह्य आक्रमण से राज्य की रक्षा करने के जोश में वह आंतरिक कलह भूल गया। उसने अविलम्ब दुर्ग पर से घेरा उठा लिया। वह शत्रु को राज्य में प्रवेश ही नहीं करने देना चाहता था। इसलिए वह अपने सैनिकों को ले शीघ्रता से जैपुर कोटली घाट के मुख्य द्वार की ओर चला। किन्तु उसके कपटी साथियों ने धोखा दिया। वे मुगलों की ओर चले गए। इससे वह बहुत ही हतोत्साह हुआ। इधर खानखाना को पहले ही सूचना मिल गई थी कि वह हब्शी सरदार पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ दर्रे की पहरेदारी कर रहा है। अतः उसने वह मार्ग ही बरका दिया और चक्कर देकर मनोवरी नामक ग्राम की ओर से आगे बढ़ा। मुगल सेनापति की इस चालाकी से अभंग खाँ और भी निराश हो उठा। उससे सोचा कि दर्रे पर बने रहना अब व्यर्थ भी है और खतरनाक भी। अतः अपने सारे तम्बुओं को जला, वह जुन्नार भाग गया।

अभंग खाँ के पलायन से मुगलों का पथ प्रशस्त हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल शाही सेना का अवशेष भाग भी, जो पीछे रह गया था, उस दर्रे को पार कर अहमदनगर पहुँच गया। खानखाना ने सर्वप्रथम, शत्रुस्थिति का भली भाँति निरीक्षण किया और तब चारों ओर से गढ़ पर घेरा डालने का आदेश दिया। मिर्जा शाहरुख, मिर्जा यूसुफ, राजा जगन्नाथ तथा शेर ख्वाजा आदि सेनानायकों की अध्यक्षता में मोर्चे बाँट दिए गए। सर्वोपरि कमान खानखाना ही के हाथ में था। क़िलेबन्दी का काम बारह अप्रेल को

प्रारम्भ हुआ और चार मास तथा चार दिन तक चलता रहा।

प्रारम्भिक प्रबन्ध पूर्ण कर, अब वे जी-जान से गढ़ घेरने में लग गए। खाइयों को आगे बढ़ाते, एवं मोर्चे बाँधते वे दुर्ग की ओर अग्रसर होने का घोर प्रयास करते किन्तु वीरांगना चाँद बीबी के नेतृत्व में दुर्ग रक्षकों के प्रबल प्रतिरोधों के सम्मुख उनकी एक न चलती। दक्षिणी प्रायः रात्रि को अवसर पा बाहर आ जाते और शाही मोर्चों पर छापा मारते। वह निर्भीक रमणी एक ओर तो अपने अनुगामियों को प्राणों की बलि देकर भी गढ़ रक्षा करने को प्रोत्साहित कर रही थी और दूसरी ओर अनावश्यक रक्तपात एवं विनाश से बचने के लिए मुगलों से संधि-वार्ता चला रही थी। उसे अपने हब्शी सरदारों पर भरोसा न था अतः कुछ अंशों में इस कारण भी वह संधि के लिए विवश थी।

किन्तु कतिपय दक्षिणी सामन्त, जिनका नेता ज़ुमेद ख़ाँ हब्शी था, चाँद की इस दोहरी नीति से सहमत न थे। वे किसी भी दशा में मुगलों से संधि करने पर प्रस्तुत न थे। उन्हें उन परिस्थितियों का वास्तविक ज्ञान न था जिनसे प्रेरित हो कर वह दूरदर्शी वीरांगना ऐसी नीति ग्रहण करने पर बाध्य हुई थी। स्वदेश प्रेम ने उन्हे अंधा बना दिया था। वे उस रमणी पर देशद्रोह एवं विश्वासघात का आरोप लगाने लगे। अंत में, एक रात्रि, जब वह नमाज़ पढ़ने में निमग्न थी, वे उस अबला पर टूट पड़े और उसका अन्त कर दिया।

चाँद बीबी की इस निर्मम हत्या के पश्चात् ऐसा कोई योग्य नेता न रहा जो गढ़ रक्षकों में अनुशासन और ऐक्य रख सके। अब मुगलों का कार्य सरल हो गया। वे और भी दृढ़ता तथा शक्ति के

साथ दुर्ग की ओर बढ़ने लगे। अभी तक दूर से गोलाबारी करने के कारण वे गढ़ प्राचीरों को कोई विशेष क्षति न पहुँचा सके थे। उधर निजामशाही तोपों की निरन्तर मार उन्हें समीप आने ही नहीं देती थी। किन्तु अब धीरे धीरे मोर्चों को बढ़ाते हुए वे किले की खाई तक आ गये थे और उसे पत्थरों एवं रेत से पाट डाले थे। वह खाई लगभग तीस या चालीस गज़ चौड़ी और सात गज़ गहरी थी। इसलिए उसे भरने में उन्हें अत्याधिक श्रम करना पड़ा।

अब उनके सम्मुख समस्या थी, सत्ताईस गज ऊँची दीवारों को तोड़ने की। इसके लिए विभिन्न स्थानों पर सुरंगें बिछाई जाने लगीं। इधर गढ़-रक्षक भी सतर्क थे। प्रथम घेरे का कटु अनुभव उन्हें भूला न था, वे पता लगा कर उन्हें भरने लगे। अन्त में मुगल एक सुरंग उड़ाने में सफल हुए। किन्तु उनके दुर्भाग्य से अग्निज्वाला मुंडेर तक पहुँचते पहुँचते बुझ गई, इसलिए केवल एक बुर्ज का कुछ अंश ही विध्वंस हो सका। गढ़ रक्षकों ने प्रज्वलित बारूद को बाहर निकाल लेने का भरसक प्रयत्न किया मगर दरार मुंडेर के बाह्य भाग में थी, अतः वे सफल न हो सके। इधर मुगलों ने शीघ्र ही उसे एक सौ अस्सी मन बारूद से फिर भर दिया। १६ अगस्त, १६०० ई० को नौ बजे प्रातःकाल, खानखाना ने उसमें आग लगाने का आदेश दिया। विस्फोट होते ही तुरन्त किले का प्रसिद्ध भाग "बुर्ज बैला" तथा तीस गज दीवार धराशायी हो गई।

मुगल सामने प्रवेश-पथ प्रशस्त पाकर अविलम्ब दुर्ग के भीतर घुस गए। किन्तु वीर गढ़-रक्षक अब भी समर्पण पर उद्यत न थे। उन्होंने अकबरी सेना का प्रबल प्रतिरोध किया। फलतः कुछ समय

तक भीषण हाथापाई का युद्ध होता रहा। दुर्ग-रक्षा के इस अन्तिम प्रयास में लगभग डेढ़ हजार दक्षिणी वीर काम आए। अन्त में मुगलों की प्रबल बाढ़ को रोकने में अपने को असमर्थ देख वे पराजय स्वीकार करने पर बाध्य हो गए। खानखाना वहाँ के बालक सुलतान, बहादुर को सपरिवार साथ ले असीरगढ़ गया जहाँ अकबर स्वयं घेरा डाले पड़ा था। बादशाह की आज्ञा से वे ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिए गये जहाँ वे आजीवन बन्दी बने रहे। निजामशाही किले में मुगलों को अपार धन-राशि प्राप्त हुई। उनमें अधिकांश बहुमूल्य रत्न थे। इनके अतिरिक्त विजेताओं को एक सुन्दर पुस्तकालय, पच्चीस गजराज तथा एक विशाल तोपखाना भी मिला[१]।

अहमदनगर दुर्ग के पतन से असीरगढ़ की किलेबन्दी में नव-जीवन आ गया। १७ जनवरी, १६०१ ई० को वह दुर्ग भी जीत लिया गया। अकबर दक्षिण में आगे बढ़ने की योजना पर विचार कर ही रहा था कि इधर युवराज सलीम ने विद्रोह कर दिया। बादशाह की उत्तर में उपस्थिति आवश्यक थी। अतः उसने दानियाल को खानखाना के साथ दक्षिण में मुगल उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु छोड़ दिया और स्वतः उक्त घटना के पाँच मास पश्चात् आगरे लौट आया। खानखाना के बुरहानपुर से विदा होते समय बादशाह ने उसे प्रतिष्ठा सूचक वस्त्र, एक विशिष्ट जाति का अश्व तथा झंडा उपहार में दिए।

---

१ इस घेरे के विस्तृत विवरण के लिए देखिए अ० ना० भाग ३, पृ० ११५७-११५६, म० र० भाग २, पृ० ४६७-५००; फरिश्ता भाग २, पृ० १६४; इलियट भाग ६, पृ० २४६।

दक्षिण में खानखाना की समस्या—मलिक अम्बर तथा राजू दक्षिणी।

जब अप्रैल, १६०१ ई० में खानखाना अहमदनगर लौटा तो उसने अपने को बड़ी विषम स्थिति में पाया। उसके सम्मुख अब दो समस्यायें थीं। एक ओर तो उसके अधीनस्थों में ऐक्य एवं अनुशासन का सर्वथा अभाव हो रहा था और दूसरी ओर पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेष का रूढ़िगत रोग, जो अकबर की उपस्थिति में कुछ काल के लिए दब गया था, उसके पीठ फेरते ही फिर उभड़ आया था। अधिकारी वर्ग एक दूसरे पर छींटे कसते और सहयोग न करते थे। सिपाही भी आवश्यक वस्तुओं के नित्य प्रति के बढ़ते हुए भाव से घबड़ा कर, शीघ्रातिशीघ्र घर लौटने की रट लगाए हुए थे[१]। दूसरी ओर शत्रु अब भी मुगल सत्ता स्वीकार करने पर उद्यत न था। वह आए दिन उन्हें वहाँ से खदेड़ देने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। स्मरण रहे, मुगलों का अधिकार केवल अहमदनगर शहर तथा उसके समीपस्थ क्षेत्रों तक ही सीमित था। निजामशाही राज्य का अवशेष भाग अब भी स्वतन्त्र था। मुगलों की आन्तरिक दुर्बलताओं से लाभ उठा कर उस राज्य के प्रभावशाली सामन्तों ने बुरहान प्रथम के पोते को मुर्तजा निज़ाम शाह के नाम से अपना नवीन शासक घोषित किया। वे चारों ओर विजित क्षेत्रों पर पुनः अधिकार करने में व्यस्त थे। इन सामन्तों में मलिक अम्बर तथा राजू दक्षिणी विशेष उल्लेखनीय हैं।

मलिक अम्बर का जन्म यों तो अबीसीनिया की हब्शी जाति में

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११७३।

हुआ था, किन्तु वह दक्षिण भारत को ही अपना वास्तविक देश मानता था। उसका राजनैतिक जीवन, बरार विजेता, चंगेज़ ख़ाँ नामक एक प्रमुख निज़ामशाही सामन्त के दास के रूप में प्रारम्भ हुआ। उसने अपने स्वामी की सेवा बड़ी निष्ठा से की और उसके सुयोगों से सदैव लाभ उठाता रहा। अपनी योग्यता तथा चरित्र के बल पर उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ अन्ततः वह निज़ामशाही सरदारों में सर्व प्रमुख बन बैठा। इस समय उसका अधिकार राज्य के पूर्वी भाग पर था जो बीजापुर तथा गोलकुंडा की सीमाओं से लेकर उत्तर में अहमद नगर से आठ मील दक्षिण तक तथा दौलताबाद के चालीस मील पश्चिम से लेकर उत्तर में अहमदनगर से आठ मील दक्षिण तक तथा दौलताबाद के चालीस मील पश्चिम से ले लेकर चौलबन्दरगाह के चालीस मील पश्चिम तक विस्तृत था। उसने अहमदनगर से पचहत्तर मील दक्षिण पश्चिम परेंडा नामक स्थान को राज्य की अस्थाई राजधानी नियत की थी और स्वयं मुर्तज़ा निजामशाह के प्रधान मंत्री का कार्य करता था। उसने अपनी पुत्री का विवाह भी उससे कर दिया था।

दूसरा प्रमुख निज़ामशाही अमीर था, राजू दक्षिणी। उसका भी जीवन बड़ी साधारण स्थिति से प्रारम्भ हुआ। वह एक निज़ामशाही सामन्त, सआदतख़ाँ के महलदार (अन्तःपुर निरीक्षक) का दत्तक पुत्र था। शुभावसरों से लाभ उठाता हुआ, वह उत्तरोत्तर उन्नति करता गया और शीघ्र ही अम्बर की भाँति वह भी एक स्वतंत्र जागीरदार बन गया। उसने राज्य के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर रखा था जिसका विस्तार उत्तर में गुजरात की सीमा से लेकर

दक्षिण में अहमद नगर के आठ मील निकट तक था। दौलताबाद भी उसी की जागीर में था[१]।

यही दो शक्तिशाली सामन्त थे, जिनसे खानखाना को लोहा लेना था। शेष अन्य या तो अम्बर के साथ थे या राजू के। वैसे तो स्वार्थ वृद्धि के लिए उनमें प्रायः संघर्ष हुआ करता किन्तु जब मुगलों के विरोध का प्रश्न आता तो वे सदैव एक हो जाते। अम्बर की जागीर मुगल साम्राज्य की सीमा के निकट थी और अपेक्षाकृत वह शक्तिशाली भी अधिक था, अतः खानखाना ने सर्व प्रथम उससे ही निपटने का निश्चय किया।

किन्तु ऐसा करने से पूर्व खानखाना को अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेना आवश्यक था। शेख अबुल फज़ल को बादशाह ने नासिक विजय के लिए नियुक्त किया था। खानखाना चाहता था कि दक्षिण में प्राप्त सारे मुगल साधनों को इस समय अम्बर के विरुद्ध ही केन्द्रित किया जाए। अतः उसने बादशाह से निवेदन कर अबुल फज़ल की वह नियुक्ति रद्द करवा दी और उसे अपने पास बुलवा लिया। शेख को बहुत बुरा लगा किन्तु शाही आदेश का पालन तो करना ही था। वह नासिक से चला और खानदेश में बहागाँव नामक स्थान पर खानखाना से मिला। सेनापति ने उसे आदेश दिया कि वह अम्बर को परास्त करने की तैयारियाँ करे और स्वयं कुछ समय के लिए जालनापुर गया। वहाँ उसने एक शक्तिशाली निज़ामशाही अमीर, बांकू को समझा बुझा कर अपनी ओर मिला लिया। इसके पश्चात्

१ म० उ० भाग २, पृ० २०१, २०२; फरिश्ता भाग २, पृ० १६६

उसने कतिपय अन्य विद्रोही सरदारों को, जो निज़ामशाही राज्य के विभिन्न भागों में फैले हुए थे, मुगल सत्ता स्वीकार करने पर बाध्य किया। उससे निश्चिन्त हो अब उसने अम्बर की ओर ध्यान दिया[१]।

मलिक अम्बर का निज़ामशाही राज्य में जो प्रभाव, शक्ति तथा प्रतिष्ठा थी, खानखाना उससे भली भाँति परिचित था। वह जानता था कि ऐसे व्यक्ति को परास्त करना सरल नहीं। अतः उसने अबुल फज़ल के पुत्र अब्दुर्रहमान की अध्यक्षता में एक विशाल सेना बरार से तेलिंगाना की ओर भेजी। अम्बर पहले ही से सचेत था। मुगलों के बढ़ने का समाचार पाते ही वह अपनी नव निर्मित राजधानी से निकला और मार्ग ही में १६ मई, १६०१ ई० को मंजेरा नदी के सन्निकट, नन्देर नामक स्थान से कुछ दूर पर उनका सामना किया। खूब घमासान युद्ध हुआ। अंत में अम्बर पराजित हुआ और रण क्षेत्र से भागा।

किन्तु वह हब्शी सामन्त इस पराजय से हतोत्साह न हुआ। जब उसने देखा कि शाही सैनिक निज़ामशाही राज्य में विभिन्न स्थानों पर बिखरे पड़े हैं, तो वह वापस लौटा। इस बार उसके साथ सात से आठ सहस्र तक अश्वारोही थे। उसने सुयोग देख मुगलों पर आकस्मिक आक्रमण कर दिया। शाही दल पराजित हुआ और अम्बर ने अपने खोए हुए स्थानों पर पुनः अधिकार कर लिया[२]।

खानखाना इस अप्रत्याशित हार से स्वभावतः बड़ा क्षुब्ध हुआ। वह अम्बर की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति के खतरों के प्रति पूर्ण

१ अ० ना० भाग ३, पृ० ११८०, ११६०, १२१०।
२ अ० ना० भाग ३, पृ० ११८४, ११८८, ११६३, ११६४।

जागरूक था। तेलिंगाना सीमा पर नियुक्त मुगल सेना नायक शेरख्वाजा तथा मीर मुर्तजा अपने स्थानों से पहले ही पीछे हट आने पर विवश हो गए थे। उनको अविलम्ब कुमुक की आवश्यकता थी अतः खानखाना ने इस बार अपने ज्येष्ठ पुत्र मिर्जा ईरीज को पाँच सहस्र विशिष्ट अश्वारोहियों के साथ तेलिंगाना की ओर उनको सहायतार्थ भेजा। उधर अम्बर, इरीज के प्रयाण की सूचना पाते ही आगे बढ़ा और अहमद नगर से दो सौ मील पूर्व में नन्देर नामक स्थान पर उसका सामना किया।

दोनों पक्षों ने अपनी व्यूहरचना पहले ही कर रखी थी। मुगल सेना के मध्य भाग की अध्यक्षता इरीज स्वयं कर रहा था। उसके दक्षिण तथा वामपार्श्वों के नेता थे, क्रमशः मीर मुर्तजा और अली मर्दान बहादुर। पराक्रमी राजपूत अपने नेता राजा सूरज सिंह के साथ उसके अग्रभाग में थे। मलिक अम्बर स्वयं अपनी सेना के मध्यभाग का नेतृत्व कर रहा था।

शीघ्र ही संग्राम आरम्भ हो गया। सर्व प्रथम, अम्बर के अग्रभाग ने शाही गजराजों पर प्रहार कर उन्हें तितर बितर कर दिया और फिर प्रबल वेग से विपक्षी के अग्रभाग पर आक्रमण किया गया। किन्तु मुगल तोपखाने की भीषण गोलाबारी ने उन्हें आगे बढ़ने का अवसर ही नहीं दिया। तोपों की मार से दाक्षिणी व्याकुल हो उठे। मिर्जा इरीज युवावस्था के आवेश में, बिना अपने पार्श्वों पर ध्यान दिए ही, अम्बर के मध्यभाग पर टूट पड़ा। उसने उस दिन निजामशाही सामन्त के साथ युद्ध करने में अनुपम शौर्य दिखलाया। उसके प्रबल प्रहारों के सम्मुख शत्रु का अधिक देर तक टिकना कठिन हो गया।

उनका साहस जाता रहा और वे युद्ध क्षेत्र से भागे। अम्बर आहत हो अब भी समरांगण में पड़ा था। उसके कतिपय स्वामिभक्त अनुगामियों से उसकी यह विवशता न देखी गई। वे वीर प्राणों को हथेली पर रख उस युद्ध ज्वाला में कूद पड़े और उसे उठा ले गए। यदि तनिक और विलम्ब हुआ होता तो शाही सैनिक उसे पकड़ लिये होते। मुगलों को इस युद्ध में बहुत सा माल मिला। युवक मिर्जा इरीज अपने इस विशिष्ट कृत्य के उपलक्ष में "बहादुर" की सम्मानित उपाधि से विभूषित हुआ[१]।

मिर्जा इरीज की १६०२ ई० की नन्देर विजय से दक्षिण में मुगलों की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गई। मुगल साम्राज्य की सीमा एक बार फिर तेलिंगाना तक पहुँच गई। खानखाना की स्थिति सुधर गई थी और वह अब दूसरे प्रबल विघ्नकारी सामन्त, राजू दक्षिणी की ओर ध्यान दे सकता था।

मलिक अम्बर पराजित अवश्य हुआ था किन्तु उसकी शक्ति अभी पूर्णतः क्षीण नहीं हुई थी। यदि खानखाना अपने सारे उपलब्ध साधनों को राजू के ही विरुद्ध केन्द्रित करता तो वह महत्वाकांक्षी सरदार अम्बर अवसर पा पुनः अपना सिर उठाता। तब मुगल बड़ी ही विकट स्थिति में पड़ जाते। इसके अतिरिक्त, शाही सेना नायकों में भी इस समय ऐक्य नहीं था। जब एक शत्रु अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए उपयुक्त अवसर की ताक में हो तो ऐसी दशा में दूसरे शक्तिशाली सरदार से शत्रुता मोल लेना खानखाना बुद्धि संगत नहीं समझता था। अतः उक्त दोनों बातों को ध्यान में रख, मुगल

१ अ० ना० भाग ३, पृ० १२१२; फरिश्ता भाग २, पृ० १६६।

सेनापति ने अम्बर से संधि कर ली जिसके अनुसार दोनों पक्षों की सीमाएँ सुनिश्चित और स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी गईं[१]।

इसके पश्चात् दो वर्ष तक ख़ानख़ाना राजू से निपटने में व्यस्त रहा। अबुल फ़ज़ल ने उस सामन्त को पहले ही कई बार पराजित किया था किन्तु मुग़ल कप्तानों में ऐक्य न होने के कारण वह अभी तक कुचला न जा सका था। जब शाही अधिकारियों के पारस्परिक वैमनस्य की सूचना बादशाह को मिली तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। संघर्ष बरकाने के लिए उसने प्रस्ताव किया कि अबुल फ़ज़ल तथा ख़ानख़ाना में दक्षिण कमान का विभाजन कर दिया जाय[२]। किन्तु इस योजना के कार्यान्वित होने के पूर्व ही अबुल फ़ज़ल दरबार में वापस बुला लिया गया। दुर्भाग्य से अभी वह मार्ग ही में था कि वीरसिंह बुन्देला ने आकस्मिक प्रहार कर उसकी हत्या कर डाली। इधर राजू की उद्दंडता बढ़ती ही गई। १६०४ ई० में राजकुमार दानियाल, इब्राहीम आदिलशाह की पुत्री से विवाह करने के हेतु अहमद नगर जा रहा था। जब वह दौलताबाद के निकट पहुँचा तो उसने राजू के पास दूत भेज कर कहलाया कि वह मुग़लों की महाप्रभुता स्वीकार करे और स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित हो। निज़ामशाही सरदार ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। यही नहीं, वह अपनी लुका छिपी चालों (गुरिल्ला टेक्टिक्स) से मुग़लों को और भी कष्ट देने लगा। ख़ानख़ाना उस समय जालना में था। राजू के इन

१ फ़रिश्ता भाग २, पृ० २६९।
२ अ० ना० भाग ३, पृ० १२०८-१२१०।

कृत्यों पर वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने अविलम्ब पाँच हजार अश्वारोहियों के साथ वहाँ से प्रयाण किया और तीव्र गति से चलता हुआ शीघ्र ही शाहजादे के पास पहुँच गया। मुगल सेनापति के आगमन की सूचना पाते ही राजू की नाड़ी सूख गई। वह बिना लड़े ही अपने अनुगामियों के साथ भाग गया।

जब राजू मुगलों से पार न पा सका तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी, मलिक अम्बर की ओर मुड़ा और अब उसे कष्ट देने लगा। आपत्ति-ग्रस्त अम्बर ने अपने मित्र खानख़ाना से अविलम्ब सहायता भेजने की प्रार्थना की। मुगल सेनापति स्वार्थ रक्षार्थ उन दोनों सामन्तों में शक्ति संतुलन बनाए रखने के लिए पहले ही से चिन्तित था। उसने तुरन्त बीर के शासक, मिर्ज़ा हुसेन अली बेग को अम्बर की सहायतार्थ, प्रयाण करने को आदेश भेजा। मुगल अश्वारोहियों ने, जिनकी संख्या लगभग तीन सहस्र थी, शीघ्र ही राजू को परास्त कर दौलताबाद की ओर वापस खदेड़ दिया[१]।

मुगलों तथा राजू में कितने ही संघर्ष हुए, किन्तु वह निज़ाम-शाही अमीर अब भी अदम्य ही रहा। इसी मध्य, अप्रैल १६०४ ई० में राजकुमार दानियाल की अत्यधिक मद्यपान के फल स्वरूप मृत्यु हो गई। अब खानखाना को शासन भार सम्हालने के लिए बुरहानपुर जाना पड़ा। शाहजादे की असामयिक एवं आकस्मिक मृत्यु से खानख़ाना को घोर आघात पहुँचा। उसके निधन से उसका प्रिय दामाद तो लुट ही गया, अब सेनापति के हाथों से दक्षिण के निरंकुश अधिकार भी चले गए।

१ फरिश्ता भाग २, पृ० १६६।

शाहज़ादा तो नाम मात्र का शासक था, वास्तविक सत्ता तो ख़ानख़ाना ही के हाथों में थी।

ख़ानख़ाना की भाँति, दानियाल भी हिन्दी काव्य प्रेमी था। वह हिन्दी में थोड़ी बहुत कविता भी करता था। मद्यपान की लत उसे युवावस्था के प्रारम्भ ही से पड़ गई थी और वह उत्तरोत्तर तीव्रतर होती गई। ख़ानख़ाना ने उसे बहुत समझाया, बादशाह ने भी कई बार प्यार भरी डाट दी, किन्तु उसका वह दुर्व्यसन न छूट सका। अकबर ने उसे दरबार में बुलाया भी, मगर उसने पिता के आदेश की उपेक्षा कर दी। इस पर सम्राट ने सब दोष ख़ानख़ाना के सिर मढ़ा और उसको चैतन्य किया कि वह अपने दामाद को सुधारने का फिर भरसक प्रयत्न करे। अन्त में ख़ानख़ाना ने शाहज़ादे के पास शराब पहुँचनी ही बन्द करवा दी और कई विश्वस्त व्यक्तियों को नियुक्त भी किया कि वे राजकुमार पर कड़ा पहरा रखें। किन्तु इतने पर भी उस युवक की जीवन रक्षा न हो सकी। अब उसने मद्यप्राप्ति का एक नया उपाय ढूँढ निकाला। उसने अपने नौकरों से प्रार्थना की कि जब वे उसके साथ आखेट को जाएँ तो मदिरा की शीशियाँ अपनी पगड़ियों में छिपा कर ले चलें। यदि वह सम्भव न हो तो वे उसे बन्दूक की नली में भर कर ले चलें। शराब तेज होती जिसके कारण बन्दूक की नली का मोर्चा घुल घुल कर उसमें मिल जाता। इस विष पूर्ण मदिरा ने शीघ्र ही उसे काल का ग्रास बना दिया। उसकी विधवा (ख़ानख़ाना की पुत्री,) जानाबेगम को उसके निधन का जो आघात पहुँचा वह अवर्णनीय है। शाहज़ादा उस पर बहुत ही आसक्त था। पति वियोग में जीवन दूभर देख, उसने सती हो जाने का प्रस्ताव किया किन्तु उसे ऐसा नहीं करने

दिया गया। उसके पश्चात् यद्यपि वह शोक मग्ना बहुत दिनों तक जीवित रही किन्तु मृत्युपर्यन्त उसके लिए विधवा काल का प्रत्येक दिन, प्रथम दिन ही के समान था[१]। ख़ानख़ाना अभी दक्षिण की समस्याओं में व्यस्त ही था कि उधर अक्टूबर, १६०५ ई० में अकबर की भी मृत्यु हो गई।

---

१ अ० ना० भाग ३, पृ० १२५१।

पंचम अध्याय

ख़ानख़ाना और दक्षिण-प्रदेश (१६०५-१६१८)

१९ अक्टूबर, १६०५ ई० को अकबर की मृत्यु हुई और उसके एक सप्ताह पश्चात् सलीम जहाँगीर के नाम से अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। उक्त दोनों समाचार ख़ानख़ाना को दौलताबाद में मिले। उस समय वह वहाँ अपनी कूटनीति-पूर्ण चालों द्वारा दो प्रतिद्वन्द्वी निजाम शाही सामन्तों—मलिक अम्बर तथा राजू के मध्य शक्ति-संतुलन बनाए रखने के प्रयत्नों में व्यस्त था।[१] इन समाचारों को पा ख़ानख़ाना ने एक बड़ा कौतूहलपूर्ण अभिनय किया। उसने बिना अपने मंतव्य की सूचना दिए ही सहयोगियों की एक गोष्ठी बुलाई। सर्व प्रथम वह शोक-सूचक काले वस्त्रों को धारण कर गंभीर मुद्रा में सभा में उपस्थित हुआ और व्यथित हृदय से लोगों को अकबर के निधन की सूचना दी। फिर दूसरे ही क्षण उसने उन वस्त्रों को उतार प्रसन्नता-परिचायक अन्य रंग-बिरंगे कपड़े पहने और इस बार अपने पूर्व शिष्य के राज्यारोहण पर हर्ष एवं उल्लास प्रकट किया। नवीन सम्राट के नाम का ख़ुतबा पढ़ा गया और बड़ी धूम धाम से वह जलसा मनाया गया। इसके पश्चात् ख़ानख़ाना दौलताबाद में कुछ समय तक और रहा। फिर वहाँ से जालनापुर होता हुआ वह तत्कालीन मुग़ल-अधीनस्थ—दक्षिण देश की राजधानी बुरहानपुर की ओर चला।[२]

---

१. फ़रिश्ता भाग २, पृ० १६६।
२. म० उ० भाग २, पृ० ५०६-५०८।

जालनापुर में खानखाना को मुकर्रबखाँ के हाथों एक शाही फरमान मिला। यह फरमान जहाँगीर ने अपने पूर्व संरक्षक के शंका-समाधान के हेतु इस विश्वासपात्र दास के साथ भेजा था। इसमें बहुत-सी ऊँची नीची बातें लिखी गई थीं और खानखाना के हितार्थ कुछ चेतावनियाँ भी दी गई थीं। उत्तर में खानखाना ने दौलतखाँ लोदी को एक पत्र देकर बादशाह की सेवा में भेजा। इस पत्र में उसने अपने नवीन स्वामी के प्रति स्वामि भक्ति और आज्ञाकारिता प्रकट की थी और आश्वासन दिया था कि वह पूर्ववत् पूर्ण निष्ठा से मुगल-साम्राज्य की सेवा करता रहेगा। इसके पश्चात् खानखाना जालनापुर तथा निकटस्थ क्षेत्रों की समस्याओं का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र मिर्जा इरीज को सौंप स्वयं बुरहानपुर चला आया[१]।

युवराज सलीम के सिंहासनारूढ होने पर खानखाना सशंकित हो उठा था। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है। किन्तु वे आशंकाएँ क्या और क्यों थीं, इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर हमें किसी भी समकालीन इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलता। अनुमानतः इनका मूल उन राजनीतिक चालों में था जो उत्तराधिकार के लिए अकबर के जीवन के अंतिम दिनों में चली गई थीं। युवराज सलीम व्यसन-रत होने के कारण अकबर की दृष्टि में पहले से ही गिरा हुआ था। और जब १५९९ ई० में उस अदूरदर्शी युवक ने खुले आम विद्रोह कर अपने पिता से राज्य-सत्ता आत्मसात करने का दुःसाहस किया तो अकबर की उसके प्रति रही सही सहानुभूति भी जाती रही। व्यथित सम्राट को अपने द्वितीय पुत्र

१. तु० ज० भाग १, पृ० ९८।

मुराद से कुछ आशाएँ थीं। किन्तु २ मई, १५९९ ई० को उसके असामयिक निधन से अकबर की उन आशाओं पर भी तुषारपात हो गया। अब शेष रह गया, अकबर का तृतीय पुत्र दानियाल। वह खानखाना का दामाद और निकट सहयोगी था। उसकी तीव्र बुद्धि और आकर्षक व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे। खानखाना ने सुअवसर देख उसको उत्तराधिकारी बनाने के लिए अकबर के कान अवश्य भरे होंगे। स्वार्थ तथा जन-हित दोनों ही भावनाओं ने खानखाना को ऐसा करने के लिए प्रेरित किया होगा। किन्तु दैवेच्छा! दानियाल भी अत्यधिक सुरा-पान के फलस्वरूप अप्रैल, १६०४ ई० में काल-कवलित हो गया। उत्तराधिकार का प्रश्न अब और भी जटिल हो गया। खानखाना का ध्यान कदाचित् अब अपने नाती (दानियाल के पुत्र) की ओर गया हो किन्तु सलीम के ज्येष्ठ पुत्र खुसरो के प्रबल प्रभाव के सम्मुख वह एकाकी उस अल्पवयस्क बालक के लिए कर ही क्या सकता था। अब खानखाना ने खुसरो के समर्थन में ही अपना कल्याण समझा होगा। उससे उसकी भतीजी तो ब्याही ही थी, साम्राज्य के बलिष्ठ स्तम्भ राजा मानसिंह तथा मिर्जा अजीज कोका प्रभृति व्यक्ति भी उसके पक्ष में थे। किन्तु अन्ततोगत्वा खानखाना की एक न चली और भाग्य ने सलीम का ही साथ दिया। भला सलीम इन कटु अनुभवों को इतने शीघ्र कैसे भूल जाता! खानखाना को आशंका होने लगी थी कि अब जहाँगीर उसे अविश्वसनीय समझ दक्षिण ऐसे महत्त्व-पूर्ण सीमान्त प्रदेश का अधिकारी कभी नहीं बने रहने देगा। वह उस पद पर ऐसे विश्वास-पात्र को नियुक्त करेगा जिसने आपत्ति काल में उसकी सहायता की होगी। जहाँगीर के उक्त फरमान ने

ख़ानख़ाना को सर्वथा निश्चिन्त कर दिया हो, यह तो निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है। हाँ, इससे ख़ानख़ाना को इतना विश्वास अवश्य हो गया कि उसका पूर्व शिष्य इतने शीघ्र उसे पदच्युत न करेगा।

इधर तो सम्राट और ख़ानख़ाना के मध्य उपहारों एवं संदेशों का आदान-प्रदान हो रहा था और इधर दक्षिण-सीमा पर परिस्थितियाँ और भी विकट होती जा रही थीं। दानियाल के आकस्मिक निधन के पश्चात् खानखाना को शासन-भार सम्हालने के हेतु जालना की छावनी से बुरहानपुर आना पड़ा। अब महत्त्वाकांक्षी मलिक अम्बर को चिर-अपेक्षित शुभावसर प्राप्त हुआ। उसने अपनी विस्तार-नीति को फिर अपनाया। किन्तु इसके पूर्व कि वह सबल मुगलों से संधि-विच्छेद करने का साहस करे, उसने राजू से निपट लेने में ही अपना कल्याण समझा। उसने अपने उस प्रतिद्वन्द्वी को दौलताबाद के दुर्ग में घेर लिया और उसे नाना प्रकार के कष्ट देने लगा। राजू ने अपनी मुक्ति का अन्य कोई उपाय न देख ख़ानख़ाना से तुरन्त सहायता भेजने की अपील की। ख़ानख़ाना तो यही चाहता ही था। वह उसके सहायतार्थ तुरन्त प्रस्तुत हो गया। किन्तु दौलताबाद पहुँच कर मुगल-सेनापति ने सर्वथा अप्रत्याशित मार्ग ग्रहण किया। उसने मलिक अम्बर के विरुद्ध राजू की सहायता न कर दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के झगड़ों को शान्तिपूर्वक निपटाने के लिए मध्यस्थ का कार्य किया। अन्त में वह सफल हुआ। दोनों के बीच संधि कराकर ख़ानख़ाना जालना चला आया और मलिक अम्बर परेंडा लौट गया[१]।

---

१ फरिश्ता भाग २, पृ० २६६।

खानखाना की कूटनीति की यह बहुत बड़ी सफलता थी। उसके इस दूरदर्शी कृत्य से साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। उसके दीर्घ कालीन अनुभवों ने उसे सचेत कर दिया था कि अम्बर के विरुद्ध शस्त्र उठना उन परिस्थितियों में उचित न होगा। अम्बर साहसी और लोकप्रिय नेता तो था ही, वह मुगलों का मित्र भी था। किन्तु दक्षिण में शक्ति-संतुलन बनाए रखने के हेतु उसकी महत्त्वाकांक्षाओं पर अंकुश रखना भी आवश्यक था। यदि वह तटस्थ बना रहता तो भी उसके हित में उचित न होता। राजू को पराजित कर अम्बर अवश्य ही मुगलों पर आक्रमण कर देता। और तब खानखाना की स्थिति बड़ी ही नाज़ुक हो जाती। खानखाना ने इस प्रकार की हस्तक्षेप नीति से अपना मन्तव्य प्राप्त कर लिया। राजू विनाश से बच गया, अम्बर से संधि-विच्छेद नहीं हुआ और शक्ति संतुलन भी बना रहा। निकट भविष्य में मुगलों की सीमा पर किसी आक्रमण की सम्भावना नहीं रह गई।

किन्तु खानखाना की कूटनीति अधिक दिनों तक काम न दे सकी। इसके दो कारण थे। प्रथम मुगल-अधिकारियों में ऐक्य न था और वे सदैव एक दूसरे के मान-मर्दन का अवसर ढूँढा करते थे। द्वितीय, उत्तर की समस्याओं में उलझे रहने के कारण जहाँगीर दक्षिण की ओर अधिक ध्यान भी नहीं दे सकता था। १६०६ ई० में उसके ज्येष्ठ पुत्र खुसरो ने विद्रोह कर दिया। उधर फारस के बादशाह ने कन्दहार पर घेरा डाल दिया। साम्राज्य के सारे साधन इन्हीं आपत्तियों का सामना करने में लगे रहे। दो वर्ष तक दक्षिण की प्रायः उपेक्षा ही होती रही। मलिक अम्बर को अवसर मिला। १६०७ ई० में वह राजू के विरुद्ध फिर बढ़ा और उसके दुर्ग पर विजय प्राप्त कर उसे तब

उसकी सारी सम्पत्ति को अपने अधिकार में कर लिया। उधर से निश्चिन्त हो उसने मुग़लों की ओर ध्यान दिया। पारस्परिक फूट एवं आन्तरिक कलहों के कारण शाही दल का उसके विरुद्ध सम्मिलित होकर मोर्चा लेना प्रायः असम्भव हो था। फलतः वह साहसी सामन्त शीघ्र गति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर बढ़ता और मार्ग में स्थित सारी छावनियों पर अधिकार करता गया। अल्प काल में ही उसने अपने उन क्षेत्रों पर जो मुग़लों के हाथों में चले गए थे, एक बार पुनः अपनी सत्ता स्थापित कर ली। ख़ानख़ाना अब बड़ी दयनीय स्थिति में पड़ गया। पीछे हट आने के अतिरिक्त उसे अन्य कोई मार्ग नहीं दिखाई देता था।

ख़ानख़ाना की मलिक अम्बर के हाथों जो दुर्दशा हो रही थी, उसके लिए अंशतः वह स्वयं उत्तरदायी था। यह सत्य है कि उसे अपने अधीनस्थों का पूर्ण एवं हार्दिक सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा था। जहाँगीर भी अपनी उत्तर की समस्याओं में व्यग्र रहने के कारण उसे वांछित सहायता नहीं भेज सकता था। किन्तु यही परिस्थितियाँ तो १६०५ ई० में भी थीं। ख़ानख़ाना के पास अब भी वे सभी साधन उपलब्ध थे जिनके बल पर उसने मलिक अम्बर को अब तक आगे बढ़ने से रोक रखा था। तो फिर इतने शीघ्र घटनाएँ क्यों विकराल रूप धारण करने लगीं! इसका यही उत्तर हो सकता है कि ख़ानख़ाना जान बूझ कर अकर्मण्यता दिखा रहा था। जहाँगीर ने उसकी जिन आशंकाओं की ओर अपनी आत्मकथा में संकेत किया है वे आश्वासन प्राप्त हो जाने पर भी उसके हृदय से न जा सकीं थीं। ख़ानख़ाना समझता था कि यदि दक्षिण में साधारण स्थिति बनी रहेगी तो मुग़ल

सम्राट उसको अनुपयोगी समझ वापस बुला लेगा। वह अपने पद पर तभी सुरक्षित रह सकता था जब वहाँ की दशा भयावह बनी रहती। जहाँगीर तभी तो यह अनुभव करता कि उन विकट समस्याओं को सुलझाने के लिए खानखाना ऐसे अनुभवी व्यक्ति का वहाँ रहना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

खानखाना का वापस बुलाया जाना तथा दक्षिण में उसकी पुनर्नियुक्ति

कुछ भी हो, खानखाना अब अपने पद पर अधिक दिनों तक न टिक सका। दक्षिणियों को निरन्तर आगे बढ़ता देख आगरे में मुगल-शासक सशंकित हो उठे। चारों ओर कानाफूसियाँ होने लगीं कि इन सबका मूल कारण खानखाना की अकर्मण्यता ही है। इस बीच मिर्जा इराज ने सीमास्थित हाँकर नामक दुर्ग पर अधिकार कर शाही दल के आँसू पोंछने के प्रयत्न किए, किन्तु इससे भी मुगलों की लुप्त प्रतिष्ठा दक्षिण-देश में पुनः न स्थापित हो सकी अन्त में जहाँगीर ने खानखाना को वापस बुला लेने में ही साम्राज्य का हित समझा। उसने एक शाही फरमान खानखाना के नाम बुरहानपुर भेजा जिसमें उसे आदेश दिया गया था कि वह दरबार में शीघ्रातिशीघ्र उपस्थित हो। उस फरमान की भाषा जानबूझ कर ऐसी रखी गई थी जिसमें प्रापक के हृदय पर सहसा कोई आघात न पहुँचे। जहाँगीर ने लिखा था कि उसे आश्चर्य है कि उसका पूर्व संरक्षक अपने शिष्य के राज्यारोहण पर उसे बधाई देने के हेतु अभी तक स्वयं दरबार में क्यों नहीं उपस्थित हुआ। चतुर एवं अनुभवी खानखाना ने तुरन्त उसका वास्तविक

आशय ताड़ लिया। उसने दक्षिण का शासन-भार मिर्ज़ा ईरीज को सौंपा और स्वयं दक्षिण देश की अनुपम वस्तुओं को सम्राट के उपहारार्थ साथ लेकर आगरा की ओर प्रयाण कर दिया[१]।

यह घटना जहाँगीर के राज्य-काल के तृतीय वर्ष की है। रबीउल आखिर की चौबीसवीं तारीख थी और दिन का प्रथम प्रहर। खानखाना जहाँगीर की सेवा में उपस्थित हुआ। वह दृश्य बड़ा ही मर्मस्पर्शी था। भावुक संरक्षक अपने पूर्व शिष्य को शाही वेश-भूषा में देख सुख-विभोर हो उठा। उसे मर्यादा का तनिक भी ध्यान न रहा और वह सहसा सम्राट के चरणों पर गिर पड़ा। कृपालु स्वामी ने अविलम्ब उसका सिर पृथ्वी पर से उठा लिया और गद्गद् हो हृदय से लगा उसका मुख चूम लिया। कालान्तर में जहाँगीर ने इस घटना का वर्णन करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा, "हर्षोल्लास से वह इतना विह्वल हो उठा था कि उसे यही न भान रहा कि वह सिर से चल कर आया है या पैरों से"। तत्पश्चात् खानखाना ने सम्राट को विभिन्न बहुमूल्य उपहार भेंट किए जिनमें अकेले जवाहिरातों का ही मूल्य तीस लाख रुपया था[२]।

नीति-कुशल खानखाना अपने स्वामि-भक्ति एवं निष्ठा के प्रदर्शन से शीघ्र ही बादशाह का पुनः कृपा-पात्र बन गया। इस बीच दक्षिण से प्रायः नित्य ही कोई न कोई चिन्ताजनक समाचार दरबार में पहुँचते रहते। चकित सम्राट अपने प्रवीण सेना-नायकों की गोष्ठियाँ बुलाता

---

१. म० उ० भाग २, पृ० ३१८
२. तु० ज० भाग १, पृ० १४७-१४८, इकबालनामा पृ० ३४।

उनसे परामर्श करता किन्तु कोई अंतिम निश्चय न कर पाता। ख़ानख़ाना ने इस अवसर को खोना उचित न समझा। उसने दक्षिण-विजय की एक आकर्षक योजना बादशाह के सम्मुख रखी जिससे जहाँगीर बहुत प्रभावित हुआ। ख़ानख़ाना ने एक लिखित आश्वासन भी दिया। उसमें उसने वचन दिया कि यदि दक्षिण में उस समय उपस्थित सेना के अतिरिक्त उसे बारह सहस्र अश्वारोही और दस लाख रुपए और दिए जाएँ तो वह केवल दो वर्ष के भीतर ही दक्षिण की सारी समस्याओं का सफलतापूर्वक अन्त कर देगा। उसने यह भी लिखा कि यदि उस निश्चित अवधि में वह उस कार्य को न समाप्त कर सके तो उसके साथ अपराधी का सा व्यवहार किया जावे[१]।

इस प्रस्ताव ने जहाँगीर पर जादू-सा डाल दिया। उसने आदेश दिया कि ख़ानख़ाना की माँगों की अविलम्ब पूर्ति की जाए। फ़ारस के बादशाह अब्बास ने कुछ बढ़िया नस्ल के घोड़े जहाँगीर के पास उपहार-स्वरूप भेजे थे। उनमें से एक जो बादशाह के व्यक्तिगत अस्तबल का सर्वोत्कृष्ट घोड़ा समझा जाता था, ख़ानख़ाना को भेंट किया गया। जहाँगीर ने लिखा है, "वास्तव में ऐसे सौन्दर्य एवं दीर्घाकार का अश्व भारत में कदाचित् ही कभी आया हो"। इसके अतिरिक्त जहाँगीर ने इक्कीस गजराज जिनमें "फतह" नामक वह हाथी भी सम्मिलित था जो युद्ध-कौशल में अद्वितीय समझा जाता था, ख़ानख़ाना को उपहार में दिए। कुछ समय पश्चात् बादशाह ने उसे एक मणि जड़ित खड्ग, एक प्रतिष्ठा-सूचक वस्त्र तथा एक विशेष गजराज देकर पुनः

---

१ तु० ज० भाग १, पृ० १४८-१४९।

सम्मानित किया। शीघ्र ही ख़ानख़ाना एक बार पुनः दक्षिण की समस्याओं को सुलझाने के हेतु आगरे से बुरहानपुर की ओर चल पड़ा। उसे उस प्रदेश का शासक तथा प्रधान सेनापति दोनों ही नियुक्त किया गया था। वह दरबार में केवल तीन मास और बीस दिन रहा[१]।

बुरहानपुर पहुँचने पर ख़ानख़ाना ने स्थिति को बड़ा ही विषम पाया। उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर मलिक अम्बर ने मुगलों को निजामशाही क्षेत्रों से प्रायः खदेड़ ही दिया था। उसने अम्दूर के महत्त्वपूर्ण दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया था और वहाँ के सारे गढ़-रक्षकों को अपनी रक्त-पिपासु तलवार के घाट उतार डाला था। जब उसे ख़ानख़ाना के एक सबल टुकड़ी के साथ दक्षिण की ओर बढ़ने का समाचार मिला तो उसने तुरन्त अपने पड़ोसी बीजापुर के आदिलशाह से संधि कर ली। बीजापुर का शासक भी मुगलों की दक्षिण-विस्तार-नीति से आतंकित हो उठा था। उसने अविलम्ब दस सहस्र विशिष्ट अश्वारोही अम्बर की सहायतार्थ भेजे। कुछ समय पश्चात् उसने तीन या चार सहस्र घुड़सवारों को और अपने मित्र की सेवा में भेजा। इस प्रकार दक्षिणियों ने मुगलों के विरुद्ध एक बड़ा ही सबल मोर्चा स्थापित कर लिया था। उनकी सम्मिलित वाहिनियाँ शाही सेना को कई स्थानों पर बुरी तरह पराजित कर चुकी थीं। परस्पर मतभेद एवं आन्तरिक कलह के कारण मुगल सैनिक उनके विरुद्ध अपनी समस्त उपलब्ध शक्ति का कभी प्रयोग न कर पाते। फलतः उनकी प्रतिष्ठा को दक्षिण के सभी मोर्चों पर गहरा धक्का पहुँचा था[२]।

१ तु० ज० भाग १ पृ० ७१, ७३, १२३; म० र० भाग २, पृ० ५१२
२ तजकिरात-उल मुलूक (जदुनाथ सरकार की ह० लि०, पृ० ५७६)
फ़ुतूहाते-आदिल शाही (सरकार द्वारा अनूदित पृ० २७१ अ)

मलिक अम्बर के विरुद्ध खानखाना की कार्यवाही

दक्षिण देश में पहुँचते ही खानखाना वस्तु-स्थिति को समझ गया और शीघ्र उसके सुधारने में लग गया। वह बुरहानपुर से जालनापुर गया और फिर वहाँ से अपने कप्तान जहाँगीर बेग की अध्यक्षता में एक सबल दस्ता पैथन भेजा। पैथन जहाँगीर बेग की जागीर थी और हाल ही में दक्षिणियों ने उसे अपने अधिकार में कर लिया था। मुगल-कप्तान बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु बहुसंख्यक दक्षिणियों के सम्मुख उसकी एक न चली। जहाँगीर बेग को निर्बल पड़ता देख, खानखाना ने अपने द्वितीय पुत्र दाराब को उसकी सहायतार्थ भेजा। किन्तु दाराब की भी वही दशा हुई। अन्त में कोई अन्य चारा न देख वे दोनों जालनापुर लौट आए। खानखाना को, जो स्वयं भी दाराब के जाने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र के साथ पैथन जा रहा था, यह भयकारी समाचार मार्ग में मिला।

मलिक अम्बर इस विजय से उत्साहित हो आगे बढ़ता गया। अब उसने मुगलों की छावनी जालनापुर पर धावा बोलना चाहा। किन्तु इधर खानखाना पहले से ही सावधान था। अम्बर के पहुँचने के पूर्व ही उसने मिर्जा इरीज को जालनापुर भेज रखा था। अम्बर जब जालनापुर पर आकस्मिक आक्रमण करने में विफल रहा तो वह वहाँ से मुड़ा और लगभग सोलह मील दूर कोलनगाम में डेरा डाले कुछ दिनों तक पड़ा रहा। मिर्जा इरीज को अवसर मिला। वह अपने भाई दाराब के साथ छावनी से निकला और दक्षिणियों के उस शिविर पर छापा मारा। खूब घमासान युद्ध हुआ। अम्बर बड़ी बहादुरी से लड़ा

किन्तु अन्त में पराजित हुआ। भाग्य को प्रतिकूल देख वह अपने बहुत से सैनिकों को रण-क्षेत्र में हताहत छोड़ वहाँ से भागा।

किन्तु मुगलों की इस आंशिक सफलता से अम्बर हतोत्साह न हुआ। उसने शाही सेना को इसके पूर्व कई स्थानों पर पछाड़ा था। इससे उसका आत्म-विश्वास बहुत बढ़ गया था। वह जानता था कि दक्षिणियों के प्रबल वेग के सम्मुख मुगल अधिक दिनों तक न टिक सकेंगे। अतः कुछ ही समय पश्चात् वह बीजापुरी टुकड़ियों के साथ मुगलों के विरुद्ध बढ़ा और इस बार अहमदनगर दुर्ग पर घेरा डाला। वह यातायात में विभिन्न अवरोध डालकर गढ़-रक्षकों के पास खाद्य-सामग्री ही न पहुँचने देता। रसद की कमी से दुर्ग-रक्षकों की दशा बड़ी ही दयनीय हो गई। खानखाना उन्हें सहायता भेजने का लाख उपाय करता किन्तु दक्षिणी सैनिक उसकी एक भी युक्ति न सफल होने देते। वे मुगल दस्तों पर लुक-छिप हमले करते और सामने कभी न आते। खानखाना हैरान हो गया। उसकी समझ में न आता था कि क्या करें। अन्त में उसने बुरहानपुर वापस चला जाना ही सर्वोत्तम समझा। उसने वहाँ जाकर कुछ समय तक शक्ति-संचय कर फिर अम्बर को परास्त करने का निश्चय किया। उसके हटते ही दक्षिणियों ने जालनापुर को अपने अधिकार में कर लिया।

दक्षिण-सीमा पर होने वाली मुगलों की इन पराजयों का समाचार पाकर आगरे में शाही शासन एक बार पुनः व्यग्र हो उठा। यों तो इसके कई कारण बताए जाते किन्तु मुख्य यही था कि शाहीदल में फूट होने के कारण ही ऐसे दुर्दिन देखने पड़ रहे हैं। इस उद्देश्य से

कि उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न हो और वे आदेशों का अधिक उत्तमता से पालन करें, जहाँगीर ने किसी राजकुमार को वहाँ भेजना आवश्यक समझा। परामर्शदाताओं ने भी उसके इस प्रस्ताव की पुष्टि की। अब प्रश्न यह था कि किस राजकुमार को भेजा जाए। बहुत सोच-विचार के पश्चात् पर्वेज इसके लिए उपयुक्त समझा गया। अतः खानखाना के प्रधान सेनापतित्व तथा खानदेश और बरार के शासक के अधिकारों को पर्वेज को सौंप जहाँगीर ने उसे अविलम्ब दक्षिण की ओर प्रयाण करने का आदेश दिया।

१६०९ ई० के अन्त में पर्वेज अपने संरक्षक आसफखाँ तथा साम्राज्य के सर्वोच्च अमीर (अमीर-उल-उमरा) शरीफखाँ के साथ आगरे से चला और १६१० ई० के प्रारंभ में ही बुरहानपुर पहुँच गया। उसके साथ एक सहस्र अहदी तथा अन्य कितने मनसबदारों के सिपाही भी गए थे। किन्तु राजकुमार की उपस्थिति से भी परिस्थिति में कुछ विशेष सुधार न हुआ। मुगल कप्तान अब भी पारस्परिक आलोचनाओं और टीका-टिप्पणियों में ही लगे रहते और शत्रु की ओर अधिक ध्यान न देते। उधर अम्बर की सेना उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। वह मुगलों को विभिन्न प्रकार की पीड़ाएँ देता रहता और शाही सेना उसका कुछ न बिगाड़ सकती। दक्षिणी अब भी अहमदनगर दुर्ग को घेरे पड़े थे। गढ़-रक्षकों की खाद्य-सामग्री के साथ ही उनका धैर्य भी समाप्त हो चला था। खानखाना ने परिस्थितियों से विवश होकर सम्राट से और अधिक सहायता भेजने की प्रार्थना की किन्तु जहाँगीर ने उसका कुछ भी उत्तर न भेजा।

आसफ खाँ स्थिति की गम्भीरता को समझ रहा था। जब उसने

देखा कि शाहजादा पर्वेज इस योग्य नहीं कि उसको वश में कर सके तो उसने जहाँगीर को परामर्श दिया कि वह स्वयं दक्षिण चला आए। बादशाह ने उस प्रस्ताव पर मनन किया और अपने परामर्शदाताओं से इस पर स्पष्ट सम्मति देने को कहा। दौलतखाँ लोदी के पुत्र खानजहाँ लोदी को वह बात न जँची। उस योजना की भर्त्सना करते हुए उसने कहा कि वह स्वयं दक्षिण जाने को प्रस्तुत है किन्तु सम्राट का वहाँ जाना वह उचित नहीं समझता। जब साम्राज्य के अधिकांश सामन्त वहाँ पर उपस्थित ही हैं तो बादशाह को वहाँ जाने की क्या आवश्यकता! खान जहाँ की बात से तुरन्त सभी सहमत हो गए। अतः बादशाह की आज्ञा से वह वीर सेना-नायक कुछ ही समय पश्चात् अनेक सामन्तों के साथ जिनमें राजा विक्रमजीत, शुजातखाँ तथा सैफखाँ बारहा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, दक्षिण की स्थिति को सुधारने के लिए आगरे से चल पड़ा।

किन्तु खान जहाँ के दक्षिण पहुँचने के पूर्व ही मुगलों को एक बार फिर मुँह की खानी पड़ी। १६१० ई० की वर्षा-ऋतु में खानखाना ने शत्रु पर आकस्मिक आक्रमण करने की एक योजना बनाई। वह उसे कार्यान्वित करने के हेतु बुरहानपुर से निकला। राजकुमार की सारी कुमुक उसके साथ थी। निजामशाही क्षेत्रों में से होता हुआ वह धड़ल्ले से आगे बढ़ा और अम्बर की सेना पर एकाएक छापा मारने का प्रयत्न किया। किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी वह विस्तृत योजना अन्त में विफल ही रही। अम्बर भली भाँति जानता था कि बहु-संख्यक शाही दल के साथ खुले मैदान में लोहा लेना उसके लिए बुद्धिमत्ता न होगी। उस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति में लुका-छिपी का युद्ध ही उसके लिए

अधिक उपयुक्त था। अतः उसने आमने-सामने होकर युद्ध करने की मूर्खता नहीं की। थोड़ी देर के लिए वह सामने आता, किन्तु ज्यों ही मुगल उसका पीछा करने बढ़ते, वह निकट की पहाड़ियों में नौ दो ग्यारह हो जाता। इस प्रकार लुका-छिपी खेलते वह शाही सेना को बालाघाट की दुर्गम पर्वत-मालाओं के बीच ले गया जहाँ ठीक रास्तों का पता लगाना भी उनके लिए कठिन था। इधर उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वह मुगलों का रसद पहुँचने का सारा मार्ग बन्द कर दें और उन्हें यथा-सम्भव कष्ट दें। उसके मराठे अश्वारोही जो अपने लुका-छिपी युद्ध की कला में इतिहास-प्रसिद्ध हैं, बीजापुरी सहायक सेनाओं के साथ मिलकर मुगलों को लूटने और पीड़ित करने लगे। जब कभी अवसर मिलता वे उससे बाज न आते। शाही सेना बड़ी दयनीय दशा में थी। धीरे धीरे खाद्य-सामग्री समाप्त हो चली और अकाल की नौबत आ पहुँची। चारों तरफ निराशा ही दिखाई पड़ती थी। सब से दुःख की बात तो यह थी कि ख़ानख़ाना के अधीनस्थ भी इस विपत्ति-काल में उसके विरुद्ध हो गए। सहयोग या सहायता की बात तो अलग रही, वे उस पर तरह तरह के छींटे कसने लगे। कोई उसे राज्य द्रोही बतलाता, कोई जल्दबाज तथा अयोग्य। चारों ओर से यही आवाज आती कि सेनापति की मूर्खतापूर्ण योजना के कारण ही उनकी यह दशा हो रही है। अब ख़ानख़ाना के सारे प्रस्तावों की खिल्ली उड़ाई जाती। इन विषम परिस्थितिओं में ख़ानख़ाना के सम्मुख पीछे हट आने के अतिरिक्त रक्षा का अन्य कोई उपाय न था। किन्तु वह भी तो सरल न था। अन्त में विवश हो उसे अम्बर से संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। अम्बर की मुँह-माँगी शर्तें स्वीकार कर और संधि-

पत्र पर हस्ताक्षर कर ख़ानख़ाना बुरहानपुर लौट आया।

ख़ानख़ाना के पीछे हटते ही अहमदनगर का दुर्ग भी मुगलों के हाथ से छिन गया। दक्षिणियों ने इस पर लम्बी अवधि से घेरा डाल रखा था और उनकी नाके बन्दियों तथा प्रबल प्रहारों के कारण दुर्ग-रक्षक बड़ी विषम स्थिति में पड़े हुए थे। अभी तक उनका साहसी गढ़पति उन्हें बराबर धैर्य देता रहा था कि ख़ानख़ाना उन्हें शीघ्र सहायता भेजेगा। किन्तु जब उन्हें उक्त घटना ज्ञात हुई तो वे बड़े निराश हुए। उनकी खाद्य-सामग्री समाप्त-प्राय थी और खाली पेट दुर्ग की रक्षा सम्भव न थी। वे किलेदार ख्वाजा बेग सफवी से बार बार आग्रह करने लगे कि वह तुरन्त गढ़ समर्पण कर दे। उस वीर फ़ारसी ने उन्हें बहुतेरा समझाया, दिलासा दी, किन्तु परिस्थितिओं के सम्मुख उसे झुकना पड़ा। अंत में इस शर्त पर कि उन्हें सुरक्षित बुरहानपुर चला जाने दिया जाए, उसने उस दुर्ग को दक्षिणियों को सौंप दिया।

वर्षा-काल के मध्य में दक्षिणियों पर आकस्मिक आक्रमण, अपने सैन्यदल के हेतु साथ में आवश्यक सामग्री न ले जाने की असावधानी तथा अहमदनगर किले में चिरकाल से घिरे हुए विपत्ति-ग्रस्त दुर्ग रक्षकों को तुरन्त सहायता न भेजना, ख़ानख़ाना के इन कृत्यों की मध्यकालीन तथा आधुनिक सभी इतिहासकारों ने एक स्वर से कटु आलोचनाएँ की हैं। जहाँगीर भी उसे इन दोषों से सर्वथा बरी नहीं समझता था। लोग उस पर विभिन्न आरोप लगाते हैं। कोई उसे अदूरदर्शी तथा उतावला कहता है और कुछ के मतानुसार वह एक घृणित राजद्रोही था जिसने जानबूझकर दक्षिण में मुगलों की प्रतिष्ठा पर

धक्का लगवाने का प्रयत्न किया। किन्तु यदि हम शान्त एवं तटस्थ रूप से उक्त घटना संबंधी सारी उपलब्ध सामग्रियों का परीक्षण करें तो इसमें से अधिकांश आरोप निराधार ही सिद्ध होंगे।

प्रथम, ख़ानख़ाना ने वर्षा के मध्य में दक्षिणियों पर जो आकस्मिक आक्रमण किया, उसका एक मात्र उद्देश्य था शत्रु पर ऐसे समय प्रहार करना जब कि उन्हें उसकी कल्पना भी न होती। यदि वह अधिक उपयुक्त ऋतु की प्रतीक्षा करता तो शत्रु को अपनी शक्ति वृद्धि का और अवकाश मिल जाता और तब राजकुमार की कुमक उन नित्य-प्रति बढ़ते हुए दक्षिणियों के सम्मुख अपर्याप्त सिद्ध होती। शाहज़ादे और उसके दल के आ जाने से सेनापति की स्थिति सुदृढ़ हो गई थी और वह पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ आक्रमण कर सकता था। यदि वह विलम्ब करता तो अवसरवादी शत्रु को मन चाहा अवसर मिल जाता और बाद में अम्बर के आक्रमण करने पर शाही सेना को बड़ी विषम स्थिति का सामना करना पड़ता। द्वितीय, ख़ानख़ाना ने दो वर्ष की अवधि में दक्षिण की समस्याओं का सफलतापूर्वक अन्त कर देने का जो वचन दिया था उसका भी तो उसे निरन्तर ध्यान था। वह अवधि अब समाप्त हो चली थी और यदि वह इस प्रकार उतावली से काम न लेता तो लोग उसे केवल डींग हाँकनेवाला ही समझते। इसके पहले ही उसके प्रतिद्वन्द्वी सामन्त एक विशाल वाहिनी के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान कर चुके थे। ऐसी परिस्थिति में कोई भी सामान्य सेना नायक अपने वचन और प्रतिष्ठा की रक्षार्थ ऐसा कदम उठा सकता था। तृतीय, ख़ानख़ाना अपने साथ पर्याप्त रसद इसलिए नहीं ले गया क्योंकि उसके सहयोगियों ने जाते समय आश्वासन दिया था कि वे बुरहानपुर से

लगातार उसके पास आवश्यक सामग्रियाँ भेजते रहेंगे। वैसे वह जाने में झिझक रहा था[१]। किन्तु जब कप्तानों ने बार बार आग्रह किया तो उसे जाना ही पड़ा। सम्भवतः ख़ानख़ाना की यह दुर्दशा उनकी कपटपूर्ण चालों के कारण ही हुई। उनमें से अधिकांश ख़ानख़ाना के निकटतम समकक्ष थे और राजकुमार पर सेनापति के अत्यधिक प्रभाव को देखकर जलते थे। अन्तिम, यदि ख़ानख़ाना कपटी तथा विश्वासघाती होता तो जहाँगीर उसे बार बार दक्षिण-कमान क्यों सौंपता? वह मुगल सम्राट आत्म-कथा में स्वयं लिखता है कि, "यद्यपि यह अविश्वसनीय प्रतीत होता था, तो भी अन्त में मेरे मस्तिष्क में यही धारणा बन गई"। वास्तव में ख़ानख़ाना के प्रतिद्वन्द्वी सामन्त जब कभी अवसर मिलता, सेनापति के विरुद्ध जहाँगीर के कान भरा करते। उनमें ख़ानजहाँ मुख्य था। वह दक्षिण-कमान की सर्वोच्च सत्ता अपने हाथों में लेना चाहता था। सौभाग्य से उस पर उस समय जहाँगीर की कृपा-दृष्टि भी थी। बादशाह प्रेम-वश उसे 'फर्जन्द' कह कर पुकारता था। वह बार बार जहाँगीर से कहता कि दक्षिण में मुगलों की जो दुर्दशाएँ हो रही हैं, उन सबका उत्तरदायी ख़ानख़ाना है। वह दक्षिणियों से मिलकर चाल चला करता है। बादशाह बिना पूछ-ताँछ किए ही अपने प्रिय फर्जन्द की बात पर विश्वास कर गया। चापलूसों से अवकाश पाता तब तो उसे वास्तविकता ज्ञात होती।

संक्षेपतः ख़ानख़ाना की इस दुर्भाग्य पूर्ण असफलता का मुख्य कारण था, मुगल सरदारों का पारस्परिक वैमनस्य। किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भयानक वर्षा-ऋतु में अपनी

१ म० र० भाग २, पृ० २१६।

सामर्थ्य को ठीक समझे बिना शत्रु पर आकस्मिक आक्रमण कर ख़ानख़ाना ने सेनापतित्व की एक बहुत बड़ी भूल की। झूठी आत्म-प्रतिष्ठा एवं आत्म-विश्वास ने उसे अन्धा कर दिया था। उसे यह नहीं सूझा कि लुका-छिपी की युद्ध-कला में सिद्धहस्त शत्रु उससे कहीं अधिक गतिशील था और दक्षिण के पर्वतीय प्रदेशों में शीघ्रगामी मराठे अश्वारोही जो युद्ध-कौतुक दिखा दे सकते थे उनका सामना करना मुगल अश्वारोहियों के वश की बात न थी। हार्दिक सहयोग पाने पर भी ख़ानख़ाना उस आकस्मिक आक्रमण में सफल होता, इसमें भी सन्देह था।

ख़ानख़ाना का वापस बुलाया जाना

ख़ानख़ाना के अधीनस्थ, दक्षिण-कमान के शाही सरदार बादशाह को पहले ही लिख चुके थे कि आए दिन मुगलों को जो आपत्तियाँ देखनी पड़ रही हैं वे मुख्यतः सेनापति की अयोग्यता, उतावलापन और विश्वासघात के कारण हैं। ख़ानजहाँ भी वहाँ पहुँचकर उनके स्वर में स्वर मिला वही राग आलापने लगा। उसने जहाँगीर को लिखा कि यदि दक्षिण-विजय का कार्य शीघ्र समाप्त करना है तो या तो ख़ानख़ाना को अकेले वहाँ के कमान की पूर्ण सर्वोच्च सत्ता सौंप दी जाए या फिर उसे वापस बुला लिया जाए और वह सत्ता उसे (ख़ानजहाँ को) सौंपी जाए। अपनी सम्मति को विशेष प्रभावशाली बनाने के लिए उसने वचन दिया कि यदि सर्वोच्च सत्ता के अतिरिक्त उसे, तीस सहस्र अश्वारोही और दिए जाएँ तो

दो वर्ष के भीतर ही वह अहमदनगर एवं बीजापुर दोनों को मुगल-अधिकार में कर लेगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि वह निश्चित अवधि के भीतर अपना वचन पालन न कर सके तो फिर वह दरबार में अपना कभी मुहँ नहीं दिखाएगा[१]।

पूर्व की भाँति इस बार भी उसकी सम्मति अविलम्ब स्वीकृत हुई। दक्षिण-कमान को सर्वोच्च सत्ता ख़ानजहाँ को दी गई, खान आजम को भेजा गया कि वह दक्षिण जाकर खानजहाँ के इस नए दायित्व में योग दे और महावतखाँ को आदेश मिला कि वह दक्षिण में निकट भूत में हुई मुगल-अपराजयों के कारणों का पता लगाए तथा पदच्युत सेनापति को शाही दरबार में लाकर उपस्थित करे[२]।

महावतखाँ ने शीघ्र ही उस आदेश का पालन किया। ख़ानख़ाना को साथ ले वह आगरे पहुँचा और सारा कच्चा चिट्ठा बादशाह के सम्मुख रखा। किन्तु जहाँगीर अपने पूर्व अभिभावक से इतना चिढ़ा हुआ था कि कई दिनों तक तो उसे राजधानी में प्रवेश ही नहीं करने दिया। अंत में जब बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् वह दरबार में आने पाया तो बादशाह उससे बड़े अन्यमनस्क भाव से मिला[३]। थोड़े ही दिन पश्चात् खानखाना के दोनों पुत्र इरीज और दाराब भी दरबार में उपस्थित हुए, किन्तु उनके प्रति जहाँगीर का व्यवहार सर्वथा भिन्न था। उन दोनों युवकों ने दक्षिण में

१. तु० ज० भाग १ पृ० १७१।
२. वही, पृ० १७८, म० ए० भाग २, पृ० ११६।
३. वही, पृ० १७८, म० ए० भाग २, पृ० ११६।

साम्राज्य की जो प्रशंसनीय सेवाएँ की थीं, उनके उपलक्ष्य में उन्हें बहुत से पारितोषिक एवं उपहार भेंट में मिले। मिर्जा इरीज, शाह नवाजखाँ की उपाधि से विभूषित किया गया और दाराब को गाजीपुर की जागीर देकर सम्मानित किया गया[१]।

दक्षिण से वापस बुलाए जाने के पश्चात् खानख़ाना कुछ समय तक दरबार में ही रहा। बादशाह का कोप-भाजन बन वह सदैव चिन्ता-ग्रस्त रहता था। इसी मध्य काबुल में वहाँ के शाही गवर्नर खान दौरान की अकर्मण्यता एवं अनुपस्थिति से लाभ उठा, अहमद नामक अफ़गानी नेता ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। जब वहाँ की अल्पसंख्यक मुगल सेना उसके दमन में असमर्थ रही तो जहाँगीर ने खानख़ाना को जो इस समय बेकार था, वहाँ भेजने का निश्चय किया। किन्तु पंजाब के राज्यपाल कुलीजख़ाँ को यह बात अच्छी न लगी अतः यह प्रस्ताव रद हो गया। इसके बदले खानख़ाना को आगरा प्रान्त में कालपी तथा कन्नौज की जागीर दी गई और आदेश मिला कि वह वहाँ के विद्रोहियों का दमन करे तथा उस विपत्ति-ग्रस्त क्षेत्र में शान्ति की पुनः स्थापना करे[२]।

किन्तु कमान के हस्तान्तर से भी दक्षिण-मोर्चे की दयनीय स्थिति में कोई सुधार न हुआ। मुगल अधिकारियों का पारस्परिक वैमनस्य अब भी प्रगति के मार्ग में सब से बड़ा अवरोध था। खानजहाँ ने स्थिति-सुधार का भरसक प्रयत्न किया किन्तु पारस्परिक ईर्षा रूपी प्राचीन रोग का निवारण उसके वश का नहीं था। एक वर्ष व्यतीत

१. तु० ज० भाग १, पृ० १०८, म० उ० भाग २, पृ० ८१६।
२. तु० ज० भाग १ पृ० १५८-१५६।

हो चला किन्तु खानजहाँ की वह प्रतिज्ञा अभी स्वप्न ही थी।

इधर जहाँगीर दक्षिण-विजय का कार्य शीघ्रातिशीघ्र, समाप्त करने को उतावला हो रहा था। जब उसने देखा कि खानजहाँ विलम्ब कर रहा है तो उसने उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरी बृहत् योजना बनाई। इसको कार्यान्वित करने के लिए बड़े बड़े सरदारों की नियुक्ति हुई। अब्दुल्ला ग्वाँ, जिसने हाल में ही मेवाड़-युद्ध में बड़ा करतब दिखाया था, गुजरात का राज्यपाल नियुक्त हुआ और उसे आदेश मिला कि वह वहाँ से एक सुसज्जित सैन्य के साथ नासिक और त्रिम्बक के मार्ग से अम्बर के विरुद्ध बढ़े। दक्षिण में नियुक्त खानजहाँ तथा अम्बेर के राजा मानसिंह आदि सेना-नायकों को आदेश भेजा गया कि वे भी एक बृहत् सैन्य-दल के साथ बरार के मार्ग से अग्रसर हों। उक्त दोनों सैन्यदल एक दूसरे को अपनी गति-विधि की सूचना देते रहें और एक पूर्व निश्चित समय पर दोनों दल दो ओर से मलिक अम्बर पर सहसा आक्रमण कर दें। किन्तु दुर्भाग्यवश यह अलबेली योजना भी अन्त में असफल ही रही। अब्दुल्लाखाँ को अपने बाहुबल पर बड़ा गर्व था। वह विजय का सारा श्रेय स्वयं अकेले ही लेने को चिन्तित था। अतः उसने बरार से आनेवाली सेना की न कभी परवाह की, न प्रतीक्षा ही। धड़ल्ले से आगे बढ़ता हुआ वह शत्रु-क्षेत्र में पहुँचा और धावा बोल दिया। मलिक अम्बर को सुअवसर मिला। उसने फिर वही पुरानी चाल बरतनी शुरू की। लुका-छिपी खेलता वह मुगलों को दुर्गम पर्वत-मालाओं के मध्य ले गया जहाँ से बाहर निकलना उनके लिए सरल न था। अब उसके मराठे अश्वारोही शाही सेना को तरह तरह से तंग करने लगे। उनके रसद

का मार्ग बन्द कर दिया, उनके सामान को लूटा पाटा और उन पर चारों ओर से गोलियों की बौछार बरसाने लगे। अब्दुल्ला खाँ जब निज़ामशाही राज्य की राजधानी दौलताबाद पहुँचा तो उसने अपने को बड़ी विषम स्थिति में पाया। उस मदान्ध सेनापति को अब अपनी भूल ज्ञात हुई और उसने पीछे हटने की सोची। किन्तु भला दक्खिणी उसे कब सुरक्षित लौटने देते। उन्होंने उसे खूब परेशान किया। अन्त में भारी धन-जन की क्षति सहता हुआ उसने किसी प्रकार बालाघाट को पार कर बगलाना के मित्र-प्रदेश में पहुँच कर सांस ली। उधर बरार वाली सेना को इन सब बातों का कुछ पता ही न था। वह तो पीछे पड़ी हुई अब भी अब्दुल्ला खाँ के प्रयाण की सूचना की प्रतीक्षा कर रही थी। जब उन्हें उक्त घटना ज्ञात हुई तो वे निराश हो शाहज़ादे के पास आदिलाबाद लौट आए।

इस योजना की असफलता से जहाँगीर को गहरी ठेस पहुँची। भावावेश में उसने एक बार पुनः निश्चय किया कि वह स्वयं दक्षिण जाकर वहाँ की कमान सम्हालेगा किन्तु चापलूसों के बहकाने में आकर उसे फिर वह विचार त्यागना पड़ा। वैसे भी वह अपनी सामरिक सामर्थ्य की सीमाओं को ध्यान में रखकर ऐसा कदम उठाने में हिचकता था। किन्तु दक्षिण की समस्या तो सुलझानी ही थी। वह सोचने लगा कि अब किसे वह दायित्व सौंपा जाए। साम्राज्य के सभी लब्ध-प्रतिष्ठ सेनानायक अपना अपना बल आजमा चुके थे किन्तु मलिक अम्बर का बाल तक बांका न हो सका था। खानजहाँ की डींगे तथा अब्दुल्लाखाँ की गर्वपूर्ण उक्तियाँ सभी धूल में मिल चुकी थीं। मानसिंह, वीरसिंहदेव तथा खान ज़मान प्रभृति यशस्वी

सेनानायक भी उस निज़ाम शाही सामन्त का कुछ न बिगाड़ सके थे। शाही सेना दक्षिण के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में प्रायः अपने को असमर्थ पाती थी। तो फिर अब क्या किया जाए! चिन्तित सम्राट ने शुभचिन्तकों से परामर्श किया और कहा कि वे किसी ऐसे योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति को बतावें जो किसी प्रकार दक्षिण में मुगल-प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना कर सके।

ख़ानख़ाना की दक्षिण में पुनर्नियुक्ति

अब प्रत्येक को अपयश-भागी ख़ानख़ाना का मूल्य ज्ञात हुआ। दक्षिण की स्थिति पर विचार करने के लिए जो गोष्ठी बुलाई गयी थी उसका एक सदस्य ख्वाजा अबुल हसन था। वह दक्षिण के मोर्चे की सारी समस्याओं का अध्ययन कर अभी ही लौटा था। उसने बड़ी प्रभावपूर्ण भाषा में गोष्ठी के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि उस मोर्चे पर ख़ानख़ाना की पुनर्नियुक्ति की जाए। उसके मतानुसार ऐसा कोई सामन्त नहीं था जिसे दक्षिण की स्थिति का ख़ानख़ाना के समान विशद ज्ञान हो और जो वहाँ की समस्याओं को सुलझाने में उससे अधिक प्रवीण हो। बहुमत ने अबुल हसन के प्रस्ताव का समर्थन किया और जहाँगीर ने उसे स्वीकार कर लिया। उसने ख़ानख़ाना को कन्नौज की जागीर से बुलवाकर बहुमूल्य उपहार भेंट किए और पदोन्नति कर उसे एक बार पुनः दक्षिण का प्रधान सेनापति नियुक्त किया।

ख़ानख़ाना के वे दो वर्ष जो उसने पदच्युत सेनापति के रूप में



वृद्धावस्था में रहीम

(भारत-कला-भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सौजन्य से प्राप्त।)

उत्तर भारत में व्यतीत किए, उसके व्यस्त जीवन के बहुमूल्य क्षण थे। यही समय था जब कि उसने हिन्दी-साहित्य को अपनी कतिपय अमर कृतियों द्वारा समृद्धिशाली बनाया। उसके काव्य-बद्ध हृदयोद्गार उसकी तत्कालीन मनःस्थिति का बड़ा सजीव चित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

ख़ानख़ाना की दानशीलता भारत-प्रसिद्ध थी। वह 'न' कहना तो जानता ही नहीं था। सारी संचित धन-राशि मुक्त हाथों से दान देने में शीघ्र समाप्त हो गई। आय का कोई साधन था ही नहीं किन्तु याचकों को इन सब का क्या पता! वे तो 'कल्पतरु' रहीम को अब भी घेरे रहते। अन्त में मुक्ति का अन्य मार्ग न देख विवश रहीम को याचकों से कहना ही पड़ा :—

ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं॥

किन्तु याचकगण उसका पीछा कब छोड़ते। एक दिन एक व्यक्ति का आर्तनाद ख़ानख़ाना से न सुना गया। उसको द्रव्य की अत्याधिक आवश्यकता थी, किन्तु ख़ानख़ाना असमर्थ था। ऐसे समय उसे अपने मित्र रीवाँ नरेश की याद आई। बस क्या था यह दोहा लिखकर उस याचक को रीवाँ भेज ही दिया:—

'चित्रकूट में रम रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देश॥'

रीवाँ-नरेश इस काव्य-कल्पना से बड़ा प्रभावित हुआ। कहते हैं कि उसने एक लाख रुपया उस याचक को देकर विदा किया।

कदाचित् इसी अवकाश काल में रहीम ने कुछ भक्ति रस के 'बरवै' रचे और उन्हें तुलसीदास के पास भेजे।

खैर ! भाग्य ने पलटा खाया और जहाँगीर के शासन काल के सातवें वर्ष में खानखाना बहुमूल्य उपहारों तथा छः हजारी मनसब से सम्मानित हो एक बार फिर दक्षिण की कमान सम्हालने चला। उसके साथ अबुलहसन और उसके पुत्र भी अनेकों प्रतिष्ठाओं से विभूषित कर भेजे गए। शाहनवाज खाँ को तीन हजारी मनसब तथा दाराब को दो हजारी मनसब मिला[१]।

बुरहानपुर पर पहुँच खानखाना ने इस बार बड़ी सावधानी तथा सतर्कता की नीति अपनाई। 'दूध का जला मट्ठा भी फूँक फूँक कर पीता है।' पूर्व कालीन भूलों के फलस्वरूप उसे जो दुर्दिन देखने पड़े थे, उनकी स्मृति उसके मस्तिष्क में अब भी हरी भरी थी। वह उतावली में कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहता था जिससे उन कटु अनुभवों की पुनरावृत्ति हो। उसने ठीक ही सोचा कि यदि उसे अपने मन्तव्य में सफल होना है तो सर्व प्रथम वह अपने घर की स्थिति सुधारे। वह खूब समझता था कि भूतकाल में मुगलों की जो पराजयें हुई हैं वे मुख्यतः मलिक अम्बर की प्रतिभा अथवा शक्ति के कारण नहीं अपितु पारस्परिक फूट के कारण हुई हैं। यदि उसे अपने साथियों का पूर्ण तथा हार्दिक सहयोग प्राप्त हो तो अम्बर को नतमस्तक होने में कितनी देर लगेगी। भाग्य ने भी खानखाना का साथ दिया। अल्पकाल ही में उसके तीन मुख्य प्रतिद्वन्द्वी, आसफ खाँ, जफरबेग तथा मानसिंह इस

---

१ मु० ज० भाग १ पृ० २२१-२२२।

संसार से चलते बने और खान आजम मेवाड़ के मोर्चे पर भेज दिया गया। खानखाना के सम्मुख अब निष्कंटक मार्ग था।

शाहनवाज़ का मलिक अम्बर पर आक्रमण

खानखाना की ग्रहदशा इस समय अच्छी थी। गृह-कलह से निश्चिन्त हो अब वह शत्रु की ओर उन्मुख हुआ। सौभाग्य से रिपु-दल में आए दिन खूब दलबन्दियाँ चल रही थीं। वहाँ राजपूतों का एक ऐसा गुट था जो मलिक अम्बर से असन्तुष्ट होने के कारण गुप्त षड्यंत्र द्वारा उसका वध कर स्वयं सत्तारूढ़ होने का प्रयत्न कर रहा था। वह षड्यंत्र तो सफल न हो सका किन्तु उसके भंडाफोड़ से मुगलों को यह ज्ञात हो गया कि मलिक अम्बर के विरुद्ध भी कुछ लोग हैं। मुगल सेनापति ने शत्रु के इस पारस्परिक फूट से पूरा लाभ उठाया। उसने कूटनीति द्वारा उस विद्रोह को और भड़काना प्रारंभ किया। इसके फलस्वरूप निजामशाही राज्य के कुछ शक्तिशाली सरदार जिनमें आदम खाँ, याकूब खुदावंद खाँ तथा यादव राव के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, मुगलों की ओर आ गए। शाहनवाज़ खाँ ने, जो उस समय बालापुर शिविर का सेना-नायक था, उनकी बड़ी आव-भगत की और उनमें से प्रत्येक को उनकी श्रेणी के अनुसार द्रव्य, हाथी, घोड़े तथा सम्मान-सूचक वस्त्र आदि भेंट किए[१]।

इसी मध्य इधर जहाँगीर ने दक्षिण मोर्चे के हेतु कई कुमकें भेजीं। उन दलों में अब्दुल्ला, महाबतखाँ, खानजहाँ लोदी, अब्दुल्लाखाँ

१. तु० ज० भाग १, पृ० २७९, ३१२, ३१६; म० उ० भाग २ पृ० ४२२-४२६।

फ़ीरोज़ जंग, राजा मानसिंह के पुत्र भाऊसिंह, राजा सूरजसिंह, राय रतन तथा बीरसिंह बुन्देला प्रभृति लब्ध प्रतिष्ठ सेना-नायक थे। उनको आदेश था कि वे सीधे बुरहानपुर जाकर ख़ानख़ाना से मिलें और उसके सहयोग से शत्रु-विनाश करें। ख़ानख़ाना को भी आदेश मिला कि वह इन सामन्तों का साहचर्य्य प्राप्त कर दक्षिण-विजय में जी जान लगा दे[१]।

कतिपय दक्षिणी सरदारों के मुगल-पक्ष में आ जाने से शाहनवाज़ का पलड़ा और मजबूत हो गया। इधर उसके दोनों भाई, दाराब तथा रहमान दाद भी कुमकें लेकर आ पहुँचे थे। बस क्या था, उसने निजामशाह की तत्कालीन राजधानी खिड़की की ओर कूच कर दिया जहाँ मलिक अम्बर चालीस सहस्र अश्वारोहियों के बल पर मुगलों को अपने क्षेत्र से भगा देने की योजना बना रहा था। उस हब्शी सरदार ने अपने पड़ोसियों से पहले ही संधि कर रखी थी। उसकी शर्तों के अनुसार बीजापुर ने बीस सहस्र तथा गोलकुंडा ने पाँच सहस्र अश्वारोही उसकी सहायतार्थ भेजे थे। बरीदशाह भी यथाशक्ति हायता देने में पीछे नहीं था। जब अम्बर को शाहनवाज़ के खिड़की की ओर प्रयाण करने की सूचना मिली तो उसने पन्द्रह सहस्र अश्वारोहियों का एक विशाल दस्ता अपने विश्वस्त सेना-नायकों की अध्यक्षता में जिनमें महलदार ख़ाँ, आतश ख़ाँ, दिलावर ख़ाँ तथा बिजली ख़ाँ प्रमुख थे, लुका-छिपी के चालों द्वारा मुगलों को तंग करने के लिए भेजा[२]।

किन्तु शाहनवाज़ ख़ाँ इन सब के लिए पहले से ही तैयार था।

---

१. म० ए० भाग २ पृ० २२२।
२ म० ए० भाग २ पृ० २२३—२२४।

जैसे ही वह जालना से आगे बढ़ा और शत्रु के भावी विरोध की सूचना मिली, उसने अपने छोटे भाई दाराब खाँ को एक दस्ते के साथ दक्खिणियों की ओर भेजा। आमना-सामना होते ही दोनों दलों में जो घोर युद्ध हुआ वह अविराम गति से तड़के प्रातःकाल से लेकर शाम को अंधकार होने तक चलता रहा। अन्त में दक्खिणी पराजित हो रण-क्षेत्र से भागे। किन्तु लुक-छिपकर आक्रमण करने में वे अब भी न चूकते थे। मलिक अम्बर से टक्कर लेने के पूर्व मार्ग में ही शाहनवाज़ को दक्खिणियों के चार या पाँच छिट-पुट हमलों का सामना करना पड़ा[१]।

किन्तु इतने पर भी दक्खिणी शाहनवाज़ की प्रगति को न रोक सके। अम्बर बहुत घबड़ाया। अब मुगलों से उसे स्वयं ही लोहा लेना था। अतः वह उस सम्मिलित वाहिनी को साथ ले मार्ग ही में शाही सेना का सामना करने के लिए अपनी राजधानी से चल पड़ा। रोशनगाँव पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि वहाँ मुगल पहले ही से दक्खिणियों से मोर्चा लेने के लिए व्यूह बनाए पड़े हैं। मध्य भाग का नेतृत्व शाहनवाज़ खाँ कर रहा था और वाम तथा दक्षिण पार्श्वों का क्रमशः राजपूत तथा तुर्कमान सरदार। अग्रभाग का नेता था दाराब। दक्खिणियों की विशाल वाहिनी का, जिसमें चालीस सहस्र अश्वारोही, पाँच सौ गजराज तथा उतनी ही तोपें थीं, प्रधान सेनापति मलिक अम्बर स्वयं था[२]।

रविवार का दिन था और सन् १६१६ का फरवरी मास। लगभग तीन बजे अपराह्न काल में दोनों पक्षों की मुठभेड़ हुई और रक्तमय युद्ध प्रारम्भ हो गया। दक्खिणियों ने विशाल गजराजों की

१ म० उ० भाग २ पृ० ४२३–४२४।
२ म० उ० भाग २ पृ० ४२४–४२५।

आक्र से जो अग्निवर्षा प्रारम्भ की तो विरोधी दल में प्रलय-सी मच गई। जैसे जैसे सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था वैसे वैसे युद्ध की भयानकता और बढ़ती जा रही थी। दोनों पक्ष एक दूसरे से पिले पड़े थे और युद्ध का अन्त निकट न दीखता था। दाराब से यह अनिश्चितता की स्थिति बहुत देर तक न देखी गयी। वह युवक अग्र भाग से निकल शत्रु के अवरोधों को तोड़ता जान हथेली पर ले दक्खिणियों के मध्य में घुस गया। वाम पार्श्व से वीरसिंह बुन्देला ने तथा दक्षिण पार्श्व से मिर्जा सफवी ने भी उसकी सहायता की। फिर क्या था, रिपु के अग्रभाग में दाराब ने जो रक्तपात और हत्याकांड मचाया उससे उन बहु-संख्यक दक्खिणियों का भी दिल दहल गया। शीघ्र ही उनका अग्रभाग अस्त व्यस्त हो गया। उस स्थिति से लाभ उठाता हुआ दाराब और आगे बढ़ा और अब उसने उनके मध्य भाग पर धावा बोल दिया।

युद्ध अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा था। दो घंटों तक यह रक्त-ज्वाला बलती रही और दोनों ही पक्षों के रणबाँकुरों ने अपना अपना कौशल दिखलाया। अन्ततोगत्वा विजय-श्री मुगलों को ही मिली। मलिक अम्बर अपनी रक्षा-पंक्तियों को विध्वंश देख रण-क्षेत्र से मुड़ा और अपने बहुत से हताहत सैनिकों को पीछे छोड़ जान बचाकर भागा। मुगलों ने भागते हुए शत्रु का कुछ दूर तक पीछा किया किन्तु अंधकार बढ़ता देख वे अपने शिविरों को लौट आए। इस संग्राम में शाही सेना को लूट का काफी सामान मिला[१]।

---

१ म० र० भाग २, पृ० २२३-२३१; तु० ज० भाग १ पृ० ३१३-३१४।

शाहनवाज़ की यह निर्णयात्मक विजय कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इससे दक्षिण में न केवल मुगल-प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना ही हुई अपितु उस प्रदेश का सारी शक्तियों को एक भारी धक्का भी पहुँचा। कुछ समय के लिए अम्बर पंख विहीन सा हो गया। उसे और आदिलशाह को सब से अधिक गहरी क्षति पहुँची थी। अम्बर की सभी तोपें, गोलों से लदे हुए तीन सौ ऊँट, बहुत से हाथी, घोड़े और अन्य रण-सामग्री या तो युद्ध में नष्ट हो गई या मुगलों के हाथ लगी। आदिलशाह की धन से अधिक जन-क्षति हुई। जो दक्षिणी युद्ध-बन्दी हुए, उनमें अम्बर बीजापुरी, मसनदअली और बिजली खाँ प्रमुख थे। अन्तिम दोनों को प्राण दण्ड मिला।

दूसरे दिन विजयी मुगल खिड़की पहुँचे। अम्बर की पराजय से भयभीत हो बहुत से नागरिक घर-बार छोड़ भाग गए थे। शाही सेना ने उनके निवासों में कुछ समय तक विश्राम किया। कुछ मुगल दक्षिणी सरदारों से इतने चिढ़े हुए थे कि उन्होंने बड़ी क्रूरता से उनके अरक्षित भवनों को धराशायी कर भस्म-भूत कर दिया। इस प्रकार उस समृद्धिशाली नगर को भस्म कर उसे निर्जन बना शाहीदल रोहनखेड़ दर्रे से होता हुआ अपनी छावनी में लौट आया[१]।

खुर्रम की दक्षिण-कमान पर नियुक्ति

किन्तु शाहनवाज़ खाँ की उस विजय का दक्षिण-स्थिति पर कोई स्थाई प्रभाव न पड़ा। पारस्परिक वैमनस्य तथा स्वार्थ के कारण

१, म० उ० भाग २, पृ० ४२३-४३१; तु० ज० भाग १ पृ० ३१३-३१४।

मुग़ल अम्बर की पराजय से पूरा लाभ न उठा सके। यदि एकमत हो वे तत्काल आगे बढ़ते गए होते तो कदाचित् दक्षिण-विजय का कार्य शीघ्र समाप्त हो जाता। किन्तु यहाँ तो बात ही दूसरी थी। ख़ानख़ाना के सहयोगी आए दिन उस पर छींटें कसते, विभिन्न प्रकार के आरोप लगाते और उसके सारे प्रस्तावों को संदेहात्मक दृष्टि से देखते। खुलेआम कहा जाता कि ख़ानख़ाना दक्षिणियों से मिलकर रुपया खाता है, अतः उस पर विश्वास करना साम्राज्य के हित के लिए उचित नहीं[1]।

मलिक अम्बर भला इस सुअवसर से कब चूकने वाला था। उसकी कूटनीति से तथा बीजापुर के आदिलशाह के समझाने बुझाने से जो निज़ामशाही सरदार मुग़लों से जा मिले थे, वे पुनः अम्बर के पक्ष में आ गए। शीघ्र शक्ति-संचय कर और अपनी स्थिति को पूर्ववत् दृढ़ बना, वह एक बार फिर मुग़लों को दक्षिण से खदेड़ने की योजना बनाने लगा। शाहीदल की पारस्परिक फूट ने उसका कार्य और सरल कर दिया।

उक्त समाचार ने जहाँगीर को चिन्तित कर दिया। उसने सोचा कि जब तक कोई प्रबल व्यक्ति न भेजा जायगा तब तक दक्षिण समस्या का समुचित समाधान न हो सकेगा। सारे चोटी के सरदार वहाँ भेजे जा चुके थे किन्तु कोई भी शाहीदल में ऐक्य न स्थापित कर सका था। अनुभव-शून्य पच्चीस-वर्षीय राजकुमार पर्वेज़ ख़ानख़ाना के हाथ की कठपुतली था। स्वाभिमानी तथा महत्त्वाकांक्षी होने पर भी वह अपने कर्त्तव्य में सफल न हो सका था। वह भेजा गया था

१. सर टामस रो, भाग २ पृ० ३०-३१ तथा ३२७-२२८।

दक्षिण की निरन्तर गिरती हुई स्थिति को सुधारने और अपने प्रभाव-विशेष से शाही दल में ऐक्य स्थापित करने, किन्तु वह युवक अन्त में उस स्थिति का एक असहाय दर्शक ही सिद्ध हुआ, स्वामी नहीं। यह तथ्य किसी से छिपा न था। यहाँ तक कि विदेशी यात्री सर टामसरो भी जो उस समय भारत आया था, यह जान गया था कि राजकुमार तो केवल नाम-मात्र का शासक है, वास्तविक शक्ति तो खानखाना के हाथ में है।

जहाँगीर ने सोचा कि राजकुमार खुर्रम ही ऐसा उपयुक्त व्यक्ति है जो दक्षिण समस्या को सफलता पूर्वक हल कर सकता है। उसने मेवाड़ के मोर्चे पर जो पराक्रम और कूटनीति दिखलाई थी, उससे सारा दरबार प्रभावित था। वहाँ नूरजहाँ गुट का लाडला भी था। अतः बादशाह ने अब उसी को दक्षिण का प्रधान नियुक्त किया और शाहजादा पर्वेज को इलाहाबाद सूबे में भेज दिया। नूरजहाँ-गुट ने खानखाना को वापस बुला लेने का प्रस्ताव किया किन्तु बाद में जहाँगीर ने वह विचार त्याग दिया। खुर्रम को सामयिक सहायता एवं परामर्श देने के उद्देश्य से बादशाह ने कुछ समय के लिए अपनी राजधानी दक्षिण के निकट मालवा प्रदेश के मांडू में स्थापित की।

१६१६ ई० के अन्त में अपूर्व सम्मानों एवं उपहारों से बोझिल एवं 'शाहबुलन्द इकबाल' की उपाधि से विभूषित राजकुमार खुर्रम दक्षिण की ओर चला। वह अभी नर्मदा के बाएँ तट पर ही पहुँचा था कि उधर से खानखाना अपने सहयोगियों सहित शाहजादे का स्वागत करने और उसे बुरहानपुर लिवा ले जाने के लिए आगे आया। उनके साथ राजकुमार ने ६ मार्च, १६१७ ई० को बुरहानपुर में प्रवेश किया।

जहाँगीर जानता था कि खुर्रम को अपने उद्देश्य-प्राप्ति के हेतु

प्रभावशाली सामन्तों का सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त करना आवश्यक है। उसने कतिपय विश्वस्त सरदारों का एक विशिष्ट दल उसके साथ भेजा था कि वे राजकुमार का पूर्ण समर्थन करें। खानखाना के प्रति उसे शंका अवश्य थी किन्तु वहाँ से उसे हटाना भी तो सरल न था। यह तो लगभग सभी मानते थे कि ख़ानख़ाना दक्षिण-विजय की कुंजी है। उस प्रदेश का जितना ज्ञान और अनुभव उसे था, उतना कदाचित् ही किसी अन्य को था। जहाँगीर ने इस समस्या को बड़ी कूटनीति से हल किया। उसने राजकुमार को आदेश दिया कि वह बुरहानपुर पहुँच शाहनवाज़ ख़ाँ की पुत्री से अपने विवाह का प्रस्ताव ख़ानख़ाना के सम्मुख रखे। शाहजादे ने वैसा ही किया। बड़े धूम-धाम से २३ अगस्त, १६१७ ई० को यह पाणि-ग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। स्पष्टतः उस सम्बन्ध का मुख्य ध्येय राजनीतिक था और इसका प्रत्याशित फल भी मिला। राजकुमार का मार्ग अब प्रशस्त था। दक्षिण की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में उसे ख़ानख़ाना तथा शाहनवाज़ से बहुमूल्य सहायता मिली[१]।

राजकुमार उतावली कर अनावश्यक युद्ध नहीं मोल लेना चाहता था। उसने अपने दूतों को भेजा कि वे जाकर दक्षिण के शासकों से झगड़ों के निपटारे को वार्ता चलाएँ। साम्राज्य के सारे साधनों के साथ खुर्रम की वहाँ उपस्थिति, खानख़ाना की पौत्री से उसका वैवाहिक सम्बन्ध तथा बादशाह का उनके क्षेत्रों के अत्यधिक निकट आकर रहना—आदि सभी बातों ने दक्षिण के शासकों को सशंकित कर दिया था। वे समझते थे कि उनकी स्वाधीनता शक्ति-

१ इक़बाल नामा, पृ० १००; ख़ाफ़ीख़ाँ, भाग १ पृ० २९१।

पूर्ण वार्ता से ही सुरक्षित रह सकती है, हिंसात्मक संघर्षों द्वारा नहीं। अतः जब अफ़जल ख़ाँ और विक्रमाजीत उनके पास यह प्रस्ताव लेकर गए कि यदि वे कर देना तथा मुगलों के खोए हुए प्रदेशों को लौटा देना स्वीकार करें तो उन्हें न छेड़ा जायगा, तो वे तुरन्त तैयार हो गए। बीजापुर का आदिलशाह लगभग पन्द्रह लाख रुपए का उपहार—हाथी, घोड़े, जवाहरात आदि लेकर स्वयं राजकुमार की सेवा में उपस्थित हुआ। गोलकुण्डा के कुतुबशाह ने भी अपने पड़ोसी का अनुकरण कर उपहार भेजा और शाहजादे की अधीनता स्वीकार करने का वचन दिया। अब मलिक अम्बर के पास समर्पण के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था। उसने बालाघाट लौटा दिया और अहमदनगर तथा अन्य दुर्गों को वापस देने का वचन दिया। एक बार पुनः उस हब्शी सरदार को अपने राज्य की पूर्व सीमा स्वीकार करनी पड़ी[१]।

मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति कर, खुर्रम ने लौटाए हुए क्षेत्रों की सुरक्षा एवं शासन की ओर अब अपना ध्यान दिया। खानखाना से बढ़कर अनुभवी और कुशल शासक उस क्षेत्र के लिए उसे और कहाँ मिलता। अतः राजकुमार ने उसी को खानदेश, बरार तथा अहमदनगर का सूबेदार नियुक्त किया। शाहनवाज़ ख़ाँ को आदेश मिला कि वह बारह सहस्र अश्वारोहियों को ले इन क्षेत्रों की सीमाओं की रक्षा करे। इसी प्रकार अन्य उपयुक्त व्यक्तियों को विभिन्न पदों पर नियुक्त कर राजकुमार अनेक सामन्तों के साथ जिनमें दाराब ख़ाँ भी था, १२ अक्तूबर, १६१७ ई० को बादशाह के पास मांडू लौट आया।

१ तु० ज० भाग १, पृ० ३६८, ३८०, ३८७, ३८८।

ख़ानख़ाना को सात हज़ारी मनसब की प्राप्ति

राजकुमार ख़ुर्रम के लौट आने पर दक्षिण-शासन का सारा दायित्व ख़ानख़ाना पर पड़ा। उसने शत्रु द्वारा लौटाए क्षेत्रों का पुनर्संगठन कर उन्हें सुव्यवस्थित बनाने में कोई कसर न उठा रखी। शाहनवाज़ तथा अन्य मुग़ल अधिकारी इतने सतर्क रहे कि बार बार प्रयत्न करने पर भी, मलिक अम्बर उनके विरुद्ध सर न उठा सका। इसी समय पता चला कि गोंडवाना के बीरग्राम में हीरे की एक प्रसिद्ध खान है। ख़ानख़ाना ने अपने चतुर्थ पुत्र अमरुल्ला को एक टुकड़ी के साथ उस पर अधिकार करने के लिए भेजा। उस खान का स्वामी खानदेश का पंजू नामक एक भूमिपति था। अमरुल्ला का विरोध करना उसकी शक्ति के परे था। विवश हो उसने अपनी वह बहुमूल्य संपत्ति मुग़लों को समर्पित कर दी। उस खान के सुन्दर एवं आकर्षक हीरे भारत के हीरों में सर्वोत्तम समझे जाते थे[१]।

सितम्बर, १६१८ ई० में जहाँगीर दल-बल सहित गुजरात से आगरा लौटते समय खानदेश सरकार के निकट से होकर गुजर रहा था। ख़ानख़ाना इस शुभ अवसर को कब हाथ से जाने देता। उसने बादशाह से प्रार्थना की कि उसे अपने स्वामी के दर्शन करने की आज्ञा दी जाए। विनती स्वीकार हुई और ख़ानख़ाना उज्जैन और रणथम्भौर के मध्य घाटी चंदा नामक स्थान पर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। जहाँगीर उससे बड़े प्रेम से मिला, अनेकों बहुमूल्य

---

१. तु० ज़ु भाग २, पृ० २१-२२।

उपहार भेंट किए और उसे सात हजारी मनसब का उच्च पद प्रदान किया। ख़ानख़ाना ने भी अपनी सामर्थ्य अनुसार बादशाह को अनेकों उपहार दिए। जहाँगीर ने ख़ानख़ाना को जो घोड़े उपहार में दिए थे, उनमें एक 'सुमेर' नाम का था जो आकृति तथा रंग दोनों में ही सुमेर पर्वत की भाँति था। इसके पश्चात् ख़ानख़ाना अपना शासन-कार्य सम्हालने बुरहानपुर लौट गया[१]।

१, तु० ज० भाग १, पृ० ९७-९९ ।

षष्ठम अध्याय

ख़ानख़ाना की जीवन-सन्ध्या

शाहनवाज़ तथा रहमानदाद की मृत्यु

१६११ ई० में ख़ानख़ाना के बहत्तर वर्षीय घटनापूर्ण जीवन का सबसे अधिक शोकमय अध्याय प्रारम्भ होता है। इस समय तक वह यश की चरम सीमा तक पहुँच चुका था। अकबर तथा जहाँगीर दोनों ही के राज्य-काल में उसने अपने करतब दिखाए थे और उनके उपलक्ष में उसे जो शाही कृपा तथा सम्मान प्राप्त हुए थे वह कदाचित् ही किसी मुगल सामन्त को अभी तक नसीब हो सका था। किन्तु क्रूर भाग्य ने ऐसे यशस्वी जीवन का अन्त बड़ा अपयशपूर्ण लिख रखा था। विधाता के लिखे को कौन मिटा सकता था। शाहनवाज़ को मदिरापान की बुरी लत बहुत पहले से लग गई थी। अत्यधिक मद्य-पान के कारण उसकी दशा निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। ख़ानख़ाना जब दरबार से लौटा तो उसने उसे बड़ी दयनीय स्थिति में पाया। पिता का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। जहाँगीर ने उसे चेतावनी भी दे रखी थी कि यदि वह अपने पुत्र का यह घातक व्यसन न छुड़ा सके तो उसे दरबार में भेज दे जहाँ बादशाह स्वयं उस पर निगरानी रखेगा। ख़ानख़ाना ने उस युवक को काल-कवलित होने से बचाने के लिए लाखों प्रयत्न किए किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुए। रोग अब असाध्य हो चुका था। वैद्य, हकीम सभी हार गए थे। शाहनवाज़ की हालत दिनों दिन बिगड़ती ही गई और केवल तैंतीस वर्ष की अल्पायु में वह

होनहार युवक इस संसार से चल बसा। जहाँगीर को उसकी असामयिक मृत्यु से बड़ा शोक हुआ है।

अभी ख़ानख़ाना के हृदय का यह घाव पूरने भी न पाया था कि इसी बीच उसके तृतीय पुत्र रहमानदाद की मृत्यु हो गई। इसकी तो ख़ानख़ाना कुछ सेवा सुश्रूषा भी न कर सका कि जिससे उसे कुछ तो सन्तोष होता। उसका अन्त चटपट एकाएक आ गया। वह अभी अभी ज्वर-पीड़ा से मुक्त हो स्वास्थ्य लाभ कर ही रहा था कि उसे अपने भाई दाराब के दक्खिणियों के विरुद्ध उनके आकस्मिक आक्रमण को विफल करने के हेतु, प्रयाण करने की सूचना मिली। उस वीर से न रहा गया और अपनी शारीरिक स्थिति की परवाह न कर वह तुरन्त अपने भाई की सहायतार्थ झपटा। आक्रमणकारियों को खदेड़ विजयी दल शीघ्र वापस लौट आया। किन्तु रहमानदाद की अपने प्रति यह उपेक्षा अन्त में घातक सिद्ध हुई। उसने अपने ऊपरीकोट (जुब्बा) उतारने में सावधानी न बरती जिससे उसे ठंड लग गई। इसकी बड़ी घातक प्रतिक्रिया हुई। पहले सारे शरीर में ऐंठन प्रारम्भ हुई और कुछ देर पश्चात् उसकी बोली भी बन्द हो गई। दो दिनों तक इस बेचैन स्थिति में तड़पता रह वह युवक तीसरे दिन वयोवृद्ध पिता के हृदय के टुकड़े कर इस संसार से चल बसा। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में उसके तलवार चलाने की कला की बड़ी प्रशंसा की है। इन दो पुत्रों की अकाल मृत्यु से ख़ानख़ाना के हृदय की क्या दशा हुई होगी इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

---

१ तु० ज० भाग २ पृ० ८७।

जहाँगीर ने ख़ानख़ाना को सब प्रकार से सान्त्वना दी। शाहनवाज का पाँच हजारी मनसब उसके पुत्रों एवं भाइयों के पदों में जोड़ दिया गया। पंच हजारी मनसब तथा अनेक उपहारों से सम्मानित दाराब अपने पिता के पास भेजा गया कि शाहनवाज की मृत्यु से बरार तथा अहमद नगर की सूबेदारी का जो स्थान रिक्त हुआ है, उसका दायित्व वह संभाले।[१]

मलिक अम्बर के उपद्रवों का पुनः आरम्भ—
ख़ानख़ाना की सहायता के लिए प्रार्थना

विपत्ति अकेले कभी नहीं आती, ख़ानख़ाना भी इसका अपवाद न था। इस समय उस पर चारों ओर से आपदाओं के बौछार आ रहे थे। ख़ानख़ाना के दाहिने हाथ–शाहनवाज़ खाँ की आकस्मिक मृत्यु, बादशाह का सुदूर काश्मीर घाटी के प्राकृतिक दृश्यों के आनन्दोपभोग में निमग्न रहना तथा शाहजादा खुर्रम का अपनी सभी सैन्य-शक्ति के साथ पंजाब स्थित काँगड़ा की विजय में व्यस्तता–इन सभी बातों ने मलिक अम्बर को एक बार फिर सिर उठाने का अवसर दिया। मुगलों के चिरकालीन पारस्परिक वैमनस्य ने उसका कार्य और सरल कर दिया। अल्पकाल में ही उसने एक एक कर के सारे प्रदेश जो दो वर्ष पूर्व मुगलों को वापस किए थे, पुनः अपने अधिकार में कर लिए।

१६१६ ई० में मलिक अम्बर ने पड़ोसियों से संधि कर एक बार पुनः मुगलों के विरुद्ध सम्मिलित मोर्चा स्थापित किया।

---

१ तु० ज० भाग २ पृ० १७६–१७७

साठ सहस्र आदिलशाही कुतुबशाही तथा मराठे सैनिकों के बल पर वह खोए हुए क्षेत्रों को फिर अपनाने का प्रयत्न करने लगा। १६२० में उसने अहमदनगर पर सहसा आक्रमण कर वहाँ के दुर्गपति खंजर ख़ाँ को किले में घेर लिया। ख़ानख़ाना की प्रार्थना पर उसकी सहायतार्थ बादशाह ने बीस लाख मुद्रायें भेजीं किन्तु वह अपर्याप्त सिद्ध हुईं। आए दिन दक्षिणी कहीं न कहीं मुगल मोर्चों पर धावा बोला ही करते थे। परिणामतः अपनी लुका-छिपी चालों द्वारा शाही सेना को खदेड़ कर उन्होंने बहुत सी मुगल-छावनियों पर अधिकार जमा लिया था। मराठे अश्वारोही पीछा करते करते उन्हें बालाघाट तक खदेड़ ले गए थे। यहाँ बरार तथा अहमदनगर के सूबेदार दाराब ख़ाँ के सहयोग से मुगल दो तीन लड़ाइयाँ जीते, किन्तु इतने पर भी वे अम्बर की प्रबल बाढ़ को रोकने में समर्थ न हो सके। एक स्थान पर दाराब की दक्षिणियों से भिड़न्त हो गई। उस युवक ने खूब रण कौशल दिखलाया। अंत में अपने अश्वारोहियों की सहायता से उसने शत्रु को मार भगाया। मुगलों ने उनके सामान को मनमाना लूटा और खूब सम्पत्ति से लदे हुए वे अपने शिविर को लौट आए।

किन्तु दक्षिणी भला कब हार मानते। वे एकत्र हो सभी ओर से मुगलों को पुनः तंग करने लगे। उनकी रसद का मार्ग बन्द कर दिया गया, उनके शिविर लूटे गए तथा उनके निकटस्थ सारे प्रदेश को उजाड़ डाला गया। खाद्य-सामग्री के अभाव ने उन्हें और पीछे हटने को विवश किया और वे रोहनखेड़ दर्रे से नीचे उतर कर बालापुर आए जहाँ उन्हें पर्याप्त रसद पाने की आशा थी। किन्तु आक्रमणकारियों ने

उन्हें यहाँ भी चैन न लेने दिया। वे अपनी विनाशकारी क्रियाओं से कब बाज आते। उन्होंने मुगलों को बालापुर में भी टिकना असम्भव कर दिया।

खानखाना बड़ी दयनीय स्थिति में था, किन्तु वह हताश नहीं हुआ। उसने शत्रु की बाढ़ को रोकने का फिर प्रयास किया। उसने ६ या ७ सहस्र अश्वारोहियों का एक विशिष्ट दल दक्षिणियों से आमने-सामने जुटकर युद्ध करने के लिए भेजा। मुगल घुड़सवारों ने शत्रु-शिविर पर छापा मार, उन्हें खूब लूटा और रक्तमय संघर्ष के पश्चात् उन्हें विभिन्न दिशाओं में खदेड़ दिया। किन्तु ज्योंही वह पीछे लौटे कि दक्षिणी एकत्र होकर फिर उन्हें तंग करने लगे। अन्त में किसी प्रकार जान बचा वे पुनः अपने शिविर में लौट आए। इस युद्ध में दोनों ओर के लगभग एक हजार योद्धा खेत रहे।

मलिक अम्बर ने बालापुर को अब अपने आक्रमण का मुख्य लक्ष्य बनाया। चार मास के निवास-काल में शाहीदल को वहाँ अनेक विपत्तियों और कष्टों का सामना करना पड़ा। खाद्यान्न के अभाव में बहुत से साथ छोड़ कर शत्रु से जा मिले। सेनापति ने बार बार बादशाह से सहायता की प्रार्थना की किन्तु व्यर्थ। जब कोई सहारा न दीख पड़ा तो वे वह स्थान छोड़ अपने अन्तिम शरण-स्थान बुरहानपुर हट आए। किन्तु दक्षिणियों ने अब भी पीछा न छोड़ा। बुरहानपुर पहुँच उन्होंने चहारदीवारी से रक्षित उस नगर को घेर लिया और उसके निकटस्थ क्षेत्रों को लूटने-पाटने लगे[१]।

---

१ तु० ज० भाग २, पृ० २२२-२२७, १८८-१९० ।

अब खानखाना की स्थिति बड़ी डावाँडोल हो गई। उसने बादशाह से सहायता के लिए बार बार अपील की किन्तु कोई सुनवाई न हुई। दक्षिणियों ने लगभग समस्त जीते हुए क्षेत्रों पर पुनः अधिकार कर लिया था। यही नहीं, नर्मदा पार कर वे मांडू के निकट भी लूट-मार कर रहे थे। छः महीने तक इस दशा में मुगल एन केन प्रकारेण बुरहानपुर में टिके रहे। उनका धैर्य समाप्त-प्राय था कि इतने में उन्हें दक्षिण-कमान में शाहजादा खुर्रम की पुनर्नियुक्ति की सूचना मिली।

शाहजहाँ की दक्षिण-कमान पर पुनर्नियुक्ति—अम्बर का पीछे हटना तथा खिड़की का विनाश

१६२० ई० के दिसम्बर मास में, एक विशालवाहिनी के साथ राजकुमार खुर्रम ने, विपत्ति-ग्रस्त शाहीदल की सहायतार्थ बुरहानपुर की ओर प्रयाण किया। उज्जैन में उसे मांडू के निकटस्थ क्षेत्रों में दक्षिणियों द्वारा किए जाने वाले विनाश की सूचना प्राप्त हुई। उसने उन्हें वहाँ से खदेड़ने के हेतु एक के बाद एक-दो दस्ते भेजे। शीघ्रता से बढ़ते हुए ये दस्ते मांडू पहुँचे और वहाँ तैनात किए गए सैनिकों के सहयोग से उन्होंने दक्षिणियों का पीछा कर उन्हें नर्मदा के उस पार खदेड़ दिया। इस भगदड़ में बहुत से दक्षिणी हताहत हुए। शत्रु को काफी दूर भगा, राजकुमार के आदेशानुकूल ये विजयी सैनिक नर्मदा के दक्षिणी तट पर कुछ काल तक मुख्य सेना के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। राजकुमार के आ जाने पर सारी सेना एक साथ बुरहानपुर की ओर बढ़ी जहाँ शाहीदल बड़ी कठिन परिस्थितियों का सामना कर रहा था।

शत्रु-हृदय को दहला देने के लिए शाहजहाँ का नाम ही पर्याप्त था। और जब उन्हें एक विशाल तथा सुसज्जित वाहिनी के साथ उसके वहाँ आने की सूचना मिली तो वे तुरन्त अपना दीर्घकालीन घेरा उठा दक्षिण की ओर चलते बने। निरन्तर प्रयाण तथा दीर्घकालीन संघर्ष के कारण मुगल थक कर चकनाचूर हो रहे थे। अतः शाहज़ादे ने उन्हें नौ दिन तक वहीं विश्राम करने दिया। तत्पश्चात् वे दक्षिण की ओर फिर बढ़े।

शाहज़ादे के प्रयाण की सूचना पाते ही दक्षिणी छावनियाँ छोड़ यत्र-तत्र भागने लगे, किन्तु शाहीदल ने उन्हें कहीं आश्रय न लेने दिया। गतिशील अश्वारोहियों से बचकर भागना उनके लिए सम्भव न था। उनमें से बहुत तलवारों के घाट उतारे गए। अब मुगल-सेना निज़ामशाह की नई राजधानी, खिड़की पहुँची। यदि दूरदर्शी मलिक अम्बर ने अपनी कठपुतली, निज़ामशाह को एक रात पहले ही दौलताबाद के सुरक्षित दुर्ग में न भेज दिया होता तो शाही सेना ने उसे परिवार सहित अवश्य बन्दी बना लिया होता। दक्षिणियों ने नगर रक्षार्थ कुछ प्रतिरोध किया किन्तु उनकी एक न चली। मुगलों ने उस पर अधिकार कर लिया और अपने तीन दिन के निवास-काल में उन्होंने बड़ी निर्ममता से सुन्दर एवं सुसज्जित भवनों वाले उस नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर धराशायी कर दिया[१]।

मई, १६२१ ई० में दाराब के नेतृत्व में एक शाही दस्ता दौलताबाद की ओर गया जहाँ अम्बर मुगलों के विरुद्ध जाल-रचना में व्यस्त था। किन्तु मार्ग के अवरोधों के कारण उनकी कोई विशेष

१ तु० ज० भाग २, पृ० २०६-२०८।

प्रगति न हो सकी। अंत में शत्रु की लुका-छिपी चालों से तंग आकर वे दौलताबाद न जा, अहमदनगर की ओर मुड़े जहाँ खंजर खाँ दीर्घकालीन घेरे के सारे कष्टों को सहता हुआ अब भी अपने स्थान पर डटा था। मलिक अम्बर ने लाख प्रयत्न किये कि दुर्ग-रक्षकों को रसद न पहुँचने पाए किन्तु सब व्यर्थ। शाहजहाँ को चरका देना आसान न था। उसकी विस्तृत योजनाओं के सम्मुख, विवश हो, अम्बर को नत-मस्तक होना ही पड़ा। संधि-शर्तों के अनुसार अहमदनगर दुर्ग पर से घेरा उठा लिया गया, मुगलों को जो क्षेत्र पहले प्राप्त थे, वे सब पुनः मिल गए और दक्षिण की तीनों महान शक्तियों ने पचास लाख रुपया कर देना स्वीकार किया। संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् शाहजहाँ बुरहानपुर आकर शासन-कार्य में लग गया।

इस प्रकार शाहजहाँ की उपस्थिति ने एक बार पुनः प्रमाणित कर दिया कि दक्षिण की पेचीदी समस्याओं को केवल वही हल कर सकता है। कोई सेना-नायक उस कार्य को करने में असमर्थ था। खानखाना अपने दायित्व-निर्वाह में बुरी तरह असफल रहा, किन्तु उसके कई भारी कारण थे। शाहनवाज की असामयिक मृत्यु से उसका दाहिना हाथ ही कट गया था। अम्बर की बाढ़ को यदि कोई दृढ़ता पूर्वक रोक सकता था तो शाहनवाज ही। शाही कप्तानों का पारस्परिक वैमनस्य भी उसके मार्ग की एक बड़ी बाधा थी। वे सेनापति के कार्यों की खिल्लियाँ उड़ाते और उसे विश्वासघाती बताते। सामयिक सहायता हेतु बार बार की गई उसकी प्रार्थनाओं पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सब उससे असहयोग ही कर रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में कोई भी सेनापति अपने उद्देश्य में सफल होने की आशा नहीं कर सकता था। यदि शाहजहाँ की भाँति उसे भी वही समर्थन प्राप्त हुआ होता तो कदाचित् अम्बर मुगलों को इतने दिनों तक कष्ट न दे सकता।

शाहजहाँ का विद्रोह, ख़ानख़ाना का उसमें सम्मिलित होना

शाहज़ादा अभी दक्षिण-समस्या को हल कर लौटा ही था कि इधर दरबार में कुछ और गुल खिलने लगे। जहाँगीर के राज्य-काल का बहुत कुछ वैभव शाहजहाँ के ही कृत्यों के कारण था अतः राजकुमार का उत्तराधिकार का स्वप्न देखना आश्चर्यजनक नहीं। किन्तु जब उसकी अनुपस्थिति में नूरजहाँ-गुट द्वारा चालें चली जाने लगीं और परिस्थितियाँ उसके वश की न रहीं तो उसने अपने पिता के साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। ख़ानख़ाना के सम्मुख एक विकट समस्या थी। उसे अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण निर्णय करना था जिस पर उसका सारा भविष्य निर्भर होता। घोर हृदय-मंथन के पश्चात् उसने शाहजहाँ का ही पक्ष लेने का निश्चय किया।

अब यह प्रश्न सहज ही उठता है कि दूरदर्शी एवं अनुभवी ख़ानख़ाना ने अपने पूर्व शिष्य और वर्तमान स्वामी के विरुद्ध विद्रोही शाहजहाँ का क्यों पक्ष लिया! अनुमानतः इसके निम्नलिखित कारण थे। प्रथम, साम्राज्य के सम्भावी उत्तराधिकारियों में शाहजहाँ ही सबसे योग्य था। उसका लोक-प्रिय ज्येष्ठ भ्राता, ख़ुसरो, जिस पर बहुत से मुगल सरदारों की आशाएँ केन्द्रित थीं, अब इस संसार में न था। चाहे वह स्वाभाविक मृत्यु से मरा या मार डाला गया, इस विवाद में

यहाँ हमें पड़ने की आवश्यकता नहीं। उसका दूसरा भाई, पर्वेज स्वाभिमानी एवं महत्त्वाकांक्षी तो था किन्तु अत्यधिक मदिरा-पान के कारण शनैः शनैः पतनोन्मुख हो रहा था। दक्षिण-शासन में उसने जो अयोग्यता और ढिलाई दिखाई थी उससे भी खानखाना पर उसका अच्छा प्रभाव न पड़ा था। इसके अतिरिक्त उस समय वह खानखाना से बहुत दूर भी था। यदि सेनापति चाहता तो भी दक्षिण से उसका पर्वेज का समर्थन अधिक प्रभावकर न सिद्ध होता। बादशाह के निरन्तर गिरते हुए स्वास्थ्य तथा नूरजहाँ की कपटपूर्ण चालों ने उसे आशंकित कर दिया था। उसने सोचा कि यदि यह रमणी अपने दामाद, मूर्ख शहरयार को सिंहासनारूढ़ करने में सफल हो गई तो उसके और साम्राज्य दोनों ही के लिए यह अहितकर होगा। नूरजहाँ-गुट ने उसका बार बार जो अपमान किया था, उन्हें वह इतने शीघ्र कैसे भूल जाता या क्षमा कर देता! द्वितीय, शाहजहाँ से उसकी पौत्री व्याही हुई थी। अपने सम्बन्धी का पक्ष लेना उसके लिए स्वाभाविक ही था। शाहजहाँ के कृत्यों से वह प्रभावित भी था। उसके सिंहासनारोहण में खानखाना का ही स्वार्थ निहित न था अपितु सारे साम्राज्य का उज्ज्वल भविष्य भी।

विद्रोह का झंडा खड़ा करने के पूर्व शाहजहाँ ने कई बार जहाँगीर के पास दूत भेज कर अपने कृत्यों के औचित्य प्रमाणित करने की चेष्टा की। विद्रोह की भूमिका में खानखाना का क्या भाग था, इसका संकेत-मात्र भी हमें समकालीन सूत्रों में नहीं प्राप्त होता। किन्तु यह सम्भव है कि खानखाना ने ही राजकुमार को प्रेरित किया हो कि वह प्रतिनिधि भेज कर पहले बादशाह को सारे तथ्यों से अवगत

करे और अपने उद्देश्य-प्राप्ति के हेतु यथा-सम्भव शान्तिपूर्ण उपायों से काम ले। सेनापति जानता था कि जहाँगीर रोग-शैय्या पर पड़ा है और अपने विश्वास-घाती आचरण द्वारा वह पूर्व अभिभावक के नाते बादशाह के क्लेश को और नहीं बढ़ाना चाहता था। किन्तु स्वार्थी लोगों ने शाहज़ादे के प्रति जहाँगीर की धारणा इतनी बुरी बना रखी थी कि शाहजहाँ जो भी कहता, बादशाह को उसमें विद्रोह ही की गन्ध मिलती। जितना भी वह अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा करता, सम्राट उससे उतना ही और चिढ़ता जाता।

राजकुमार को अब शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा न्याय-प्राप्ति की आशा न थी। उसके सम्मुख एक ही मार्ग अवशेष था—रक्तपूर्ण विद्रोह। वह ख़ानख़ाना, दाराब ख़ाँ तथा कतिपय अन्य समर्थकों के साथ उत्तर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसने एक बार फिर समझौते की वार्ता चलाई किन्तु वह भी असफल रही। जब वे फतेहपुर सीकरी पहुँचे तो देखा कि उनके लिए नगर का फाटक बन्द है। राजा विक्रमाजीत के नेतृत्व में शाहज़ादे के एक दस्ते ने आगरे पर छापा मारा और वहाँ के सरदारों द्वारा संचित सारी धन-राशि पर कब्ज़ा कर लिया। १६२३ ई० के प्रारम्भ में वह दल वहाँ से यमुना के किनारे किनारे दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ। शाहपुर पहुँचने पर शाहज़ादे ने देखा कि सारी सेना का एक साथ उस मार्ग से प्रयाण सामरिक दृष्टि से ठीक नहीं, अतः एक दस्ते को उस मार्ग से बढ़ने का आदेश दे वह शेष सेना के साथ वहाँ से लगभग चालीस मील कोटिला की ओर

छूट कर आगे बढ़ने लगा। शीघ्र ही वे बिलोचपुर पहुँचे और वहीं डेरा डाल दिए। सर्व प्रथम उन्होंने दक्षिण में सीखे हुए लुका-छिपी युद्ध द्वारा शाही सेना को तंग करने की चेष्टा की किन्तु खुले मैदान में वह युद्ध-पद्धति बहुत कारागर न हो सकी। उपद्रवकारियों ने अब खुले रण-क्षेत्र में अपने भाग्य-निर्णय का निश्चय किया।[१]

बिलोचपुर की लड़ाई

नूरजहाँ स्थिति की गम्भीरता समझती थी और इसका सामना करने के लिए प्रस्तुत भी थी। उसने पर्वेज़ को अपनी पूरी सेना के साथ बिहार से पहले ही बुलवा रखा था। विशिष्ट राजपूत योद्धा—अम्बर, मारवाड़, कोटा, बूँदी तथा अन्य राज्यों के शासक-उसकी सहायतार्थ प्रस्तुत थे। राजा वीरसिंहदेव बुन्देला भी इस दुर्दिन में अपने उपकारी की रक्षार्थ आ जुटा था। उस चतुर रमणी ने विरोधी खान आज़म को भी पदोन्नति आदि का दिलासा देकर अपनी ओर कर लिया था। इनके अतिरिक्त साम्राज्य का एक महान सेना-नायक, महावतख़ाँ भी काबुल से बुलवा लिया गया था और इस समय शाही दल का वही प्रधान सेनापति था।

इस प्रकार सशक्त शाहीदल विद्रोहियों से मोर्चा लेने के लिए बिलोचपुर की ओर बढ़ा। शाहज़ादा व्यूह बनाए पहले ही से तैयार था। उसकी सेना का मुख्य कमान दाराब ख़ाँ के हाथों में था। राजा विक्रमाजीत, जिसने मेवाड़ तथा काँगड़ा-विजय में अपूर्व पराक्रम दिखाया था और दक्षिण को शान्त करने में जिसने शाहज़ादे को बहुमूल्य सहायता

१ तु० ज० भाग २, पृ० २४६-२५०।

दी थी, इस समय उसकी ओर था। २८ मार्च को दोनों पक्षों की भिड़न्त हुई जिसमें एक शाही दस्ते ने विद्रोहियों को पराजित किया। दूसरे दिन डट कर युद्ध प्रारम्भ हुआ। अब्दुल्ला खाँ शाही दल की ओर से लड़ने गया था किन्तु उसने शाहज़ादे से गुप्त समझौता कर रखा था कि अवसर प्राप्त होते ही वह उसकी ओर आ मिलेगा। उसने अपने वचन को शीघ्र पूरा भी किया।

किन्तु अब्दुल्ला खाँ के इस विश्वासघाती कृत्य से विद्रोही दल अधिक लाभ न उठा सका। इसे भाग्य का खेल ही समझिए कि युद्ध के मध्य में अब्दुल्ला ख़ाँ के शाही दल को त्याग शाहजादे की ओर आ मिलने का जो षड्यन्त्र था, उसका रहस्य केवल शाहजहाँ, विक्रमाजीत तथा अब्दुल्ला ख़ाँ को ही ज्ञात था। दाराब ख़ाँ ने, जो वास्तविक स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ था, उसे शत्रु ही समझा और जैसे ही वह विद्रोहियों से मिलने आगे बढ़ा, दाराब ने उस पर धावा बोल दिया। विक्रमाजीत पास ही था। वह तुरन्त दाराब को यह रहस्य बतलाने के लिए आगे बढ़ा। जब वह अपने स्थान को लौट रहा था, अब्दुल्ला ख़ाँ के एक अनुगामी, नवाज़िश ख़ाँ ने, उसकी कनपटी पर एक घातक गोली मारी। नवाज़िश ख़ाँ नमकहलाल था और वह शत्रु की ओर इस भ्रम से गया था कि उसका नेता विपक्षी पर प्रहार करने के लिए बढ़ा है। विक्रमाजीत की तत्काल ही मृत्यु हो गई। उसके मरते ही विद्रोहियों की सेना में खलबली मच गई। अन्धकार होने तक वह किसी प्रकार रण-स्थल में टिके रहे किन्तु इसके बाद उनमें लड़ने का साहस न रहा। परिस्थिति को प्रतिकूल देख वे उसी रात मांडू की ओर भाग गए[१]।

१ तु० ज० भाग, पृ० २४३, २४६।

खानखाना का शाहजहाँ के प्रति विश्वासघात

भागते भागते विद्रोही दल माँडू पहुँचा। वहाँ का दुर्ग उन्हें आश्रय देने के लिए खुला ही था। कुछ समय तक वहीं बने रह, वे अपनी शक्ति पुनः संगठित करते रहे। इधर पर्वेज और महाबत खाँ उनका पीछा करते घाटी चन्दा के उस पार तक पहुँच चुके थे। शाहजहाँ के दक्षिणी सरदारों—जादूराय और उदयराम ने जो मलिक अम्बर का साथ छोड़ उसकी ओर आ मिले थे, अपने मराठा अश्वारोहियों द्वारा शाही सेना को तंग करने का प्रयत्न किया किन्तु महाबत खाँ के सम्मुख उनकी एक न चली। वह अनुभवी सेनापति उनकी लुका-छिपी चालों को खूब समझता था, और इसीलिए बहुत सावधानी तथा सतर्कता से आगे पग उठा रहा था। सैनिक सतर्कता के साथ उसने कूटनीति भी बरतनी शुरू की। दम-दिलासा दे उसने शाहज़ादे के कई प्रबल समर्थकों को फोड़ कर अपनी ओर मिला लिया। शाहजादे ने रुस्तम खाँ के नेतृत्व में एक दस्ता अपनी मुख्य सेना के अग्रभाग का दायित्व दे, आगे भेजा, किन्तु कालियादह के समीप जब उसकी शाही सेना से भिड़न्त होने को आई, तो वह विश्वासघाती सेनानायक अपने एक साथी के साथ बिना लड़े ही विपक्षी की ओर जा मिला।

अब शाहज़ादा बड़ा घबराया। उसकी स्थिति उत्तरोत्तर विषम ही होती जा रही थी। वहाँ पैर न जमता देख वह और पीछे हटा। उसे आशा थी कि दक्षिण के दुर्विजेय दुर्गों में कहीं शरण अवश्य प्राप्त होगी, पर दुर्भाग्य साथ छोड़े तब तो! आए दिन विश्वासघातियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। ज़ाहीद खाँ नामक उसके सरदार ने विरोधी

दी थी, इस समय उसकी ओर था। २८ मार्च को दोनों पक्षों की भिड़न्त हुई जिसमें एक शाही दस्ते ने विद्रोहियों को पराजित किया। दूसरे दिन डट कर युद्ध प्रारम्भ हुआ। अब्दुल्ला खाँ शाही दल की ओर से लड़ने गया था किन्तु उसने शाहज़ादे से गुप्त समझौता कर रखा था कि अवसर प्राप्त होते ही वह उसकी ओर आ मिलेगा। उसने अपने वचन को शीघ्र पूरा भी किया।

किन्तु अब्दुल्ला खाँ के इस विश्वासघाती कृत्य से विद्रोही दल अधिक लाभ न उठा सका। इसे भाग्य का खेल ही समझिए कि युद्ध के मध्य में अब्दुल्ला ख़ाँ के शाही दल को त्याग शाहज़ादे की ओर आ मिलने का जो षड्यन्त्र था, उसका रहस्य केवल शाहजहाँ, विक्रमाजीत तथा अब्दुल्ला ख़ाँ को ही ज्ञात था। दाराब ख़ाँ ने, जो वास्तविक स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ था, उसे शत्रु ही समझा और जैसे ही वह विद्रोहियों से मिलने आगे बढ़ा, दाराब ने उस पर धावा बोल दिया। विक्रमाजीत पास ही था। वह तुरन्त दाराब को वह रहस्य बतलाने के लिए आगे बढ़ा। जब वह अपने स्थान को लौट रहा था, अब्दुल्ला ख़ाँ के एक अनुगामी, नवाज़िस ख़ाँ ने, उसकी कनपटी पर एक घातक गोली मारी। नवाज़िस ख़ाँ नमकहलाल था और वह शत्रु की ओर इस भ्रम से गया था कि उसका नेता विपक्षी पर प्रहार करने के लिए बढ़ा है। विक्रमाजीत की तत्काल ही मृत्यु हो गई। उसके मरते ही विद्रोहियों की सेना में खलबली मच गई। अन्धकार होने तक वह किसी प्रकार रण-स्थल में टिके रहे किन्तु इसके बाद उनमें लड़ने का साहस न रहा। परिस्थिति को प्रतिकूल देख वे उसी रात मांडू की ओर भाग गए[1]।

---

१ तु० ज० भाग, पृ० २८३, २८६।

खानखाना का शाहजहाँ के प्रति विश्वासघात

भागते भागते विद्रोही दल मांडू पहुँचा। वहाँ का दुर्ग उन्हें आश्रय देने के लिए खुला ही था। कुछ समय तक वहीं बने रह, वे अपनी शक्ति पुनः संगठित करते रहे। इधर पर्वेज और महाबत खाँ उनका पीछा करते घाटी चन्दा के उस पार तक पहुँच चुके थे। शाहजहाँ के दक्षिणी सरदारों—जादूराय और उदयराम ने जो मलिक अम्बर का साथ छोड़ उसकी ओर आ मिले थे, अपने मराठा अश्वारोहियों द्वारा शाही सेना को तंग करने का प्रयत्न किया किन्तु महाबत खाँ के सम्मुख उनकी एक न चली। वह अनुभवी सेनापति उनकी लुका-छिपी चालों को खूब समझता था, और इसीलिए बहुत सावधानी तथा सतर्कता से आगे पग उठा रहा था। सैनिक सतर्कता के साथ उसने कूटनीति भी बरतनी शुरू की। दम-दिलासा दे उसने शाहज़ादे के कई प्रबल समर्थकों को फोड़ कर अपनी ओर मिला लिया। शाहज़ादे ने रुस्तम खाँ के नेतृत्व में एक दस्ता अपनी मुख्य सेना के अग्रभाग का दायित्व दे, आगे भेजा, किन्तु कालियादह के समीप जब उसकी शाही सेना से भिड़न्त होने को आई, तो वह विश्वासघाती सेनानायक अपने एक साथी के साथ बिना लड़े ही विपक्षी की ओर जा मिला।

अब शाहज़ादा बड़ा घबराया। उसकी स्थिति उत्तरोत्तर विषम ही होती जा रही थी। वहाँ पैर न जमता देख वह और पीछे हटा। उसे आशा थी कि दक्षिण के दुर्विजेय दुर्गों में कहीं शरण अवश्य प्राप्त होगी, पर दुर्भाग्य साथ छोड़े तब तो! आए दिन विश्वासघातियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। ज़ाहिद खाँ नामक उसके सरदार ने विरोधी

पक्ष के सेनापति के पास एक गुप्त पत्र लिखा जिसमें उसके शाहज़ादे के प्रति धोखा देने की बात लिखी गई थी। संयोग से वह पत्र पकड़ा गया और शाहजहाँ ने अपराधी को कठोर दंड दिया। अभी इस घटना को कुछ ही दिन हुए थे कि शाहज़ादे के गुप्तचर, मुहम्मद तक़ी ने ख़ानख़ाना के संदेश-वाहक को पकड़ा जो चुपके से एक पत्र महावत ख़ाँ के पास ले जा रहा था। उसमें लिखा था:—

"मैं इस समय सौ प्रहरियों की दृष्टि का लक्ष्य बना हुआ हूँ, अन्यथा इस कष्टमय बेड़ी से मुक्ति-प्राप्ति के हेतु आपके पास अवश्य भाग आता।"

पत्र पढ़ शाहज़ादा अवाक् सा रह गया। कम से कम ख़ानख़ाना से उसे ऐसे घृणित कृत्य की स्वप्न में भी सम्भावना न थी। सहसा उसे विश्वास न हो सका। उसने ख़ानख़ाना और उसके पुत्रों को बुलवाकर वह पत्र दिखलाया। ख़ानख़ाना को काटो तो खून नहीं। कुछ क्षण तो वह हक्का-बक्का सा खड़ा रहा, फिर अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए इधर उधर के बहाने बनाने शुरू किए। किन्तु शाहज़ादे की आँखों में धूल झोंकना सरल कार्य न था। उसने वृद्ध सेनापति को बहुत-कुछ भला-बुरा कहा और आज्ञा दी कि अब वह भविष्य में अपने पुत्रों सहित शाहज़ादे के शिविर के निकट ही रखा जाए जिससे वह उस पर व्यक्तिगत निगरानी रख सके[१]।

इन बन्दियों को साथ ले, शाहजहाँ अब असीरगढ़ की ओर चला। वहाँ के दुर्गपति ने भावी पदोन्नति की आशा में वह

१ तु० ज० भाग २, पृ० २७४; इकबालनामा, पृ० २१०; मआसिरे-जहाँगीरी, मफ़,१ ५१।

दुर्विजेय दुर्ग शाहजादे को समर्पित कर दिया। इस गढ़ के हाथ में आ जाने से शाहजहाँ का भविष्य उज्वल-सा प्रतीत होने लगा, किन्तु उधर गुजरात में उसके समर्थकों की जो पराजय हुई उससे उसका वहाँ भी टिकना सम्भव न हो सका। विवश हो, कहीं अन्यत्र शरण-प्राप्ति की आशा में वह और आगे बढ़ा। शाहजादे ने पहले सोचा कि वह उन बन्दियों को असीरगढ़ ही में छोड़ दे, पर बाद में उसने विचार बदल दिया। उसने देखा कि सुरक्षा की दृष्टि से यही उचित है कि वह सतत् उन्हें साथ ही रखे। अतः वह उन्हें अपने ही संग बुरहानपुर ले गया।

बुरहानपुर से उस निराश्रित राजकुमार ने अपने पूर्व विरोधियों-दक्षिण-देश के शासकों से, जो उसके सम्मुख एक नहीं दो बार घुटने टेक चुके थे, सहायता की प्रार्थना की, पर व्यर्थ। शाहजहाँ का भविष्य अब सभी ओर से अंधकारमय ही प्रतीत हो रहा था। उत्तरी भारत से वह कितने अप्रतिष्ठापूर्ण ढंग से खदेड़ा जा चुका था, गुजरात भी उसके हाथ से निकल गया था, उसके अधिकांश समर्थक या तो रणचंडी के ग्रास बन चुके थे या उसका साथ छोड़ विपक्षी से जा मिले थे। अनवरत संघर्ष के फल-स्वरूप उसकी सैन्य-संख्या भी नगण्य-सी हो रही थी और जो अवशेष थे उनकी स्वामिभक्ति भी सन्देह से परे न थी। ऐसी संकटापन्न स्थिति में शाहजादे ने एक बार पुनः अपने पिता से मेल करने की सोची और इस उद्देश्य से उसने बूँदी के राजा भोजहर के पुत्र सरबुलन्दराय के द्वारा महावत ख़ाँ के पास जो उस समय नर्मदा के उत्तरी तट पर डेरा डाले पड़ा था, संधि के प्रस्ताव भेजे।

भला महावत ऐसे अवसर को कब हाथ से जाने देता। उसने राजकुमार को उत्तर देते हुए कहलाया कि जब तक खानखाना स्वयं आकर शाहज़ादे की बात उसके सम्मुख नहीं रखता, तब तक संधि नहीं हो सकती। उस चतुर सेनापति ने ऐसी शर्त क्यों रखी, इसका उत्तर बिलकुल स्पष्ट है। वह जानता था कि शाहज़ादे की सारी योजनाओं का जन्मदाता वह वयोवृद्ध अनुभवी खानखाना ही है, और वही उसे नित्य नए पाठ पढ़ाया करता है। यदि किसी प्रकार वह उससे विलग कर दिया जाए तो विद्रोही राजकुमार को घुटने टेकते कितनी देर लगेगी। जहाँगीर 'आत्मकथा' में स्पष्ट स्वीकार करता है कि—'उसका एक मात्र अभिप्राय था, इन उपायों द्वारा उस छलियों के प्रधान को उससे विलग करना, जो सारे झगड़ों और राज्यद्रोहों का मुखिया था'। फिर, महावत ख़ाँ को ख़ानख़ाना बनने की साध भी तो बहुत दिनों से थी और अब्दुर्रहीम के जीते जी यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। वह उसे किसी प्रकार चंगुल में फाँस उसका वध कर डालना चाहता था। अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिए उसे ऐसा ईश्वर-प्रदत्त अवसर भला और कब मिलता।

खानखाना के हाल के कपटपूर्ण आचरण से शाहज़ादे के मस्तिष्क में उस वृद्ध सेनापति की स्वामिभक्ति के प्रति घोर संशय उत्पन्न हो गया था। इस संकटकाल में उस पर विश्वास करना तो और भी कठिन था। अतः महावत ख़ाँ के प्रस्ताव ने उसे बड़ी द्विविधा में डाल दिया। बड़े संकल्प-विकल्प के पश्चात् अन्त में असहाय राजकुमार खानखाना को सरिता के दूसरे तट पर महावत ख़ाँ के पास भेजने को सहमत हो गया। किन्तु जाने से पूर्व

उसने उस संदिग्ध सेनापति से अपनी अडिग निष्ठा के हेतु यथासम्भव सभी आश्वासन तथा वचन ले लिए। बन्दीगृह की बेड़ियों से मुक्त कर उसने उसे नियुक्त किया कि वह उस पार जाकर जितनी निष्ठा से शाहजादे के हेतु का प्रतिपादन कर सके, करे। शाहजादे को अब भी विश्वास न था, अतः उसने उसे कुरानशरीफ हाथ में देकर शपथ खिलाई कि वह जीतेजी कभी भी शाहजादे से छल-कपट न खेलेगा। उसे और अधिक मान देने के लिए राजकुमार अपने पितामह श्वसुर को अन्तःपुर में ले गया, अपनी स्त्री तथा पुत्रों को उसके सम्मुख याचक के रूप में उपस्थित किया और सब प्रकार से उससे विनती की कि वह पूर्ण ईमानदारी एवं अडिग निष्ठा से उसके हेतु का समर्थन करे। राजकुमार ने कहा, "मेरे दिन बुरे हैं, और स्थिति विषम, मैं स्वयं को आपको सौंपता हूँ और आप ही को अपना लज्जा-रक्षक बनाता हूँ। आप इस प्रकार कार्य कीजिए कि जिससे मुझे यह अपमान तथा भर्त्सना अब और अधिक न सहना पड़े।"

इस अनुनय-विनय के पश्चात् ख़ानख़ाना राजकुमार से विदा हो सन्धि की शर्तों को तय करने शाही-शिविर को चला। यह पूर्व-निश्चित था कि ख़ानख़ाना सरिता के दक्षिणी तट पर ठहरेगा और वहीं से पत्र-व्यवहार द्वारा समझौते की वार्ता चलाएगा। अभी तक शाहजादे का स्वामिनिष्ठ सेवक, बैरम बेग, बड़ी दृढ़ता से तट पर डटा हुआ था और शाही दल के सरिता पार करने के सारे प्रयत्नों को विफल करता रहा था। किन्तु समझौते की वार्ता आरम्भ होते ही उसने सतर्कता में थोड़ी ढिलाई कर दी। अब शाही दल को चिर-अपेक्षित अवसर प्राप्त हुआ। ख़ानख़ाना अभी निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच भी न पाया था कि उनमें से कुछ ने,

रात्रि के अन्धकार में, अरक्षित घाटों से नदी पार कर विद्रोही दल पर आकस्मिक प्रहार कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण ने बैरम बेग के दस्ते को भौचक्का-सा कर दिया और वे संज्ञा-विहीन से हो गए। शाहीदल ने उनकी घबड़ाहट का पूरा लाभ उठाया और उन्हें खदेड़ कर विभिन्न दिशाओं में छिट-बिट कर दिया।

अन्त में जब ख़ानख़ाना सरिता-तट पर पहुँचा तो उसने स्थिति को अपने वश के बाहर पाया। वह बड़े फेर में पड़ गया। न तो वह वहाँ ठहर ही सकता था और न वापस ही जा सकता था। शाही सैनिक भला उसे सुरक्षित कैसे लौट जाने देते और निहत्थे विद्रोहियों पर उनके क्रूर आक्रमण ने उसके मन्तव्य की विफलता का पहले ही संकेत दे दिया था। ख़ानख़ाना की इस द्विविधा पूर्ण मनःस्थिति से शाही दल ने पूरा लाभ उठाया। राजकुमार पर्वेज ने उसी समय उसे एक पत्र भेजा जिसमें उसने उसे धमकी तथा प्रलोभन दोनों दिए। उसने लिखा कि यदि सेनापति ने अब विद्रोहियों का पक्ष लेने का प्रयत्न किया तो उसकी ख़ैर नहीं, और यदि वह शाहीदल से आ मिला तो उसे सभी प्रकार से पुरस्कृत किया जाएगा। महाबत ख़ाँ ने मध्यस्थ बनने का वचन दिया और असहाय सेनापति शाही प्रलोभनों के चक्कर में आकर लोक-परलोक दोनों भूल गया। सारी शपथें, आश्वासन तथा मर्यादा एक ओर रख, उसने नदी पार की और शीघ्र ही बड़ी भक्ति तथा निष्ठा के साथ शाहजादा पर्वेज की सेवा में उपस्थित हुआ।

ख़ानख़ाना का यह व्यवहार किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं कहा जा सकता। नैतिक दृष्टि से तो यह घोरतम अपराध था। एक निराश्रित तथा संकट-ग्रस्त राजकुमार के साथ विश्वासघात करना, वह भी जब कि

ऐसा न करने के लिए वह कुरान-शरीफ की पवित्र शपथ खा चुका था, ऐसा कृत्य था जिसको कोई भी इतिहासकार न्याय-संगत प्रमाणित करने की चेष्टा न करेगा। स्वार्थ के सम्मुख उसे अपने वचन का ध्यान ही न रहा। यहाँ तक कि अंतःपुर निवासियों के करुण विलाप तथा विनीत प्रार्थनायें भी उसको उस आन पर मर मिटने को प्रेरित न कर सकीं जिसकी रक्षा की उससे आशा थी।

हाँ, मानव-दुर्बलताओं का ध्यान रख, हम कह सकते हैं कि ख़ानख़ाना ने वही किया जो कतिपय तुच्छ व्यक्तियों ने ऐसे अवसरों पर किया है। उसकी उस काल की डाँवाडोल मनःस्थिति का कुछ अनुमान इस दोहे से लगाया जा सकता है :—

"अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठें मिलें न राम॥"

किन्तु ख़ानख़ाना ने तो लोक परलोक दोनों ही गंवाया।

ख़ानख़ाना के अंतिम दिन

वैरमबेग के दस्ते की भगदड़ तथा ख़ानख़ाना के विश्वासघात ने शाहज़ादे की सारी आशाओं पर तुषार-पात कर दिया। वह उद्विग्न हो उठा। भाग्य प्रतिकूल देख वह वहाँ से भगा और वर्षा-काल के मध्य में ताप्ती नदी पार कर, अपने पूर्व शत्रु गोलकुंडा के कुतुबशाह के राज्य में से होता हुआ, उड़ीसा और बंगाल की ओर बढ़ा। शाहीदल भी उसका पीछा किए जा रहा था। राजकुमार का पलड़ा हल्का होते देख, उसके कुछ और समर्थक विपक्षी से जा मिले, पर इस पर भी उस प्रमत्त युवक का साहस कम न हुआ। वह संघर्ष करता ही गया।

अन्त में दुर्भाग्य के अनेक थपेड़े खाता हुआ, जब उसने १० नवम्बर १६२३ ई० को उड़ीसा-प्रदेश में प्रवेश किया तब जाकर कहीं जान में जान आई।

उधर महावत खाँ, खानखाना को साथ लिए नर्मदा नदी पार कर दक्षिण की ओर बढ़ा। आगे ताप्ती नदी थी, उसे पार कर भागते हुए विद्रोहियों का पीछा करते हुए वह कुछ दूर तक गया। इस समय महावत खाँ के शिविर से उस कपटी खानखाना ने एक बार पुनः शाहजहाँ को अपने जाल में फँसाने का असफल प्रयास किया। उसने विद्रोहियों के एक प्रबल समर्थक राना उदयपुर के पुत्र राजा भीम को लिखा कि यदि शाहजादा उसके पुत्रों को मुक्त कर दे तो वह किसी न किसी उपाय से शाही सैनिकों से राजकुमार का पीछा छुड़वा देगा। उसने चेतावनी दी कि यदि उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया तो वह शाहजादे के हित में ठीक न होगा। किन्तु वह अभिमानी राजपूत भला धमकियों से कब डरता। उसने मुँह तोड़ उत्तर देते हुए लिखा कि शाहजादे के पास अब भी पाँच-छः सहस्र स्वामिनिष्ठ सेवक हैं, यदि खानखाना ने उन तक पहुँचने का साहस किया तो न केवल उसके पुत्र ही तलवार के घाट उतार दिए जायेंगे, अपितु वह वृद्ध सेनापति भी काल से खेलने की मूर्खता करेगा। खानखाना अपना सा मुँह लेकर रह गया। वह अशक्त कर ही क्या सकता था[१]।

दक्षिण-देश की शासन-व्यवस्था पूर्ण कर और बीजापुर-शासक से संधि कर, शाही दल १६ मार्च, १६२४ ई० खानखाना को साथ लिये बुरहानपुर से उत्तर-पूर्व की ओर विद्रोहियों की प्रगति को रोकने के लिए

१ म० उ० (बेवरिज) पृ० ६० ;
खाफी खाँ, भाग १, पृ० ३४० ।

फिर चला। ख़ानख़ाना पर उन्हें विश्वास न था, अतः सारे प्रयाण-काल में वे ख़ानख़ाना का शिविर शाहजादा पर्वेज के शिविर से बिलकुल लगा हुआ रखते थे। ख़ानख़ाना के निकट-भूत के आचरणों को ध्यान में रखते हुए यह उनके लिए आवश्यक भी था। वह असहाय बन्दी इस प्रकार घोर मानसिक वेदना में जीवन के दिन गिन रहा था कि उसे अपने प्रिय पुत्र दाराब की निर्मम हत्या का समाचार मिला। भाग्य ने क्या इन्हीं वज्रपातों को सहने के लिए उसे अब तक जीवित रखा था!

दाराब ने प्राण-दंड का अपराध भी किया था। बंगाल पर अधिकार कर लेने के पश्चात् शाहजहाँ ने दाराब को बन्दीगृह से मुक्त कर उस प्रान्त का सूबेदार नियुक्त किया। पर ऐसा करने से पूर्व शाहजादे ने उससे पवित्र शपथें खिला ली थीं कि वह कभी भी स्वामि-भक्ति से मुहँ न मोड़ेगा। शाहजादे को इस पर भी विश्वास न हुआ था और उसने उसकी स्त्री, पुत्र और भतीजे को उसके भविष्य में उत्तम व्यवहार के निमित्त शरीरबंधक (जमानत) रख छोड़ा था। किन्तु इतने पर भी दाराब विश्वासघात करने से न हिचकिचाया। जब शाहजादा महाबत ख़ाँ के हाथों टान्स नदी के तट पर बुरी तरह पराजित हो, भागता भागता रोहतास पहुँचा तो वहाँ से उसने दाराब को लिखा कि वह अपनी समस्त सैन्य-शक्ति के साथ सीकरी गली (राजमहल दर्रे के प्रवेश द्वार) पर राजकुमार से आ मिले। दाराब ने देखा कि शाहजादे का पलड़ा अब हल्का पड़ रहा है और उसका साथ देने में कुशल नहीं है अतः वह आज्ञापालन में टाल-मटोल करने लगा। उसने शाहजादे को उत्तर देते हुए लिखा कि

स्थानीय भूमिपतियों ने विद्रोह कर उसे बन्दी बना रखा है और वह आदेश-पालन में असमर्थ है। यह तो जी चुराने का एक बहाना था। वास्तव में दाराब ने विद्रोहियों का साथ छोड़ शाही दल में आ मिलने का निश्चय किया था और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसका यह विश्वासघात अन्त में उसके प्राणों का घातक बना।

दाराब की कुचाल का पता लगते ही अब्दुल्ला खाँ ने, शाहजहाँ की इच्छा के विरुद्ध, उसके शरीर-बन्धक रखे हुए पुत्र तथा भतीजे की हत्या कर डाली, यद्यपि वे बालक सर्वथा निरपराध थे। फिर, टान्स की लड़ाई के बाद जब पर्वेज और महाबत खाँ बिहार की ओर जा रहे थे तो शाहजादे को तुरन्त दरबार में उपस्थित होने का आदेश मिला। पर्वेज प्रान्तीय शासन की बागडोर महाबत खाँ को देकर आगरे चला गया। अब महाबत को अवसर मिला। उसने दाराब को बंगाल से बुलवाया। इधर किसी प्रकार उसने शाही आदेश प्राप्त कर लिया था, जिसमें लिखा था कि, 'ऐसे बेकार व्यक्ति को जीवित रखने में कोई तुक नहीं है।' इस आदेश की आड़ में महाबत ने दाराब का सिर कटवा दिया। उसे अब भी शान्ति न मिली। अपने ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वी खानखाना को चिढ़ाने के लिए, उसने उसके मृत-पुत्र के सिर को कपड़े में खूब सुन्दरता से लपेट कर उसके पास भेजा और कहलाया कि यह खरबूजा उपहार-स्वरूप भेजा गया है। प्रिय पुत्र के सिर को देखते ही उस मर्माहत बन्दी कवि के मुख से निकला, 'तरबूज शहीदी अस्त'।

युवक पुत्र तथा निर्दोष पौत्रों के निर्मम अन्त ने उस वृद्ध का

हृदय विदीर्ण कर दिया। उसका दुःख चरम सीमा पर पहुँच चुका था। भाग्य ने शीघ्र उस पर दया की।

मार्च, १६२६ ई० में विद्रोही राजकुमार तथा मुगल-सम्राट में समझौता हो गया। शाहजहाँ ने जहाँगीर की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। किन्तु नूरजहाँ के लिए अब एक नई आपत्ति आ खड़ी हुई थी। साम्राज्य का प्रबल स्तम्भ, परम योद्धा, दृढ़ निश्चयी, महान सेनानायक तथा कुशल कूटनीतिज्ञ महावत खां, जो अभी तक विद्रोहियों के दमन में व्यस्त था, अब पर्वेज के उत्तराधिकार का समर्थन कर रहा था। नूरजहाँ अपने दामाद, शहरयार को उत्तराधिकारी बनाने की चिन्ता में थी। संघर्ष अवश्यसम्भावी था। बेगम तथा सेनानायक की प्राचीन शत्रुता अवसर पाकर फिर पनप उठी। नूरजहाँ का भविष्य तभी सुरक्षित रहता जब कि उसके मार्ग का काँटा—महावत, किसी प्रकार दूर हो जाता। किन्तु उसके विरुद्ध भेजा किसे जाए! यह बात रह रह कर उसे खटक रही थी। सम्भवतः उसीने अपने पति से कहला कर ख़ानख़ाना को पुनः शाही कृपा का पात्र बनाया। आवश्यकता पड़ने पर ख़ानख़ाना ही तो महावत के विरुद्ध भेजा जा सकता था।

कुछ भी हो, इसके एक वर्ष पूर्व ही पर्वेज, शाही आज्ञा के अनुसार, ख़ानख़ाना को बादशाह के सम्मुख ले आया था। जहाँगीर उस समय काश्मीर में था। वह अपने पूर्व अभिभावक से बड़े प्रेम और सम्मान से मिला। वृद्ध ख़ानख़ाना जब दंडवत के लिए झुका तो मारे लज्जा के उसका सिर ही जमीन से नहीं उठ रहा था। कृपालु बादशाह ने उसे बहुत सान्त्वना दी और कहा कि "जो कुछ भी हुआ

वह परिस्थितियों के कारण हुआ, उन पर उसका अधिकार ही क्या था।" "यह आपके या हमारे वश की बात न थी, और मैं आपसे भी अधिक लज्जित हूँ" तत्पश्चात् जहाँगीर ने उसे एक लाख रुपया और कन्नौज में मलकशाह नाम की जागीर प्रदान की। उस दयालु बादशाह ने अपने पूर्व शिक्षक को अपने सम्मानित पद पर एक बार पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया।

अनुगृहीत खानखाना ने सम्राट के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु अपनी अँगूठी पर निम्नलिखित शेर खुदवाया—

मरा लुत्फे जहाँगीरी, बताएदात पुलदानी।
दो बारह जिन्दगी दादो, दो बारह खानखानानी॥

अर्थात्—जहाँगीर की कृपा तथा ईश्वरीय समर्थन ने मुझे पुनः जीवन-दान दिया और पुनः खानखाना की उपाधि से विभूषित किया।

नूरजहाँ की खानखाना को अपनी ओर मिलाने की दूरदर्शी नीति ने समय पर खूब काम दिया। जब महावत खाँ ने साम्राज्य के प्रति विद्रोह किया तो बेगम ने उसी एकहत्तर वर्षीय सेनापति को उसके विरुद्ध भेजा। विदा करने से पूर्व उसने खानखाना का खूब स्वागत-सत्कार किया। महावत की जागीर तो उसे मिली ही, नूरजहाँ ने निजी कोष से उसे बारह लाख रुपये भी दिए। किन्तु इसके पूर्व कि वह सम्मानित सेनापति सिंध पार कर शत्रु का पीछा करे, वह लाहौर ही में बीमार पड़ गया। विपत्तियों का प्रहार सहते सहते उसका शरीर जर्जर हो चला था। बहुत उपचार किए गए किन्तु कोई आशा जनक प्रभाव नहीं दीख पड़ा। दशा सुधरते न देख वह लाहौर से दिल्ली लाया गया किन्तु इस स्थान-परिवर्तन से भी उसे कुछ लाभ न हुआ। १६२७ ई० में वह

बहत्तर वर्ष की जीवन-यात्रा समाप्त कर इस संसार से चल बसा। उसने पहले ही अपने लिए हुमायूँ के मकबरे के निकट एक भव्य एवं विशाल मकबरा बनवा रखा था। उसी में वह दफनाया गया।[१]

१ इकबालनामा (इलियट) भाग ६, पृ० ४३४

सप्तम अध्याय

खानखाना की साहित्यिक रचनाएँ

रहीम की लोक प्रियता का प्रधान रहस्य उनकी साहित्यिक कृतियों में है। मुगल काल में अनेक ऐसे महारथी सामन्त हुए जिन्होंने अपने रण-कौशल तथा राजनीतिक प्रतिभा के कारण अपने स्वामियों के राज्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया, किन्तु उनके पार्थिव शरीर के छूटते ही वह सदा के लिए विस्मृति के गर्त में चले गए। पर रहीम की स्मृति आज भी भारतवासियों के मानस-पटल पर अंकित है, क्योंकि अन्य बहुत से सामन्तों की भाँति उन्होंने जन-हृदय को शक्ति से नहीं अपितु प्रेम और सहानुभूति से जीतने का प्रयत्न किया। जनता की भाषा एवं साहित्य में उनका बहुमूल्य योग, शरण में आये हुए कवियों एवं कलाकारों को उनका उदार आश्रय तथा देश के विभिन्न धर्मों के प्रति उनका सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण-आदि ऐसी बातें थीं जो उनके वर्ग के अन्य व्यक्तियों में उपलब्ध नहीं। बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार के रूप में मुगल सामन्तों में वह अग्रगण्य हैं। वे मध्ययुगीन इतिहास की उन कतिपय विभूतियों में से हैं जो कलम तथा तलवार दोनों ही के धनी थे (साहब-उस-सैफ वा कलम)। यद्यपि प्रामाणिक इतिहास उनके प्रति कुछ क्रूर सा प्रतीत होता है, तथापि समय एवं परम्परागत कथाओं ने उनका यश वास्तविकता से कहीं अधिक चढ़ा बढ़ा दिया है।

रहीम में विभिन्न भाषाओं पर—चाहे वे भारतीय हों या वैदेशिक, शास्त्रीय हों या बोलचाल की—अधिकार प्राप्त कर लेने की अद्भुत क्षमता थी। उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिन्दी का अच्छा

ज्ञान था और अरबी को छोड़ अन्य भाषाओं में उन्होंने काव्य-रचना भी की। कहते हैं कि वे कतिपय योरोपीय भाषाएँ भी जानते थे। हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है। वे अनुवादक भी उच्चकोटि के थे। विभिन्न स्थानों में बिखरे हुए उनके पत्रों की लेखन-शैली से यह निर्विवाद प्रमाणित होता है कि फारसी-गद्य पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनकी असीम मानसिक एवं आर्थिक उदारता की चर्चा सुन देश विदेश के कितने ही लेखक उनके दरबार में आया करते थे। रहीम जाति-पाँति का विचार न करके सब को समान रूप से आश्रय देते थे। ऐसे उदारचेता स्वामी के शौर्य-पराक्रम तथा दानवीरता की प्रशंसा में यदि उन्होंने सहस्रों काव्य रचे, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

रहीम की हिन्दी रचनाएँ।

रहीम ने यों तो कई भाषाओं में रचना की, किन्तु उनकी काव्य-प्रतिभा की जो चमक हमें हिन्दी-कृतियों में मिलती है, वह अन्य में नहीं। हिन्दी के प्रति उनका स्वाभाविक अनुराग तो था ही, उपयुक्त वातावरण ने उसे और दृढ़ कर दिया। हिन्दी-साहित्य को प्रोत्साहन देना, मुगल साम्राज्य की सांस्कृतिक नीति की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। हुमायूँ से लेकर बहादुरशाह द्वितीय तक, सभी मुगल-शासकों ने यह नीति बरती। कट्टर सुन्नी औरंगजेब भी उसका अपवाद न था। हिन्दी-साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। अकबर का राजत्वकाल तो हिन्दी का स्वर्णयुग माना जाता है। हिन्दी काव्य रचना एवं हिन्दी कवियों को उदारता पूर्वक आश्रय देना, मुगल-दरबार का फैशन-सा

हो चला था। अकबर स्वयं यदा-कदा हिन्दी में तुक-बन्दियाँ किया करता था। बीरबल, मानसिंह, तानसेन, यहाँ तक कि शुष्क हृदय टोडरमल भी समय के इस प्रबल प्रवाह में डुबकी लगाने से न चूके। उनकी हिन्दी रचनाओं से हिन्दी संसार परिचित है। किन्तु रहीम की हिन्दी कृतियों में जो भाषा-सौष्ठव, जो भाव-विविधता तथा जो गहन अनुभूति पाठकों को मिलती है, वह अन्य मुगल-सामन्तों की हिन्दी-रचनाओं में उपलब्ध नहीं। हिन्दी के मुस्लिम कवियों में, चाहे वह रहीम के पूर्ववर्ती हों या परवर्ती, ऐसा कोई नहीं है, जो इस बहुमुखी प्रतिभा से टक्कर ले सके[1]।

रहीम की प्रतिभा प्रबन्धकाव्य के उपयुक्त न थी, उसके लिए उनके पास अवकाश भी न था। वे तो बहुधन्धी थे। मुक्तक काव्य ही उनके लिए सम्भव था। उन्होंने न तो मलिक मुहम्मद जायसी आदि सूफी कवियों की भाँति लम्बे-चौड़े आख्यानों में वर्णित लोक-प्रेम के माध्यम द्वारा आध्यात्मिक रहस्यों के उद्‌घाटन की चेष्टा की और न कबीर, सूर तथा तुलसी की भाँति भारत में धार्मिक पुनर्जागृति लाने का ही प्रयत्न किया। वस्तुतः उनका कोई विशेष प्रतिपाद्य विषय न था। वे हरफनमौला थे। जब जिस विषय पर जी में आया, लिख दिया। उनकी कृतियों में हमें यदि एक ओर भक्ति का स्रोत उमड़ता दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर शृंगार की वेगवती धारा। एक ओर आर्त्त भक्त दयालु भगवान को पुकार रहा है तो दूसरी ओर नख-शिख शृंगार

---

१ अकबरी दरबार से सम्बन्धित रहीम के समसामयिक कवियों तथा उनकी कृतियों का विस्तृत परिचय प्राप्त करने के लिए देखिए :—
डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल लिखित, "अकबरी दरबार के हिन्दी कवि"

किए अलबेली नायिका किसी मादक निकुंज में अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में व्याकुल हो रही है। नीति-विषयक रचनाओं की भी कमी नहीं, उनके दोहों में तो बहुधा इसी का प्राचुर्य है। भावों को पद्यात्मक बनाने के हेतु उनका कोई छंद विशेष भी न था। दोहा, बरवै, सोरठा, घनाक्षरी, मालिनी आदि कितने ही छन्दों में उनकी भावाभिव्यंजना हुई। वैसे उनकी अधिकांश रचनाएं नीति, भक्ति एवं शृंगार विषयक हैं और दोहों तथा बरवै में उनका काव्य-कौशल अपेक्षाकृत अधिक चमका है।

रहीम सर्व-साधारण के कवि हैं। कबीर तथा तुलसी की भाँति उनके दोहे भी हिन्दी-भाषी जनता के सहचर हैं। घर, बाहर, सर्वत्र वे उन्हें सान्त्वना, धैर्य तथा प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। उनकी इस अनुपम लोकप्रियता के सबल कारण भी हैं। प्रथम, बहुत से अन्य कवियों की भाँति रहीम केवल कल्पना-जगत में ही नहीं विचरण किया करते थे। वे समझते थे कि व्यावहारिक जीवन से असम्बन्धित कविता चिरस्थायी नहीं बन सकती। कल्पना की ऊँची उड़ान श्रोताओं के हृदय में क्षणिक गुदगुदी उत्पन्न कर देने में भले ही समर्थ हो, किन्तु उसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। रहीम के काव्य में हमें कल्पना एवं वास्तविकता का बड़ा ही सुन्दर एवं संतुलित समन्वय प्राप्त होता है। द्वितीय, इनकी कृतियों में स्वानुभूति की सहज अभिव्यंजना है जो अन्यत्र सुलभ नहीं। उनकी पृष्ठभूमि में एक मुगल सामन्त के वृहद् सांसारिक ज्ञान एवं दीर्घकालीन जीवन के विविध अनुभवों का स्रोत है जो उसे वांछित प्रभाव तथा प्रेरणा प्रदान करता है। रहीम कोरे उपदेशक नहीं थे। वे उत्कर्षापकर्ष, मानापमान, सुख-दुःख तथा हर्ष-शोक आदि परिस्थियों में से गुजरे थे।

उन्होंने संसार को उसके विविध रूपों में खूब देखा, सुना और समझा था। इसलिए वे अनुभवी राजनीतिज्ञ-कवि हो सके। उनकी संवेदनाशील तथा अनुभूतिपूर्ण सूक्तियाँ पाठकों के हृदय को बरबस ही अपना बना लेती हैं। इनके अतिरिक्त रहीम की इस व्यापक लोकप्रियता का एक और रहस्य है, और वह है उनका हिन्दी की तीनों बोलियों, ब्रजभाषा, अवधी, तथा खड़ी बोली पर समान अधिकार। उन्होंने इन तीनों में काव्य-रचना की, इसलिए उनकी पहुँच सभी हिन्दी-भाषियों तक है। उनके शब्द-चयन की विविधता तथा स्वानुभूतिपूर्ण भावों की सरल एवं बोधगम्य अभिव्यंजना शैली सर्व-साधारण के—चाहे वे किसी वर्ग, धर्म या मानसिक स्तर के क्यों न हों,—हृदयों को समान रूप से अपील करती हैं।

भाषा, विषय-तत्व एवं शैली की दृष्टि से रहीम की आज तक उपलब्ध समस्त हिन्दी-रचनाएँ, मोटे तौर पर, तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम वर्ग दोहों का है। 'दोहावली' तथा 'नगर शोभा' इसी छन्द में लिखे गए हैं। इन दोहों की भाषा मुख्यतः ब्रज है, किन्तु यदा-कदा हमें उनमें अवधी तथा खड़ी बोली के शब्द-रूपों का भी पुट मिलता है। कहते हैं, रहीम ने एक 'सतसई' (सात सौ दोहों का संग्रह) लिखी थी, किन्तु शोधकों के निरन्तर प्रयत्नशील रहने पर भी हिन्दी-जगत को उनके कुल चार सौ बारह दोहे ही प्राप्य हैं। रहीम के बहुधन्धी एवं व्यस्त जीवन को देखते हुए उनका 'सतसई' न लिखना ही अधिक सम्भव प्रतीत होता है। सबल प्रमाणों के अभाव में केवल अनुमान से निष्कर्ष निकालना युक्ति संगत नहीं। इन उपलब्ध दोहों में दो सौ सत्तर तो 'दोहावली' के हैं और शेष 'नगर शोभा' के। उनमें

भक्ति, शृंगार तथा नीति-उपदेश आदि विविध भावों की अभिव्यंजना हुई है। रहीम दोहा छन्द के 'गागर में सागर' भरने की क्षमता को भली भाँति समझते थे और इसीलिए इसको उन्होंने अपनी विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का साधन भी बनाया। दोहे के चमत्कार के विषय में वे लिखते हैं :—

'दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥'

रहीम के दोहे हिन्दी-संसार की अनुपम निधि हैं। साक्षर-निरक्षर सभी उनसे परिचित हैं। साधारण वार्तालाप में भी वे प्रायः उद्धृत होते रहते हैं। वास्तव में अपने नीति के दोहों के कारण ही रहीम सर्वसाधारण में इतने लोकप्रिय हैं। उन्हें मुगल राज्य के सामन्त, प्रशासक, सेनानायक तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में इतिहास के विद्यार्थी ही जानते हैं किन्तु दोहाकार रहीम या 'रहिमन' को सामान्य हिन्दी-भाषी भी जानता है। जीवन का जो दीर्घ एवं विविध अनुभव रहीम को था, तथा भाग्य के घात-प्रतिघातों ने उन्हें जो शिक्षा दी थी, उन सभी का बहुत सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रण इन दोहों में हुआ है। उनमें सरसता, उक्ति-वैचित्र्य तथा माधुर्य का भी अभाव नहीं। वे उतने ही मनोहारी हैं, जितने प्रभावकारी। यहाँ उनके 'दोहावली' के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

संसार में सच्चा मित्र कौन है, इस पर रहीम की सम्मति सुनिए :—

'कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहुरीत।
विपत—कसौटी जे कसे, सो ही साँचे मीत॥'

गेहूँ के साथ घुन भी पीसा जाता है, इस लोकोक्ति पर रहीम कहते हैं :—

'कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सेना करें, उरज उमेठे जाहिं॥'

विपत्तिकाल में रहीम की सान्त्वना लाखों मृत-प्राय में आशा संचार कर देती है :—

'रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर॥'

मुगल दरबारी के क्या आचरण-सिद्धान्त थे, इसका आभास हमें दोहे में मिलता है :—

'रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो बासर को निशि कहै, तो कचपची दिखाव॥'

और रहीम के कतिपय दोहों में कितना अनुभव-सिद्ध सार्वभौमिक सत्य हुआ है, इसके भी कुछ उदाहरण देखिए :—

'उरग, तुरग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सम्भारिए, पलटत लगे न बार॥'
'खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान॥'
'यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होत ही होय॥'
'अरज गरज माने नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम-आतुरी नारि॥'

इसी प्रकार सज्जन-दुर्जनों के लक्षण, प्रेम मर्यादा, सत्संग-कुसंग प्रभाव, भावी की प्रबलता आदि सम्बन्धी कितने रहीम के दोहे

जनता के जिह्वाग्र पर रहते हैं और धैर्य, सान्त्वना दे उनका पथ प्रदर्शन किया करते हैं।

रहीम ने ऐसे युग में काव्य-रचना की जब कि हिन्दी साहित्य में भक्त कवियों का प्राबल्य था। कबीर, नानक आदि संतों की वाणी से निस्सृत भक्ति-काव्य-मंदाकिनी सूर-तुलसी की कृतियों के सयोग से और अधिक वेगवती हो उठी थी। अकबरी दरबार के लौकिक कवि भी इस पावन सरिता में निमज्जन कर अपने को कृतकृत्य करने का लोभ संवरण न कर सके। रहीम मुसलमान थे और जीवनांत तक इस्लाम धर्म के अनुयायी रहे, पर समय-प्रवाह से वे भी अछूते न रह सके। उन्हें हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रति कितनी सहानुभूति थी तथा उनका विशाल हृदय साम्प्रदायिकता की संकुचित भावना से कितना ऊपर उठ सकता था, यह तथ्य उनके दोहों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनकी दोहावली का श्रीगणेश ही गंगा स्तुति से होता है :—

'अच्युत-चरन तरंगिनी, शिव सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल॥'

भगवान की शरणागति ही में वह जगत-उद्धार का उपाय देखते थे :—

'गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार को, और न कछू उपाव॥'

नैराश्य-ग्रसित, मृत-प्राय में भी उनकी उक्ति प्राण-संचार कर देती है, भक्त की डगमगाती श्रद्धा दृढ़तर हो जाती है। भगवान तो रक्षक हैं ही फिर क्या चिन्ता :—

'रन, बन, व्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरो न रोय
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥'
'रहिमन कोऊ का करे, ज्वारी, चोर, लबार ।
जो पत - राखनहार है, माखन - चाखनहार ॥'

मध्यकालीन सन्तों ने राम नाम की बड़ी महिमा गाई है, जप में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। रहीम भी उनके स्वर मिला कर कहते हैं :—

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि ।
कहि रहीम तिहिं आपनो, जनम गँवायो बादि ॥'

रहीम को पौराणिक गाथाओं का कितना विशद ज्ञा इसके भी परिचायक उनके दोहे हैं :—

'माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम ।
तीन पैंड़ बसुधा करी, तऊ बावने नाम ॥'
'धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥'

रहीम के दोहों में यदा-कदा श्रृंगार का भी पुट मिलता वे नगण्य से हैं। :—

'नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन ।
मीठो भावे लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥'
'रहिमन इकदिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पड़े पहार ॥'
'रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय ।
नैन-बान की चोट ते, धन्वन्तरि न बचाय ॥'

रहीम ने जहाँगीर के राजत्व काल में समय समय पर जो दुर्दिन देखे, जो विपत्तियाँ झेलीं और जो अपमान सहे, उनका भी आभास यदा कदा हमें उनके दोहों में मिलता है। इन परिस्थितियों में इन्हें जो कटु अनुभव हुए, वे बड़े ही मार्मिक ढंग से इनमें व्यक्त किए गए हैं। बादशाह नाराज हैं, आय का कोई साधन नहीं है, पर व्यय पूर्ववत ही है। रहीम की दशा अल्प जल की मछली की भाँति हो चली है :—

'खरच बढ्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन॥'

ऐसी विपत्ति में कोई मित्र साथ नहीं दे रहा है :—

'जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय॥'

यही नहीं, वे शत्रुवत् व्यवहार करने लगते हैं :—

'जिहि अंचल दीपक दुर्‍यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥'

अब वे उस पदच्युत सेनापति पर तरह तरह के छींटे कसते हैं, अपनी बुद्धिमत्ता की डींगे हाँकते हैं। रहीम भी कुसमय समझ मौन बैठे हैं :—

'पावस देखि रहीम मन कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हमको पूछत कौन॥'

याचक-गण पीछा नहीं छोड़ते, वे रहीम को कल्पतरु अथवा कामधेनु का ही अवतार समझते हैं। ऐसी विवशता में रहीम को जीवन-यापन अनुचित-सा प्रतीत होने लगता है :—

'तबही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम ।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥'

शाहजहाँ के प्रति उनके किए गए विश्वासघात की चारों ओर निन्दा हो रही है। रहीम पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहे हैं। वह अनुभव करते हैं कि अब इस भूल का, चाहे वह कुछ भी करें, सुधार सम्भव नहीं :—

'बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय ।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥'

किन्तु फिर यह सोच कर कुछ सान्त्वना मिलती है कि दुर्दिन में बड़ों-बड़ों ने भी तो ऐसे जघन्य कृत्य किए हैं :—

'रहिमन दुर्दिन के परे, बड़ेन किए घटि काज ।
पाँच रूप पाँडव भए, रथवाहक नलराज ॥'

रहीम नियतिवादी हैं। वह दिनों का फेर समझ चुप होकर बैठ तो जाते हैं किन्तु इस बलवती आशा में कि अनुकूल समय आने पर बिगड़ी को बनते देर न लगेगी :—

'रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥'

और उनकी आशा पूर्ण भी हुई, किन्तु उस अनुभव को काव्य-बद्ध करने से पूर्व ही वह इस संसार से चल बसे।

रहीम की 'दोहावली' में प्रधानतः नीति, उपदेश तथा भक्ति-विषयक दोहे हैं, किन्तु 'नगर-शोभा' के दोहों का विषय-तत्त्व सर्वथा भिन्न है। इनमें तत्कालीन भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की नारियों का शब्द-चित्रण है। इसका प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है, अतः यह दोहावली से पृथक एक स्वतंत्र ग्रंथ प्रतीत होता है। यद्यपि

इन दोहों में दोहावली के दोहों की भाँति 'रहीम' या 'रहिमन' शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है, तथापि भाषा-प्रौढ़ता एवं भाव-साम्य से ये रहीम-रचित ही ज्ञात होते हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में यह स्पष्ट उल्लिखित है, 'अथ नगर शोभा नवाब ख़ानख़ाना कृत'। इससे रही-सही शंका का भी समाधान हो जाता है। ये दोहे शृंगार-रस-प्लावित हैं और इनकी उपयुक्त शब्दावली विभिन्नवर्गीय रमणियों की सजीव मूर्ति पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देती है। उनकी जातिगत विशेषताओं का, उनके रूप-रंग, व्यापार, हाव-भाव, कला-कौशल तथा मनोवृत्तियों का बड़ा ही सफल चित्रण हुआ है। प्रत्येक वर्ग के वर्णन में कुछ ऐसे शब्द प्रयोग किए गए हैं जो उसके मुख्य व्यवसाय के परिचायक हैं। इन दोहों के कुछ ही उदाहरण उक्त तथ्य को स्पष्ट कर देंगे।

ब्राह्मणी की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हुए रहीम कहते हैं:—

'उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय॥
परजापति परमेश्वरी, गंगा रूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान॥'

पावन, पाप नाशक, जाह्नवी तुल्य तथा चित्ताकर्षक ब्राह्मणी मध्य युगीन समाज में सम्मान की पात्री थी। उसी काल में तुलसी ने भी तो लिखा है, 'पूजिय विप्र वेद गुन हीना'। राजपूत शासन एवं युद्ध के विशेषज्ञ होते थे। यदि पुरुष देशों पर राज्य करते थे और तीर-कमान तथा बन्दूक से लड़ते थे तो उनकी स्त्रियाँ रूप द्वीप के देश पर राज्य करती थीं और अपनी कमान रूपी भौंहों तथा छिटकी हुई लट की बन्दूकची से नायक पर प्रहार करती थीं:—

'राज करत रजपूतई, देस रूप के दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप॥
सोभित सुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटै बँदूकची, भौंहैं रूप कमान॥'

यदि कायस्थ लेखन-कार्य में अग्रगण्य थे तो उनकी रमणियाँ उनसे पीछे न थीं। वे भौंहों के बाल की लेखनी और काजल की स्याही ले नेत्रों से प्रेमाक्षर लिख प्रियतम को पढ़ने के लिए देती थीं:—

'कैथनि कथन न पारई, प्रेम कथा सुख बैन।
छाती ही पाती मनों, लिखै मैन की सैन॥
बरुनि बार लेखन करै, मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिख नैनते, पिय बाँचन को देइ॥'

इसी प्रकार जौहरिन, बरइन, कुम्हारिन रँगरेजिन, चमारिन आदि की जातिगत विशेषताओं का भी वर्णन है। रहीम की यह कृति काव्य की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका मूल्य कम नहीं। मध्ययुगीन भारतीय समाज का जो सजीव, जीता-जागता तथा वास्तविक चित्रण हमें, 'नगरशोभा' में प्राप्त है उससे उस काल के इतिहास का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

रहीम की हिन्दी रचनाओं के द्वितीय वर्ग में उनके 'बरवै' सम्मिलित हैं। इस छन्द में रचित रहीम की दो कृतियाँ हैं—'बरवै नायिका भेद' तथा 'बरवै'। बरवै अवधी भाषा का अत्यन्त मोहक छन्द है। भाव और स्वर के असीम विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अवकाश है। रहीम को इस छन्द में काव्य-रचना की प्रेरणा कैसे प्राप्त हुई, इसकी

गाथा बड़ी रोचक है। कहते हैं, खानखाना का एक मुंशी कुछ दिनों की छुट्टी ले अपना विवाह करने गया। अवकाश-काल समाप्त हो गया किन्तु तब भी वह न लौटा। अन्ततोगत्वा जब जीवन की कठोर वास्तविकताओं ने उस प्रेमविभोर युवक को रोमान्स-निद्रा से जागृत किया, तो उसे अपने पद-दायित्व की याद आई। चिन्तित और आतुर जब वह अपनी नव विवाहिता पत्नी से विदा लेने गया तो वह चतुर रमणी उसकी चिन्ता का कारण तुरन्त भाँप गई। उसने निम्नलिखित बरवै पति को देते हुए कहा कि वह जाकर उसे अपने कवि-हृदय स्वामी को दे :—

'प्रेम प्रीति के बिरवा, चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय॥'

इन पंक्तियों ने रहीम के हृदय में घर कर लिया। वे बरवै छन्द की सामर्थ्य एवं सौंदर्य पर मुग्ध हो उठे और उसी प्रेरणा के फल स्वरूप 'बरवै नायिका भेद' लिखा। वैसे भी रहीम को विविध छन्दों में रचना करने का शौक था। उन्होंने कवित्त लिखे, दोहे लिखे और कदाचित छप्पय भी, (रहीम के छप्पय उपलब्ध नहीं) किन्तु वे बरवै की तुलना न कर सके, इसलिए अन्त में रस-पूर्ण बरवै की रचना की :—

'कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छन्द।
बिरच्यो यही बिचारि के, यह बरवा रसकन्द॥
बेधक अनियारो बड़ो, समुझैं चतुर सुजान।
सुनत जात चित चाव पै, यह बरवै के बान॥'

रहीम रचित 'बरवै नायिका भेद' रीति काव्य के आदि ग्रन्थों में गिना जाता है। हिन्दी साहित्य को रीति काव्य लिखने की परम्परा

संस्कृत-साहित्य से प्राप्त हुई। अपभ्रंश साहित्य में इसका प्रायः अभाव ही था। भक्ति-युग के उत्तरकाल में इस परम्परा को हिन्दी-साहित्य में चलाने का श्रेय जिन कवियों को प्राप्त है, उनमें रहीम का नाम प्रमुख है। इनके उक्त ग्रन्थ का हिन्दी के शृंगार साहित्य में उच्च स्थान है। 'बरवै' छंद को काव्याभिव्यक्ति का साधन बनाने का सर्वप्रथम श्रेय भी रहीम को ही प्राप्त है।

'बरवै नायिका-भेद' शृंगार रस का काव्य है। यह संस्कृत के काम-सूत्र तथा नाट्य-शास्त्र के ढंग पर लिखा गया है किन्तु रहीम की सुसंस्कृत रुचि के कारण इनमें कभी अश्लीलता नहीं आने पाई। इसमें विभिन्न वर्ग के नायक-नायिका के लक्षणों, हाव-भावों तथा मनोवृत्तियों का बड़ा सरस वर्णन है। उदाहरण स्वरूप कुछ बरवै यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैः—

मुग्धा नायिका अपने यौवन-आगमन से पूर्ण अनभिज्ञ है, उरोजों का उभार उसे कोई रोग प्रतीत होता है:—

'कवन रोग दुहुँ छतियाँ उकस्यो आइ।
दुखि दुखि उठत करेजवा, लगि जनु जाइ॥'

ज्ञात यौवना नायिका भी सुखी नहीं। यावन के आगमन ने उसे व्यथित-सा कर दिया है। सखी सहेलियों का संग छोड़ना उसे रुचिकर नहीं प्रतीत होता:—

'औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुखदीन।
छुटिगो संग गुइँअवाँ, नहिं भल कीन॥'

विश्रब्ध नवोढ़ा-नायिका को प्रियतम का आकर्षण तो अवश्य है, किन्तु अभी उसमें इतना साहस नहीं कि वह बेखटके उसका आलिंगन

कर सके। नायक के लाख प्रयत्न करने पर भी वह लज्जा-त्यागने को प्रस्तुत नहीं:—

'जंघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुवन न पाव पियवा कहुँ कुच कोर॥'

किन्तु प्रौढ़ा नायिका में यह बात नहीं। वह पति के साथ रस-क्रीड़ा करने को सभी कलाओं में प्रवीणा है। रात्रि भर प्रियतम की गोद का सुखानुभव करने पर भी उसे तृप्ति नहीं। उसे तो 'छमासी रैन' ही अभीष्ट है। प्रातःकाल की कोयल की कूक उसके ताप को और बढ़ा देती है:—

'भोरहि बोल कोइलिया, बढ़वत ताप।
घरी एक भरि अलिया रहु चुपचाप॥'

रूप-गर्विता नायिका 'चन्द्रवदनी' सम्बोधित होने पर खीझ उठती है। तीन अवगुणों से पूर्ण चन्द्रमा से उसके मुख की समता कर नायक ने मूर्खता ही की:—

'वक्र, मलिन, विषभैया, औगुन तीन।
मोहि कहि चंद-बदनिया, पिय मतिहीन॥'

अब कुछ नायकों के भी उदाहरण देखिये :—

क्रिया-चतुर नायक किस युक्ति से प्रेयसी का स्पर्श प्राप्त करता है :—

'खेलत जानेसि टोलिया, नंदकिसोर।
छुइ वृषभान-कुमरिया, भैगा चोर॥'

मानो नायक का अभिमान नायिका को सह्य नहीं, वह भी ईंट का जवाब पत्थर से देती है :—

'अब न जनम भर सखिया, ताकौं वोहि ।
ऐंठत गो अभिमनवा, तजि के मोंहि ॥'

आदर्श नायक वही है जो तरुण, सुवर्ण, सुन्दर, कुलीन तथा काम-कला प्रवीण हो :—

'सुन्दर चतुर धनिकवा, जातिउ ऊँच ।
केलि कला - परबिनवा, सील समूच ॥'

इसी प्रकार विभिन्न नायक नायकाओं के भेद-उपभेद, विविध प्रकारों में दर्शन तथा सखी एवं सखी-जन कर्म आदि विषयों की सुविस्तृत विवेचना इस ग्रंथ में की गई है।

'बरवै नायिका-भेद' के अतिरिक्त एक और कृति 'बरवै' रहीम रचित कही जाती है। इसमें शृंगार एवं भक्ति-वैराग्य विषयक एक सौ एक बरवै हैं। मंगलाचरण से प्रारम्भ होने के कारण यह नायिका-भेद से पृथक् एक स्वतंत्र रचना प्रतीत होती है। यह रहीम की ही कृति है, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं, हाँ विषय-तत्व, भाषा तथा हस्तलिखित प्रति के प्रत्येक पृष्ठ के हाशिए पर चित्रित फारस शैली के बेल बूँटे आदि से अनुमान होता है कि सम्भवतः यह रहीम की ही रचना होगी। यह कृति रहीम के ननिहाल मेवात में प्राप्त हुई थी। उसमें उद्धृत कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं।

मादक पावस ने विरहिणी को विह्वल कर दिया है। मेघों का गर्जन, मोरों का शोर, बिजली की चमक आदि उसके लिए कष्टदायी है ही, समीपस्थ सहेलियों की अपने प्रियतमों के साथ प्रेम-क्रीड़ा देख उसकी व्यथा असह्य-सी हो जाती है :—

'घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज ।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन तीज ॥'

ऐसे समय चातक की 'पीउ' उसके हृदय में उत्पात मचा देती है :—

'पीव पीव कहि चातक, सठ अधरात ।
करत बिरहनी तियके हिय उतपात ॥'

और त्रिविधि बयार उस पर तलवार-सदृश वार करती है:—

'डोलत त्रिविध मरुतवा, सुखद सुढार ।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥'

विरह-दग्ध गोपिकाएँ उद्धव के ज्ञानोपदेश पर कैसा मर्म स्पर्शी उत्तर देती हैं :—

'कहा छलत हो ऊधो, दै परतीति ।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहनि मीति ॥
बन उपवन गिरि सरिता, जिती कठोर ।
लगत देह से बिछुरे, नंदकिशोर ॥
घेर रह्यो दिन रतियाँ, विरह बलाय ।
मोहन की वह बतियाँ ऊधो हाय ॥'

एक विवश प्रेमिका की शिकायत रहीम के फारसी बरवै में सुनिए :—

'कै गोयम अहवालम्, पेश निगार ।
तनहा नजर न आयद, दिल लाचार ॥'

कुछ भक्तिरस के भी उदाहरण देखिए :—

'भजु मन राम सियापति, रघुकुल ईस ।
दीनबन्धु दुख टारन, कोसलधीस ॥

ध्यावहु सोच - विमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥'

दोहे तथा बरवै के अतिरिक्त रहीम की अन्य छंदों में की गई हिन्दी रचनाएँ तृतीय वर्ग के भीतर आएँगी। इनमें घनाक्षरी, सवैया, सोरठा, मालिनी आदि सभी हैं। इनमें से कुछ ब्रज भाषा में, कुछ अवधी में, कुछ खड़ी बोली में तथा कुछ मिश्रित बोलियों में लिखे गए हैं। उनका 'मदनाष्टक' शीर्षक काव्य, जिसमें संस्कृत, फारसी, ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली का अद्भुत समन्वय है, यह स्पष्ट प्रमाणित करता है कि रहीम को उस काल की सभी मुख्य भाषाओं पर समान अधिकार था। इस अष्टक की रचना संस्कृत-कवियों की चाल पर मालिनी छंद में हुई है। इन पदों में शृंगार रस ही प्रधान है। दो-एक उदाहरण देखिए :—

शरद रात्रि की चन्द्र ज्योत्स्ना में कृष्ण का वंशी-वादन गोपिकाओं को किस भाँति आतुर और बेसुध कर देता है, यह निम्न उद्धृत पंक्तियों में स्पष्ट चित्रित है :—

'शरद निशि निशीथे, चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे, कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥'

और उस अलबेले यार का कितना सजीव शब्द-चित्र सम्मुख उपस्थित किया गया है :—

'कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥

कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला ।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥'

रहीम रचित एक सवैया का भी नमूना देखिए:—

जाति हुती सखि गोहन में, मन मोहन को लखि के ललचानो ।
नागरि नारि नई ब्रज की, उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो ॥
जाति भई फिरिके चितई, तब, भाव 'रहीम' यहै उर आनो ।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि, तीर सों मारि लै जात निसानो ॥

नवेली नायिका कटाक्ष से किस प्रकार अपने लक्ष्य, नायक-हृदय को बेध कर अपने साथ ले जाती है, इसकी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा उक्त पंक्तियों में हुई है। ऐसे ही मद-भरे नेत्रों का चित्रण रहीम की एक घनाक्षरी में देखिए:—

'अति अनियारे मनो सान दे सुधारे,
महा विष के विषारे ये करत परघात हैं ।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं ॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भए,
तोहू तो 'रहीम' थोरे बिधि ना सकात हैं ।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं ॥'

कृष्ण की रूप-माधुरी कवि के हृदय में घर कर गई है, उस बाँके बिहारी की छवि एक क्षण के लिए भी उसके स्मृति-पटल से ओझल नहीं होती। मदनगोपाल के मादक रूप का द्रष्टा ही रहीम के 'हाल' को जान सकता है!—

छवि भावन मोहन लाल की।

काछे काछनि कलित मुरलि कर, पीत पिछौरी साल की॥
बंक तिलक केसर को कीने, दुति मानो विधुबाल की।
विसरत नाहिं सखी मो मन ते, चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हंसनि अधर सधरनि की, छवि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर, डोलनि मुकुतामाल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि, बोलनि मदन-गोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै, इस रहीम के हाल की॥

और अंत में रहीम का उक्ति-वैचित्र्य एक सोरठे में देखिए:—

'गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै॥'

संक्षेप में, रहीम ने अपने समय के प्रायः सभी लोक-प्रिय छन्दों में हिन्दी-रचना की। केवल उन्होंने चौपाई नहीं लिखी, जिसका कारण स्पष्ट है। 'चौपाई' छन्द प्रबन्ध-काव्य की वर्णनात्मक शैली के लिए ही अधिक उपयुक्त है, मुक्तक शैली के लिए नहीं। रहीम का उद्देश्य कभी प्रबन्ध काव्य लिखने का न रहा, तो फिर चौपाई की रचना ही कैसे होती।

संस्कृत-काव्य का रहीम की हिन्दी-रचनाओं पर प्रभाव,

अन्य कवियों की भाँति, रहीम की रचनाओं पर भी संस्कृत-काव्य-भावनाओं की छाप स्पष्ट है। रहीम को संस्कृत-साहित्य से घनिष्ट परिचय था, अतः यदि हमें उनकी कृतियों में संस्कृत में वर्णित काव्य-

भावनाओं की पुनरावृत्ति मिलती है तो आश्चर्य ही क्या ! संस्कृत हिन्दी की जननी है और माता की छाया पुत्री पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है। सूर, तुलसी तथा केशव आदि की भी कृतियों में यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्वर्गीय श्री मायाशंकर याज्ञिक जी ने अपनी 'रहीम रत्नावली' में संस्कृत श्लोकों तथा रहीम की हिन्दी-रचनाओं में प्राप्त सदृश भावों का विस्तृत एवं विशद विवेचन किया है। यहाँ उस भाव-साम्य के कतिपय प्रमुख उदाहरण ही उद्धृत किए जा रहे हैं :—

आदिकवि वाल्मीकि-रचित एक श्लोक है :—

हारो नारोपितः कण्ठे, मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः ॥'

रहीम उसी भाव को कितनी सुन्दरता से व्यक्त करते हैं।-

'रहिमन इक दिन वे रहें, बीच न सोहत हार ।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार ॥'

घनानन्द जी भी उसी की पुनरावृत्ति करते हुए कहते हैं :—

'तब हार पहार से लागत है, अब बीचन आइ पहार परे ॥

किसी संस्कृत कवि की उक्ति है :—

'यद्वदन्ति चपलेत्यपवादं नव दूषणमिदं कमलायाः ।
दूषणं जलनिधेर्हि भवत्यथपुराणपुरुषाय ददीताम् ॥

इसी का सारांश रहीम के निम्न उद्धृत दोहे में देखिए :—

'कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ॥'

संस्कृत का एक और श्लोक है :—

*'याचना हि पुरुषस्य महत्वं नाशयत्यखिलमेव तथाहि ॥
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन् ॥'*

रहीम ने उसको इस दोहे में कितनी कुशलता से अनूदित किया है :—

*'रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायण हू को भयो बावन अंगुर गात ॥'*

इसी प्रकार रहीम की कितनी अन्य रचनाएँ संस्कृत-कविता की ऋणी हैं। विशेषता यह है कि भाषान्तर में शैथिल्य नहीं आने पाया है। यह भावानुहरण क्षम्य ही नहीं स्तुत्य है। संस्कृत से अनभिज्ञ हिन्दी भाषियों को उस दुर्लभ काव्य-सुधा का पान करने का जो सौभाग्य प्राप्त है, उसके लिए वे रहीम के आभारी हैं।

रहीम तथा हिन्दी के अन्य कवि

संस्कृत की भाँति रहीम की रचनाओं में उनके पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों की उक्तियों की भी यत्र तत्र पुनरावृत्ति दिखाई देती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के हेतु यहाँ केवल दो प्रमुख कवियों—कबीर और सूर की कतिपय रचनायें उद्धृत की जा रही हैं। रहीम और खुसरो की हिन्दी कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन सविस्तार अगले खंड में किया जायगा।

(अ) रहीम और कबीर :—इन दोनों के कई दोहों में अद्भुत भाव सादृश्य है, कुछ में तो भाषा-साम्य भी। इनके कुछ उदाहरण देखिए:—

कबीर की उक्ति है :—

'वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर ॥'

उसी को रहीम के शब्दों में देखिए:—

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सँचहिं सुजान ॥'

कबीर कहते हैं:—

'बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।'

रहीम की यही भावाभिव्यक्ति देखिए:—

'होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर ।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर ॥'

कबीर का एक दोहा है:—

'मागन गये सो मरि रहे, मरे सो मागन जाहिं ।
तिन सों पहिले वे मुए, होत करत जो नाहिं ॥'

इसी भाव को लेकर रहीम कहते हैं:—

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥'

(ब) रहीम और सूरदास:—इसी प्रकार सूर और रहीम के भावों में भी काफी साम्य है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में यह कहना तो कठिन है कि इन दोनों कवियों की कभी व्यक्तिगत भेंट हुई थी, हाँ वैष्णवदास के 'भक्तमाल' में अवश्य उल्लेख आया है कि रहीम गोकुल के वल्लभाचार्य-मठ के प्रधान स्वामी विट्ठलनाथ जी से मिले थे। कुछ भी हो, रहीम के कृष्ण-विषयक पद तथा उनका ब्रज

भाषा पर अद्भुत अधिकार यह निःसन्देह सिद्ध करता है कि उन्होंने सूर की कृतियों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। सूरदास के कतिपय भावों को अपनी भाषा में व्यक्त करने में उन्हें कोई संकोच भी नहीं। यहाँ सदृश भावों की कुछ रचनाएँ उद्धृत की जा रही हैं।

सूरदास जी की उक्ति है :—

'सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत को फल सूर॥'

इसी भाव को रहीम के शब्दों में देखिए :—

'कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगत बैठिए, तैसोई फल दीन॥'

सूरदास का एक पद्यांश निम्न लिखित है :—

कुसमय मीत काको कवन !

कमल को रवि परम हित है कहत श्रुति अस बयन।
घटत वारिधि भयो दारुण, करत कमलन दहन॥

रहीम ने उसी कठोर सत्य को इस दोहे में व्यक्त किया है :

'जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज-अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय॥'

रहीम तथा तुलसीदास

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, रहीम और तुलसीदास परम मित्र थे। साहित्य-क्षेत्र में एक दूसरे का कितना ऋणी है, इस ठीक ठीक मूल्यांकन करना कठिन है, पर जब वे समय-समय

मिलते-जुलते थे तो उनमें विचार-विनिमय अवश्य होता रहा होगा। बाबा बेणीमाधव दास कृत 'मूलगोसाईं चरित' के अनुसार तुलसीदास जी ने अपना 'बरवै रामायण' रहीम की प्रेरणा से ही लिखा। लेखक कहता है:—

'कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुन्दर छंद में, रचना कियेउ प्रकास॥'

'मूलगोसाईं चरित' कुछ काल तक प्रामाणिक समकालीन ग्रन्थ माना जाता था, किन्तु हाल ही में कुछ विद्वानों ने उसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है। उनके अनुसार यह एक जाली ग्रन्थ है। बाबा बेणीमाधव की रचना प्रामाणिक है या नहीं, इस विवाद में हम नहीं पड़ना चाहते, किन्तु तुलसी विषयक जन-श्रुतियों से भी यही ज्ञात होता है कि रहीम की प्रेरणा से गोस्वामी जी ने 'बरवै रामायण' की रचना की। हिन्दी के कुछ विद्वानों को यह तथ्य स्वीकार नहीं। एक लेखक का कहना है कि रहीम सम्वत् १६६६ से १६७२ तक दक्षिण भारत में थे। 'यह बात असंगत सी जँचती है कि सुदूर दक्षिण से रहीम ने कतिपय बरवै की रचना कर उन्हें हमारे कवि (तुलसीदास) के पास भेजा हो।'[१] इसी प्रकार एक अन्य लेखक का कथन है कि सम्वत् १६६६ में रहीम बड़ी आपत्ति में थे और उस संघर्षमय समय में रहीम की मानसिक दशा ऐसी नहीं थी कि वे 'बरवै नायिका-भेद' जैसी शृंगारपूर्ण रचना कर सकें।[२] ध्यान पूर्वक मनन पर हमें उक्त अनुमान भ्रमजनक ही प्रतीत होते हैं।

१ डा० माताप्रसाद गुप्त लिखित 'तुलसीदास' पृष्ठ ५०
२ डा० रामकुमार वर्मा लिखित 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ५०८।

१६१० ई० में रहीम दक्षिण से वापस बुला लिये गए और उसके पश्चात् दो वर्ष तक वे कन्नौज के जागीरदार रहे। उस सेनापति के व्यस्त जीवन में बहुत कम ऐसे अवसर आए जब उसे साम्राज्य के दायित्वों से इतना दीर्घकालीन अवकाश मिला हो। कवि रहीम ने इन अवकाश क्षणों को सम्भवतः काव्य रचना ही में व्यतीत किया होगा। उनकी कतिपय साहित्यिक कृतियाँ जिनमें उनके व्यथित हृदय की भावनाएँ व्यक्त हैं, इसी समय लिखी गईं। उनका केवल एक दोहा उक्त तथ्य को स्पष्ट कर देगा :—

'खरच बढ़्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन॥'

बहुत सम्भव है कि रहीम ने अपने मित्र तुलसीदास को 'बरवै' छन्द की अवधी भाषा में भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता प्रदर्शन करने के उद्देश्य से उनके कतिपय दोहों के भावों को इस छन्द में बद्ध कर उनके पास भेजा हो। ये बरवै सम्भवतः तुलसीदास जी के पास उस समय पहुँचे जब कि १६१२ ई० में रहीम अपनी जागीर से बुलवाकर दक्षिण कमान पर पुनः भेजे गए। और इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि रहीम के कतिपय बरवै और तुलसी के कुछ दोहों में अद्भुत भाव साम्य है। केवल कुछ ही उदाहरण इस तर्क की पुष्टि के लिए पर्याप्त हैं।

१—'जिहि सुमिरत सिध होय, गणनायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि रासि सुभ गुण सदन॥' 'तुलसी'
'बंदहु विघन विनासन, रिधि सिधि ईस।
निर्मल बुद्धि प्रकासन, सिसु ससि सीस॥' 'रहीम'

२—'वन्दहुँ पवनकुमार, खल वन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सरचाप धर॥' 'तुलसी'
'ध्यावहुँ विपति विदारन, सुवन समीर।
खल दानव वन जारन प्रिय रघुबीर॥' 'रहीम'
३—'वन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥' 'तुलसी'
'पुनि पुनि वन्दहुँ गुरु के पद जल जात।
जिहिं प्रसाद ते मन के, तिमिर विलात॥' 'रहीम'

द्वितीय तर्क के उत्तर में कहा जा सकता है कि रहीम ने शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों में भी बरवै रचना की। उक्त उदाहरण इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं। कतिपय निम्नलिखित उदाहरण इस कथन की और भी पुष्टि कर देते हैं :—

'भज रे मन नंद नंदन, विपति विदार।
गोपी जन मन रंजन, परम उदार॥'
'रे मन भज निस बासर, श्री बलबीर।
जो बिन जाचे टारत, जन की पीर॥'

जन-श्रुतियों के अनुसार रहीम तथा तुलसी की कृतियों का आदान-प्रदान प्रायः पत्र व्यवहार के रूप में भी हुआ करता था। कहते हैं कि एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण तुलसीदास के पास यह प्रार्थना लेकर गया कि वह अपने उदार मित्र रहीम को सिफारिश का एक पत्र लिख दें, जिससे उसे अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ आर्थिक सहायता मिल जाए। तुलसीदास ने यह पंक्ति पत्र-वाहक के हाथ रहीम के पास भेजी।

'सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय',

रहीम तुरन्त आशय ताड़ गए। उन्होंने उस ब्राह्मण को आवश्यक सहायता दी और दोहे की पूर्ति के लिए निम्न पंक्ति को लिख कर उसे तुलसीदास के पास वापस भेज दिया।

'गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय'

रहीम तथा तुलसी के काव्य-भावों में भी कहीं कहीं अद्भुत साम्य मिलता है। निम्नलिखित कतिपय दोहे इस भाव-साम्य के स्पष्ट परिचायक हैं:—

बिन प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न हिये कलेस।
वामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस॥ 'तुलसी'
धरि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस॥ 'रहीम'
नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिसाल।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल॥ 'तुलसी'
कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥ 'रहीम'
आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोय।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिन, तरनि तासु रिपु होय॥ 'तुलसी'
जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिन, रवि नाहिन हित होय॥ 'रहीम'
तुलसी जिनके मुखन ते, धोखेहु निकलत राम।
तिन के पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥ 'तुलसी'

रहिमन धोखे भाव से, मुख तें निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ 'रहीम'

रहीम तथा अमीर खुसरो

साहित्य-क्षेत्र में, अमीर खुसरो, कई दृष्टियों से रहीम के अग्रज थे। रहीम की कृतियों का मूल रूप खुसरो की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित है। उन दोनों में बहुत साम्य था। दोनों फारसी भाषा के उत्कृष्ट कवि थे, दोनों ने हिन्दी की खड़ी बोली तथा उर्दू के विकास में अनुपम योग दिया, दोनों ने, कम से कम साहित्य-क्षेत्र में, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया, दोनों ने अपनी हिन्दी रचनाओं में अरबी तथा फारसी भाषा के शब्दों का दिल खोलकर प्रयोग किया, और दोनों ही बहुमुखी प्रतिभा के मुसलमान कवि थे।

किन्तु इतना स्पष्ट साम्य होते हुए भी, हिन्दू धर्म के आचारों एवं विश्वासों के प्रति दोनों के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर था। अमीर खुसरो, बलबन तथा अलाउद्दीन जैसे हठधर्मी सुल्तानों के दरबारी कवि थे। उनसे "काफिरों" के प्रति उस सहानुभूति, औदार्य्य, तथा दृष्टि-व्यापकता की, जो हमें रहीम की कृतियों में मिलती है, आशा ही कैसे की जा सकती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खुसरो में कुछ सहिष्णुता थी। वह सहिष्णुता उस युग में बिरले ही मुसलमानों में रही होगी। 'उनमें जातीय, धार्मिक तथा सामाजिक भेद-भाव बहुत कम था।' उन्हें तुर्क-जाति में जन्म लेने का अभिमान अवश्य था, तो भी वे भारत देश, उसके सुन्दर पुष्पों, उसकी भाषा तथा वहाँ के साँवले सौंदर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। पर, जैसा कि डा०

मुहम्मद वहीद मिर्जा इस कवि पर लिखे गए अपने विद्वत्तापूर्ण प्रबन्ध में स्वीकार करते हैं, उनके हृदय में विजित जाति के प्रति थोड़ा दुरभिमान एवं घृणा बनी ही रही। वे इससे सर्वथा मुक्त न हो सके। वे हिन्दुओं को 'काग-मुखी' शब्द से सम्बोधित करते हैं, शासक को चेतावनी देते हैं कि वह इस जाति को अधिक सत्ता न दे, उनकी कुछ धार्मिक-विधियों और विश्वासों की खिल्ली उड़ाते हैं, और उनके देवालयों के धराशायी किए जाने पर आह्लादित-से प्रतीत होते हैं।[१]

किन्तु रहीम की रचनाओं में हमें ऐसी हिन्दू-विरोधी भावनाओं का संकेत तक नहीं मिलता। उनका मानस तो हिन्दू धर्म के आचारों तथा विश्वासों के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण है। जिस वातावरण में रहीम का पालन-पोषण हुआ और हिन्दी तथा संस्कृत के विद्वानों द्वारा उनको जो शिक्षा प्राप्त हुई, वह खुसरो के वातावरण तथा शिक्षा से सर्वथा भिन्न थी। ऐसी दशा में रहीम का विशाल हृदय होना स्वाभाविक ही था। फिर, उनके स्वामी महान् अकबर का भी उन पर कम प्रभाव न पड़ा। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता तथा निष्पक्षता की नीति सर्वविदित है। ऐसे उदारचेता स्वामी का सामन्त भी यदि उदार-चेता हुआ तो आश्चर्य ही क्या! तुलसीदास, गंग, नरहरि, बीरबल, राजा मानसिंह तथा अन्य हिन्दू कवियों एवं राजनीतिज्ञों के साथ रहीम का जो घनिष्ठ संपर्क था, उससे भी उन्हें अपने विपक्षी धर्मानुयायियों के धर्माचरण को समझने और उसका सम्मान करने की प्रेरणा मिली।

---

१. डा० मुहम्मद वहीद मिर्जा कृत "दी लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो" पृ० २३३-२३४।

संक्षेप में, ख़ुसरो तथा रहीम दोनों अपनी परिस्थितियों की उपज थे।

रहीम की रचनाओं की प्रत्येक पंक्ति यह सिद्ध करती है कि वे जाति-भेद से परे 'भारत-वासियों के भारतीय' थे। संकीर्ण साम्प्रदायिकता का उनमें स्पर्श भी न था। उन्हें भी अपने स्वामी अकबर की भाँति यह दृढ़ विश्वास था कि भारत की सुख-समृद्धि पारस्परिक सदेच्छा एवं सहानुभूति से ही सम्भव है। रहीम के पूर्व या पश्चात् कोई भी मुसलमान कवि अथवा राजनीतिज्ञ भारतीय जनता में उतना लोकप्रिय न बन सका, जितना कि वे। जो सम्मान और भक्ति भारत का दोनों मुख्य जातियों हिन्दू तथा मुसलमानों ने—रहीम के प्रति प्रदर्शित की वह अमीर ख़ुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी, कुतबन, मंझन, रसखान, रसनिधि, यहाँ तक कि अकबर को भी न प्राप्त हो सकी। जीवनान्त तक इस्लाम धर्म के अनुयायी होते भी उन्होंने 'राम-रहीम' को एक ही माना। निम्नलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अन्य मध्य-युगीन संतों की भाँति उन्हें भी राम-नाम में अखंड श्रद्धा थी :—

'रहीमन धोखे भाव से, मुख से निकसत राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक के धाम॥'

रहीम ने हिन्दू-धर्म का सूक्ष्म अध्ययन किया था। वह उनके धार्मिक आचारों तथा विश्वासों से पूर्ण परिचित थे। काव्य-रचना में हिन्दू-गाथाओं से उन्हें प्रायः प्रेरणा मिलती रहती थी। उन्हें हिन्दू-धर्म तथा भारतीय दर्शन का कितना विशद ज्ञान था, यह उनके दोहों से निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।[१] इस कथन की पुष्टि में पहले कई

१. रहीम की रचनाओं में हिन्दू-धर्म संबंधी कहीं कोई भूल नहीं है, किन्तु जायसी के पदमावत में कई हैं। उदाहरणार्थ जायसी ने कैलाश को इन्द्र का निवास स्थान कहा है:— है कैलास इन्द्र क अछरीं।

उदाहरण दिए जा चुके है, दो एक यहाँ भी प्रस्तुत किए जाते हैं—

कृष्ण-सुदामा-मैत्री का उल्लेख करते हुए रहीम कहते हैं:—

"जो गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥"

खम्भे से प्रकट होकर भक्त-वत्सल भगवान ने प्रह्लाद की जो रक्षा की उसका उल्लेख इस बरवै में देखिए:—

"भज नर हर नारायण, तजि बकवाद ।
प्रगट खम्भ ते राख्यौ, जिन प्रह्लाद ॥"

रहीम और खुसरो के हिन्दू धर्माचार एवं विश्वासों के प्रति दृष्टिकोण में तो महान् अन्तर है ही, इन दोनों कवियों की हिन्दी भाषा में भी बड़ा अन्तर है। खुसरो ने अपने हिन्दी-गीतों का संग्रह कभी नहीं किया। वे इसके प्रति उदासीन-से थे। वे उन्हें रचकर अपने मित्रों में छिटफुट बाँट दिया करते थे और फिर कदाचित् ही उनका स्मरण रखते थे। हिन्दी काव्य रचना तो उनके लिए केवल मनोविनोद का साधन थी। उनकी गंभीर रचनाएँ अधिकांश फारसी भाषा में हुई। उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कहना कठिन है कि आज जो खुसरो की खड़ी बोली की कविताएँ उपलब्ध हैं वे सर्वथा मूल रूप में ही हैं। बहुत सम्भव है कि परवर्ती पीढ़ियों ने, जिन्हें ये कविताएँ मौखिक रूप में ही प्राप्त हुई, इनमें कुछ घटा-बढ़ा दिया हो, या उन्हें अपने समय की प्रचलित भाषाओं के अनुरूप गढ़ लिया हो। किन्तु, जैसा कि डाक्टर वहीद मिर्जा ने संकेत किया है, केवल भाषा के आधार पर खुसरो की हिन्दी रचनाओं को संदेहपूर्ण बतलाना युक्ति-संगत नहीं है।

खुसरो की हिन्दी-कृतियों में कुछ भाग ऐसे हो सकते हैं जो कालान्तर में रचकर मूल में जोड़ दिए गए हों, किन्तु उनका आदि आधार तो कुछ होगा ही और वह इस नवीन योग से अवश्य ही बहुत भिन्न न रहा होगा। इसके अतिरिक्त उनमें से कतिपय रचनाओं में जो स्वाभाविक सौन्दर्य, जो बुद्धि चातुर्य एवं विनोद, तथा शैली की जो मौलिकता है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि ये खुसरो की ही रचनाएँ होंगी। अतः प्रबल प्रमाणों के अभाव में हम यही मानते हैं कि खुसरो की हिन्दी-रचनाएँ यथार्थतः उन्हीं की लेखनी से प्रणीत हुई हैं। अब रहीम तथा खुसरो की भाषा में अन्तर देखिए :—

प्रथम, खुसरो की हिन्दी-रचनाओं में फारसी-शब्दों का बाहुल्य है और रहीम की रचनाओं में संस्कृत-शब्दों का। कतिपय उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट कर देंगे:—

खुसरो की एक सुप्रसिद्ध रचना है:—

"जे हाल मिस्कीं मकुन तगाफुल, दुराय नैना बनाय बतियां,
किताबे हिजरां न दारम एजा, न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबान हिजरां दराज चूँ जुल्फ, बरोजे वसलत चु उम्र कोताह,
सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥

उक्त चार पंक्तियों में कुछ ही शब्द—दुराय, नैना, सखी, पिया आदि ऐसे हैं जो संस्कृत मूलक हैं, शेष सभी विशुद्ध फारसी भाषा के हैं।

किन्तु रहीम की इसी प्रकार की एक रचना देखिए:—

"जरद बसन वाला, गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला, गावता रेखता था॥

श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे, मस्त ह्वै घूमते थे॥

इसमें "जरद", "गुल", "रेखता", "चमन" तथा "तमाशे" शब्दों के अतिरिक्त अन्य सभी या तो संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द हैं।

खुसरो के कुछ दोहों की भी भाषा देखिए:—

"गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केश।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देश॥
खुसरो रैन सोहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरा मन पीउ को, दोउ भए एक रंग॥"

और उसकी रहीम की भाषा से तुलना कीजिए:—

"रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बानुसों रुधिरै देत बताय॥
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष॥"

अन्तर स्पष्ट है। कहाँ खुसरो की नित्य-प्रति बोलचाल की साधारण भाषा और कहाँ रहीम की परिमार्जित, साहित्यिक हिन्दी। हमारे कवि का संस्कृत पर पूर्ण अधिकार भी तो था।

खुसरो की हिन्दी-रचनाओं में ग्रामीण और चलती भाषा का भी प्रयोग अधिक हुआ है। चूँकि खुसरो की काव्य-रचना का उद्देश्य था या तो मनोविनोद या जन-साधारण को भाषाओं की शिक्षा देना, अतः उनके लिए सुपरिचित शब्दावली का प्रयोग करना स्वाभाविक भी था। ऐसी भाषा के कुछ उदाहरण देखिए:—

"औरों की चौपहरी बाजे, चम्मू की अठ पहरी ।
बाहर का कोई आए नाहीं, आए सारे सहरी ॥
साफ सूफ कर आगे रखे, जामे नाहीं तूसल ।
औरों के जहाँ सींक समाए, चम्मू के वां मूसल ॥"
खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जलाय ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय ॥ ला पानी पिला ॥

उक्त उदाहरणों में चौपहरी बाजे, साफ सूफ कर, सींक समाए, ढोल बजाय' आदि ऐसी अभिव्यक्तियाँ ठेठ देहाती हैं और सामान्य व्यक्तियों के दैनिक बोल-चाल में प्रयुक्त होती हैं।

किन्तु रहीम की सरलतम कृतियों में भी संस्कृत की कुछ छाप अवश्य मिलेगी। हमारे कवि का उद्देश्य भी भिन्न था। उनकी रचना छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों के लिए थीं, अतः उनमें शब्दों और मुहाविरों का आवश्यक अनुपात भी है। रहीम की कतिपय सरल कृतियों की भाषा देखिए:—

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय ॥
पहिनत चूनि चुनरिया, भूषन भाव ,
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव ॥

इनमें "साधे, मूलहि, भूषन, चाव" आदि शब्द संस्कृत-मूलक तो हैं ही, अन्य शब्दों में भी वह ठेठ ग्रामीणता नहीं है, जो खुसरो के काव्यों में बहुलता से पाई जाती है।

इन दोनों कवियों के व्याकरण-प्रयोग में भी बड़ा अन्तर है।

खुसरो की रचनाओं में क्रिया-पद, सर्वनाम, विशेषण आदि ठेठ देहाती ढंग से प्रयुक्त हुए हैं।

एक उदाहरण देखिए। रेखांकित शब्द उक्त तथ्य को पूर्ण स्पष्ट कर देंगे।

सगरी रैन छतिअन पर राखा, रंग रूप सब वाका चाखा,
गोरी सुन्दर पातली, केसर काले रंग,
उकरूँ बैठ के मारन लागा

किन्तु रहीम की रचनाओं में यह बात नहीं। उनके शब्द-प्रयोग प्रचलित व्याकरण-पद्धति के सर्वथा अनुकूल और सुरुचिपूर्ण हैं। दो-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं:—

"भटिआरी अरू लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करैं, जात न पूछैं बात॥"
प्रीतम इक सुमिरिनियाँ, मोहि दै जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करौं निबाहु॥"

इनमें "अरु" "दोऊ" "एकै" "करैं" "इक" "मोहि" "दै जाहु" "जेहि" आदि ऐसे प्रयोग विशुद्ध ब्रज अथवा अवधी बोलियों के हैं और इनका प्रयोग सूर तथा तुलसी की कृतियों में भी हुआ है। संक्षेप में, भाषा की दृष्टि से रहीम खुसरो से कहीं आगे थे।

हिन्दी काव्य-कला की दृष्टि से भी खुसरो रहीम की समता में बहुत पीछे हैं। रहीम-काव्य में जो अलंकार-बाहुल्य, जो सरस वर्णन, जो उक्ति वैचित्र्य तथा जो छन्द-विविधता वह भला खुसरो की शुष्क रचना में कहाँ प्राप्त हो सकती है। रहीम का काव्य वास्तव में

रसात्मक है और खुसरो के पद्य तुकबंदियाँ। ऊपर दिए गए उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट एवं पुष्ट करते हैं।[१]

इस असमानता के सबल कारण भी थे। प्रथम, खुसरो ने जिस युग में हिन्दी-रचना की, वह ब्रज भाषा का शैशव काल था। उस समय उसमें न वह पूर्णता थी न सामर्थ्य, जो हम रहीम के युग में पाते हैं। खुसरो को उस पथ पर चलना पड़ा, जिसका निर्माण अभी प्रारम्भ ही हुआ था। उत्तरोत्तर उसका विकास होता गया और रहीम के समय तक सूर तथा तुलसी प्रभृति प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने उसे खूब परिमार्जित एवं प्रौढ़ कर दिया। अब उसमें बाल्य का तोतलापन न था, अपितु थी प्रौढ़ यौवन की स्पष्टता तथा सामर्थ्य। रहीम ने जब काव्य-रचना प्रारम्भ की तब तक हिन्दी की दोनों मुख्य शाखाएँ—ब्रज तथा अवधी—पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थीं। हमारे कवि के समसामयिक सूर, तुलसी, गंग तथा केशव प्रभृति धुरन्धर विद्वान अपनी अनुपम कृतियों से हिन्दी की अभिवृद्धि कर रहे थे। रहीम को कोई साहित्यिक अभाव न था। जिस हिन्दी-भवन की आधार-शिला खुसरो के कुछ ही समय पूर्व रखी गई थी, अब वह लगभग पूर्णावस्था में थी। रहीम को बस उसमें यत्र-तत्र सुधार ही करना था, पूरे सिरे से नवनिर्माण नहीं। दूसरे, रहीम संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। फारसी के उत्कृष्ट कवि खुसरो के पास न इतना समय था, न रुचि ही कि वे संस्कृत का अध्ययन कर उसकी ललित शब्दावली से अपने हिन्दी-काव्य को सँवारते। और अन्तिम, दोनों का

१. खुसरो की कविताओं के सारे उद्धरण बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा संकलित "खुसरो की हिन्दी कविता" शीर्षक ग्रन्थ से लिये गए हैं।

उद्देश्य भी भिन्न था। खुसरो हिन्दी-रचना केवल मनोविनोद के हेतु करते थे, पर रहीम साहित्यिक ख्याति की दृष्टि से। खुसरो की दृष्टि में फारसी का स्थान पहले था और हिन्दी का बाद में, किन्तु रहीम के विषय में यह बात सर्वथा विपरीत थी।

हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के विकास में रहीम का योग-दान

अकबरी युग के हिन्दी-निर्माताओं में रहीम का स्थान प्रमुख है। उनमें बिरले ही ऐसे थे जिन्होंने हिन्दी-भाषा एवं साहित्य की अभिवृद्धि में इस प्रतिभाशाली मुस्लिम से अधिक योग दिया हो। मुसलमान-परिवार में उत्पन्न तथा उसी वातावरण में पालित-पोषित होने पर भी उन्होंने हिन्दी की जो बहुमूल्य सेवाएँ कीं, उसके लिए हिन्दी-संसार उनका चिर-कृतज्ञ रहेगा। राजकीय कार्यों में सतत् संलग्न रहने पर भी उन्होंने हिन्दी की तीनों मुख्य शाखाओं—ब्रज भाषा, अवधी तथा खड़ी बोली की समृद्धि एवं विकास में यथा-शक्ति योग दिया। इन सभी पर उनका आश्चर्यजनक अधिकार था। उनकी रचनाओं के सूक्ष्म अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे काव्य शास्त्र-मर्मज्ञ थे। उनकी मार्मिक शैली, उनकी मनोरम अभिव्यक्तियाँ, उनकी प्रसाद-गुण-प्लावित उपयुक्त शब्दावली तथा उनके अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग आदि सभी पिंगल-शास्त्र के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल हैं। उनके लघु परन्तु स्वतः पूर्ण बरवै "गागर में सागर" भरे हुए हैं। उनका "नगर-शोभा" ग्रंथ, साहित्य एवं इतिहास दोनों की अमूल्य निधि है। उनका "बरवै नायिका-भेद" हिन्दी-साहित्य में रीति-कालीन परम्परा चलाने वाले कतिपय इने-गिने काव्य-ग्रंथों में प्रमुख है। और उनके चुटीले नीति-पूर्ण दोहे हिन्दी-भाषी

जन-जीवन के सतत सहचर-से बन गए हैं। रहीम के परवर्ती कवियों में उनकी काव्य-कला की छाप स्पष्ट है।

सौभाग्य से रहीम ने उस समय साहित्यिक कृतियाँ प्रारम्भ कीं जो हिन्दी-भाषा एवं साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। खुसरो तथा कबीर की ब्रज भाषा सूरदास के रूप में अपने 'होमर' को पा धन्य हो उठी थी और कृष्ण-चरित के उस अमर गायक ने अपनी अनुपम कृति 'सूरसागर' में ब्रज भाषा को जो माधुर्य, जो सौष्ठव तथा जो क्षमता प्रदान की उससे उसके भावी कवियों की काव्य-साधना का मार्ग प्रशस्त हो गया था। अष्टछाप[१] के अन्य कवियों ने अपनी सुरचनाओं द्वारा उसको और भी अधिक समृद्ध कर दिया था और सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में ब्रज-भाषा हिन्दी-काव्य-रचना के लिए सब से अधिक उपयुक्त और लोकप्रिय भाषा बन गई थी। 'मृगावती' के सुविख्यात सूफी रचियता, शेख कुतबन की अवधी को भी मलिक मुहम्मद जायसी की सबल लेखनी ने पर्याप्त उत्साह प्रदान किया था और उनके सूफी महाकाव्य 'पद्मावत' की सरल, प्रवाहपूर्ण एवं सशक्त शैली से प्रभावित हो उनके अनेक सहधर्मियों ने अपनी अपनी कृतियों से इस भाषा के विकास में सराहनीय योग दिया था[२]। किन्तु जायसी की शब्दावली तथा व्याकरण-प्रयोगों से अवधी में वह परिष्कार, वह सामर्थ्य तथा वह लालित्य नहीं आ पाया था जो सूरदास की रचनाओं से ब्रज भाषा को प्राप्त हुआ था।

---

१. अष्टछाप के कवि ये थेः—सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छित स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नन्ददास।

२. इन रचनाओं में उसमान रचित 'चित्रावली' से हिन्दी पाठक सुपरिचित होंगे।

अवधी को ब्रज-भाषा के स्तर पर ले आने का श्रेय तुलसी को है। किन्तु तुलसी की कृतियों के प्रकाश में आने से पूर्व ही रहीम ने हिन्दी में काव्य-रचना प्रारंभ कर दी थी। रही खड़ी-बोली सो अभी वह शैशवकाल के पालने में ही झूल रही थी। उसमें इतनी आत्म-निर्भरता न आ पाई थी कि वह स्वतंत्र रूप से काव्य-साधना का माध्यम बन सके। वह अभी अधिकतर बोल-चाल की ही भाषा थी। अब हमें यह देखना है कि उक्त भाषाओं की अभिवृद्धि एवं विकास में रहीम ने क्या योग दिया।

(अ) रहीम और ब्रज भाषा—ब्रज भाषा को रहीम की सब से बड़ी देन है उनके दोहे। बंगला के "पयार" छन्द की भाँति हिन्दी में "दोहा" काव्यानुभूति को छन्द-बद्ध करने का सर्वजन सुलभ साधन रहा है। वीर-गाथा तथा भक्ति-काल के कवियों ने इस अत्यन्त लोक-प्रिय छन्द में विभिन्न भावों तथा मनोदशाओं का चित्रण किया था किन्तु रहीम के पूर्ववर्ती कवियों में कोई भी अपने दोहों में वह प्रभाव, वह चमत्कार तथा वह प्रवाह, जो हमें रहीम के दोहों में उपलब्ध है, लाने में सफल न हो सका था। कबीर और उनके समकालीन कवियों के दोहों में न वह साहित्यिक आभा थी और न व्याकरण के नियमों का पूर्ण निर्वाह। उनकी खिचड़ी भाषा में ब्रज-भाषा की विशुद्धता तथा उसकी कोमल-कान्त पदावली की विशिष्टता का प्रायः अभाव ही था। सूरदास की ब्रज भाषा का पूर्ण सौष्ठव—हमें उनके पदों में अवश्य मिलता है, उनमें उन्हें अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना का व्यापक क्षेत्र प्राप्त था। किन्तु उनके दोहों और चौपाईयों में हमें वे विशेषताएँ नहीं मिलतीं जो रहीम के दोहों में हैं। रहीम के कई सहयोगी—बीरबल, टोडरमल,

तानसेन तथा उनके स्वामी मुगल-सम्राट अकबर, सभी उस समय व्रज-भाषा में काव्य-रचना कर रहे थे, अतः हमारे कवि का इस सर्वप्रिय एवं मधुर भाषा की ओर झुकाव होना सर्वथा स्वाभाविक था। गंग तथा नरहरि प्रभृति कवियों के संसर्ग और संस्कृत के विद्वान होने से उन्हें अपने बहुत से पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा सुविधाएँ भी अधिक थीं; ऐसे रचयिता की लेखनी से जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई उसका कई निकट-समकालीन कवियों की कल्पना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मतिराम तथा बिहारी ऐसे रसिक कवियों ने निःसंकोच रहीम की दोहा-शैली का अनुकरण किया।

रहीम की हृदय-विशालता की छाप हमें उनकी भाषा में भी स्पष्ट दिखाई देती है। देखिए, रहीम ने अपने दोहों में संस्कृत शब्दों का कितना उपयुक्त और सुन्दर प्रयोग किया है।

अच्युत चरन तरंगिनी, शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायौ सुरसरी, कीजो इंदव भाल॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥
रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥

रहीम का अभिप्राय यदि फारसी शब्दों के प्रयोग से अधिक स्पष्ट होता है, तो व्रज भाषा में वे उनका प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते। देखिए :—

"सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सोई जगीरै खाय।"

"फरजी साह न ह्वे सके, गति टेढ़ी तासीर
रहिमन सीधे चाल सों, प्यादो होत वजीर ॥"

उनकी व्रज भाषा में राजस्थानी डिंगल के लिए भी स्थान है:—

"अंडन बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान
हस्ती-ढका, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुअर आन ॥"

और खड़ी बोली की शब्दावली भी उनकी व्रज-भाषा में यत्र-तत्र पिरोई हुई है:—

"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय ।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठ पड़ जाय ॥"

"भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान ।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥"

"रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥"

रहीम के दोहों में व्रज भाषा तथा अवधी के शब्द-विन्यासों का भी अद्भुत समन्वय है। निम्नोद्धृत पंक्तियाँ उक्त कथन को सुस्पष्ट कर देंगी:—

"रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥"

"लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन ।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरुस्थान ॥"

रहीम को शुद्ध ठेठ ग्रामीण तथा वार्तालाप में प्रयुक्त होने वाली शब्दावलियों पर आश्चर्यजनक अधिकार था। उन्होंने अपनी व्रज-भाषा में इनका भी यथा-स्थान प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं:—

"रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून॥"
"रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुख स्याह।
नहीं छलन को पर तिया, नहीं करन को ब्याह॥"
"रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै चहै नाद लै लेई॥"

रहीम की ब्रज भाषा में विभिन्न अलंकारों का भी बड़ा सुरुचिपूर्ण, उपयुक्त तथा स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। यहाँ केवल कुछ ही उदाहरण सम्भव हैं:—

"विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत।" (रूपक
"सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम सर फूट।
लोक लाज उर धाकते, जात मसक सी छूट॥" (उपमा
"ससि, संकोच, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़िजात हैं, घटत घटत घटि सीम॥"(अनुप्रास

रहीम के सवैये, घनाक्षरी तथा पद यद्यपि संख्या में बहुत थोड़े हैं, तो भी ब्रज-भाषा के विकास में इनका महत्व कम नहीं। वैसे इन छंदों का प्रचार पहले भी था, किन्तु अकबरी युग के कवियों के हाथों इनको एक विशेष लोच तथा आभा प्राप्त हुई। इनको अत्यधिक लोक प्रिय बनाने का श्रेय अन्य कवियों के साथ रहीम को भी प्राप्त है। रहीम-रचित उक्त छंदों के ललित उदाहरण पहले ही प्रस्तुत किये जा चुके हैं, अतः उन्हें यहाँ दोहराना आवश्यक नहीं।

(ब) रहीम तथा अवधी :—ब्रज-भाषा की भाँति रहीम ने अवधी की

श्रीवृद्धि एवं विकास में भी बहुमूल्य योग दिया। कहते हैं, रहीम ने ही सर्व-प्रथम अवधी के ललित छंद "बरवै" की हिन्दी में अवतारणा की। उनका "बरवै नायिका-भेद" श्रृंगार रस का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उन्होंने इसके द्वारा हिन्दी में एक नये युग का प्रवर्तन किया जो भारतेन्दु काल तक चलता रहा। तुलसीदास को भी इन्होंने बरवै रचना की प्रेरणा दी, इसका विवेचन पहले हो चुका है। सूफी कवियों ने अवधी में रचना कर उसे प्रोत्साहित अवश्य किया था, किन्तु उसमें अभी ब्रज-भाषा की शुद्धता, माधुर्य तथा पूर्णता न आ पाई थी। इस कमी को तुलसीदास और रहीम ने पूरा किया। हिन्दी के इतिहास लेखक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि तुलसी की ही भाँति रहीम को ब्रज-भाषा तथा अवधी दोनों पर समान अधिकार था[१]। यदि तुलसी की अप्रतिम प्रतिभा का परिचय हमें उनके "राम-चरित-मानस" में मिलता है तो रहीम का "बरवै नायिका-भेद" में। जैसे सूर के पद, बिहारी के दोहे, तुलसी की चौपाई, साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं, उसी प्रकार रहीम के बरवै भी हिन्दी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। रहीम की भाषा में हमें विभिन्न लोकप्रिय अभिव्यक्तियों का जो सम्मिश्रण दिखाई देता है, उससे प्रतीत होता है कि तुलसी की भाँति हमारे कवि ने भी उत्तरी भारत को एक सर्व-सामान्य भाषा देने का स्तुत्य प्रयास किया। उनके कतिपय बरवै का समीक्षण इस तथ्य को स्पष्ट कर देगा।

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०२२६-२२८। बाबूश्यामसुन्दरदास–हिन्दी साहित्य पृ०२३४।

...खिर, निम्नोद्धृत बरवै में अवधी के साथ व्रज-भाषा के शब्दों का कुशल प्रयोग हुआ है:—

"चूनत फूल गुलबवा, डार कटील ।
टुटिगौ वन्द अंगिअवा, फटु पट नील ॥"
"छूट्यौ लाज गरिअवा, औ कुल-कानि ।
करत रोज अपरधवा, परिगौ वानि ॥"

संस्कृत शब्दावली का तो उनके बरवै में बाहुल्य है :—

'सुगमहि गातहि गारन, जारन देह ।
अगम महा अतिपारन, सुघर सनेह ॥'
'अति अद्भुत छबिसागर, मोहन गात ।
देखत ही सखि बूड़त, दृग-जल जात ॥'

यत्र-तत्र भोजपुरी का भी पुट इन बरवै में है :—

'रातुल भयेसि सुगउआ, निरस पखान ।
एहि मधु भरल अधरवा करत समान ॥'
'कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ ।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥'

इनके कुछ बरवै तो विशुद्ध फ़ारसी भाषा में लिखे गए हैं :—

'दिलबर जूद बर जिगरम, तीर निगाह ।
तपीदा जां मी आयद, हरदम आह ॥'
'गर्क अज मे शुद आलम, चन्द हजार ।
बे दिलदार के गीरद, दिलम करार ॥'

अवधी-शब्दावलियों का लालित्य तो प्रायः सभी बरवै में

विद्यमान है। रहीम को ठेठ ग्रामीण अवधी पर कितना अद्भुत अधिकार था, यह इन बरवै में स्पष्ट है:—

'जस मदमातिल हथिया, हुमकत जाय।
चितवति छैल तरुनिआ, मुहु मुसकाय॥'
'थके बइठि गोड़वरिआ, मींड़हु पाउ।
पिय तन पेखि गरमिया, विजन डुलाउ॥'

उनके बरवै में कहावतों तथा मुहावरों का भी बड़ा उपयुक्त प्रयोग हुआ है देखिए :—

'सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बांझ न जानै, ब्यावर पीर॥'
'लोग लुगाई हिल मिल खेलत फाग।
पर्यो उड़ावन मोको, सब दिन काग॥'

भावोद्दीपन के रूप में कवि का प्रकृति-वर्णन इस बरवै में देखिए :—

'लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यो अबलनि पै, धनुष सुरेस॥'

और अंत में इनकी अवधी में अलंकारों के कुछ प्रयोग देखिए :—

'पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव।
पैयां परौं ननदिया, फेरि कहाव॥' (श्लेष)
'समुझति सुमुखि सयानी, बाहर झूम।
विरहन के हिय भभकत, तिनकी धूम॥' (अनुप्रास)



(स) रहीम और खड़ी बोली:—खड़ी बोली का आदि रूप, सर्व प्रथम, हमें खुसरो की हिन्दी कृतियों में दिखाई देता है। उस प्रतिभा-सम्पन्न

कवि ने अपनी पहेलियों तथा अन्य बिखरी रचनाओं द्वारा इसे काफी लोक-प्रिय बनाया। किन्तु उनके पश्चात् रहीम के समय तक अन्य किसी सुप्रसिद्ध कवि ने इसे स्वतन्त्र रूप से काव्य-साधना का माध्यम नहीं बनाया। यह सत्य है कि खड़ी बोली के व्याकरण के कतिपय प्रयोग हमें तत्कालीन कवियों की कृतियों में यदा-कदा दिखाई पड़ते हैं, पर वे हिन्दी-भाषा के विकास के स्वाभाविक क्रम में वैसे ही आ गए हैं। जागरूक प्रयत्नों का अभी अभाव ही था। कबीरदास ने अपनी खिचड़ी भाषा में खड़ी बोली के कुछ रूपों का प्रयोग किया किन्तु उनमें से अधिकांश व्याकरण-सम्मत न होने के कारण ब्रज तथा अवधी की भाँति लोक-प्रिय न बन सके। रहीम ने खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। उनका अष्टपदीय "मदनाष्टक" उन मौलिक ग्रन्थों में है जिनमें हम आधुनिक खड़ी बोली की झलक पाते हैं। निम्न उद्धृत पद में सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया पद सभी आधुनिक खड़ी बोली के शुद्ध रूपों में प्रयुक्त हुए हैं:—

"कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन-वाला, चाँदनी मे खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला, यार मेरा अकेला॥

रहीम के दोहों में भी यत्र-तत्र खड़ी बोली की शब्दावली का बड़ा सुन्दर एवं उपयुक्त प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं:—

"जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरा न मानिए, लैन कहाँ सूँ जाय॥"

"रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं
उनने पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥"

रहीम और उर्दू

रहीम ने उर्दू के विकास में भी महत्व पूर्ण योग दिया। मुसलमानों के आगमन से इस देश में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता प्रतीत हुई जो मुस्लिम भारत में राष्ट्र-भाषा के रूप में अपनाई जा सके। ऐसी भाषा उस समय देश में प्रचलित भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के समन्वय से ही निर्माण की जा सकती थी। यह आवश्यकता उन शिविरों में और अधिक प्रतीत हुई जहाँ विभिन्न वर्गों और देशों के सैनिकों को एक साथ रहना और कार्य करना पड़ता था। पहले कुछ दिनों तक वे लोग विभिन्न भाषाओं के कुछ टूटे फूटे शब्दों से अपना काम एन-केन-प्रकारेण चलाते रहे किन्तु धीरे धीरे इस क्रम से एक ऐसी भाषा का विकास होने लगा जिसकी कुछ अपनी मुख्य विशेषताएँ थीं। इस भाषा में सर्वनाम तथा क्रिया-पद तो हिन्दी के थे किन्तु अन्य शब्दावली सभी की खिचड़ी थी। हाँ, उसमें फारसी के शब्दों का बाहुल्य अवश्य था। चूँकि यह रेख्ता भाषा सैनिक-शिविरों में विकसित हुई, अतः इसका नाम सैनिकों की भाषा (ज़बाने-लश्कर) या उर्दू पड़ा।

इस भाषा के प्रथम उल्लेखनीय उन्नायक थे, अमीर खुसरो। उनकी पहेलियों, दोसखुनों, तथा अन्य रचनाओं ने इसे लोक-प्रिय एवं सर्वजन-सुलभ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। उनके "खालिक बारी" शब्द-कोष की रचना जिसमें फारसी शब्दों के समानार्थ शब्द हिन्दी में दिए गए थे, इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न था। मध्य युग में कदाचित् ही

किसी ने उर्दू की उन्नति के लिए इतना कार्य किया हो। सोलहवीं शताब्दी के धर्मोपदेशकों ने भी स्थानीय बोलियों में अपने मत का प्रचार कर, अनजाने ही, इस भाषा की प्रगति में काफी सहायता दी। आगे चल कर अकबर के राजत्व काल में जब फारसी राज्य-भाषा स्वीकृत हुई तो उर्दू को और भी प्रोत्साहन मिला।

इस प्रकार रहीम के समय तक इस "रेख्ता" भाषा का एक रूप और ढाँचा तो अवश्य बन गया था किन्तु इसका प्रयोग प्रायः मौखिक वार्तालाप ही में होता था, काव्य रचना के लिए नहीं। इसमें साहित्यिक अभिव्यक्ति की क्षमता अभी नहीं आ पाई थी। रहीम के दूरदर्शी नेत्रों ने इसकी सम्भावनाओं को देखा और उन्होंने अपनी संस्कृत तथा हिन्दी रचनाओं के साथ इसे भी काव्य का जामा पहनाना प्रारम्भ कर दिया।

देखिए, इस पद में संस्कृत और उर्दू, दो सुदूर तथा सर्वथा भिन्न भाषाओं का कैसा सुन्दर सामंजस्य हुआ है:—

"दृष्टा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग़ मे।
क्वचित् तत्र कुरंगशाव नयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद् भ्रूधनुषा कटाक्ष विशिखैः घायल किया था मुझे
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिलगुज़ारो शुक्र॥"

यद्यपि रहीम के ऐसे पद बहुत कम हैं, तथापि जो उपलब्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि रहीम ने उर्दू भाषा की उन्नति में बहुमूल्य योग दिया। 'मैं था गया बाग़ में', 'गुल तोड़ती थी खड़ी' 'घायल किया था मुझे' आदि में उस काव्य-भाषा की झाँकी विद्यमान् है जिसे 'ग़ालिब' और 'इक़बाल' ने अपनी अमर कृतियों द्वारा विकास की

चरम सीमा पर पहुँचाया। रहीम के दोहों और बरवै में भी आधुनिक उर्दू शब्दों के यत्र तत्र प्रयोग हुए हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण हम यहाँ उनके उदाहरण देने में असमर्थ हैं। रहीम की इन अनुपम सेवाओं के लिए उर्दू-संसार उनका चिर-ऋणी रहेगा[१]।

रहीम और संस्कृत

रहीम ने संस्कृत को भी अपनी काव्य-साधना का माध्यम बनाया। कहते हैं, "खेटु कौतुकम्" शीर्षक ज्योतिष-ग्रन्थ उन्होंने ही लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ छिट फुट श्लोक भी लिखे, जो साहित्यिक दृष्टि से बड़ी उच्च कोटि के हैं। रहीम उन इने-गिने मुसलमान कवियों में से हैं, जिन्होंने अपने सहधर्मियों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत "देववाणी" में काव्य-रचना की। रहीम का हिन्दू-शास्त्रों से कितना निकट परिचय था और वे फारसी के शब्दों में भी संस्कृत विभक्तियों का कितना कुशल प्रयोग करते थे—यह इस श्लोक से सुस्पष्ट है:—

"यदा मुश्तरी केन्द्र खाने त्रिकोणे, यदा वक्र खाने रिपौ आफताबः
अतारिद विलग्ने नरो वख्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः।

अर्थात् जिसके जन्म-समय में बृहस्पति केन्द्र में अथवा त्रिकोण में और सूर्य छठें घर में और बुद्ध लग्न में हों तो वह मनुष्य अपने समय का महान् व्यक्ति या राजा बनेगा।

---

१ मुहम्मद अब्दुल गनी ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ परसियन लैंग्वेज ऐन्ड लिटरेचर ऐट दी मुगल कोर्ट' पृ० २६६-२७२ में रहीम की उर्दू के प्रति सेवाओं का उल्लेख करते हुए उनके कतिपय दोहों को उद्धृत किया है, किन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने मदनाष्टक का उल्लेख नहीं किया जिससे यह पद्य उद्धृत किया गया है।

"खेटुकौतुकम्" के रचयिता रहीम ही हैं, यह भी इस श्लोक से सुस्पष्ट है:—

"करोम्यब्दुल रहीमोहं खुदा ताला प्रसादतः ।
फारसी पदैर्युक्तम, खेट कौतुक जातकम् ॥"

रहीम के दो अन्य श्लोक भी उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं:—

"रत्नाकरोऽस्ति सदनं, गृहणी च पद्मा ,
किं देयमस्ति भवते, जगदीश्वराय ।
राधागृहीत मनसे मनसे च तुभ्यं ,
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥

"अर्थात् जब रत्नाकर आपका गृह और लक्ष्मी आपकी गृहिणी है, तो हे जगदीश्वर ! मैं आपको क्या प्रदान करूँ ! हाँ, राधा ने आपका मन अवश्य हर लिया है, अतः मैं आपको अपना मन ही अर्पण कर रहा हूँ, कृपया ग्रहण कीजिए।"

"अहिल्या पाषाणः प्रकृति पशुरासीत् कपिचमू
गुहो भूच्चांडाल स्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।
अहं चित्ते नाश्मः पशुरपि तवार्चादिकरणे
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम् ॥"

"अर्थात् अहिल्या पत्थर, कपि समूह पशु तथा निषाद चांडाल था, पर इन तीनों को आपने अपने चरणों में आश्रय दिया; मेरा चित्त भी पत्थर है, आपकी आराधना करने में पशु समान हूँ और कर्म भी चांडाल सा है, अतः आप मेरा भी उद्धार क्यों नहीं करते !"

रहीम और फारसी

रहीम फारसी भाषा एवं साहित्य के प्रकांड पंडित थे। फारसी-काव्य के प्रति उनका उत्कट प्रेम तथा फारसी कवियों को उनका उदार आश्रय-दान इतिहास-प्रसिद्ध है। किन्तु यह सब होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंनें फारसी का कोई 'दीवान' नहीं लिखा। उनकी उस भाषा में काव्य-साधना विभिन्न 'तरहों' की रचना तक ही सीमित रही। उन रचनाओं के कतिपय नमूने 'हफ्त-कलीम,' 'तुज़ुके-जहाँगीरी,' तथा 'मआसिरे-रहीमी' में अब भी सुरक्षित हैं। यह कहना कठिन है कि हमारे कवि ने उस समय प्रचलित साहित्यिक एवं राज्य-भाषा फारसी को छोड़ मुख्यतः हिन्दी तथा संस्कृत को ही अपनी काव्यानुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम क्यों बनाया, किन्तु उनकी यत्र-तत्र उपलब्ध फारसी रचनाओं से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यदि उन्होंने फारसी में काव्य-रचना की होती तो उर्फी और नजीरी-जैसे उत्कृष्ट कवियों की श्रेणी में उनका भी स्थान होता[१]। फारसी-साहित्य के प्रमुख समालोचकों का मत है कि काव्य-कला की दृष्टि से रहीम की उस भाषा में रचनायें तत्कालीन प्रथम कोटि के कवियों की कृतियों से किसी भी प्रकार घट कर नहीं हैं। उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'चन्दस्त, पन्दस्त, फरजन्दस्त,' में जिस ललित एवं सप्रभावशैली के दर्शन हमें होते हैं, उसमें प्रसाद गुण सम्पन्न शब्दावलियों द्वारा जिन मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है, वे नजीरी की भी रचना में

१. मौलाना शिब्ली लिखित 'शेर-उल-अजम' भाग ३, पृ० १६

उपलब्ध नहीं[१]। रहीम की गज़लें उतनी ही सरल तथा प्रभावकारी हैं जितनी सुविख्यात शायर शेख सादी की। उनके पुस्तकालय में समय समय पर कवि गोष्ठी होती, 'तरहें' दी जाती और कविता-पाठ होता। कभी कभी रहीम 'खानखाना' वहाँ अपनी रचनाएँ भी पढ़ते।[२]

कवि रहीम उच्च कोटि के अनुवादक भी थे। उनका 'तुज़ुके-बाबरी' का मूल तुर्की से फारसी में अनुवाद फारसी-संसार की ही नहीं अपितु सारे इतिहास-जगत की बहुमूल्य निधि है। आधुनिक लेखक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि इस महत्वपूर्ण स्रोत को सुलभ बना रहीम ने इतिहास की अनुपम सेवा की। "दरबारे-अकबरी" के विद्वान् लेखक मौलाना आजाद को यह विश्वास नहीं होता कि रहीम ने इतने विशाल ग्रन्थ का अनुवाद स्वयं किया होगा। उनका अनुमान है कि रहीम के निरीक्षण में यह भाषान्तर उनके मौलवियों ने किया होगा[३]। पर ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में हमें उनका यह निष्कर्ष युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता।

"मआसिरे रहीमी" में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख है जब कि रहीम ने अपने अनुवाद करने की प्रतिभा का परिचय दिया। एक रात्रि अकबर को अरबी भाषा के हिजाजी बोली में लिखे हुए तीन पत्र प्राप्त हुए। बादशाह उनका आशय समझने को उत्सुक था, अतः उसने अपने दरबार के तीनों विशेषज्ञ-अबुल फज़्ल, अबुलफतह गिलानी और रहीम को तुरन्त बुलाया और उनसे उन पत्रों का अनुवाद करने को

---

१. मौलाना शिब्ली लिखित 'शेर-उल-अजम' भाग ३, पृ० १२
२. वही " पृ० १२-१३
३. दरबारे-अकबरी पृ०११२

कहा। प्रथम दोनों ने उन पर सरसरी निगाह डाली और कहा कि हम कल प्रातःकाल इनका अनुवाद आपकी सेवा में प्रस्तुत करेंगे। रहीम उन पत्रों को ले समीप ही जलते हुए एक दीपक के पास गए, उन पर उड़ती दृष्टि डाली और फिर वापस आ मौखिक ही उन सब का अनुवाद बिना कहीं रुके हुए, बादशाह को सुना दिया[1]।

रहीम एक भाषा के अवतरणों का दूसरी भाषा में इतना स्वाभाविक तथा प्रवाहपूर्ण अनुवाद करते कि श्रोतागण मुग्ध एवं चकित हो जाते। उन्हें यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि यह मूल है या भाषान्तर। अकबर के विदेश भेजे जाने वाले पत्रों का मसविदा प्रायः रहीम ही तैयार करते थे। वह फरमानों, प्रार्थना-पत्रों तथा अन्य प्रकार के पत्रों के अपने समय के एक विशिष्ट लेखक माने जाते थे। उनके पत्रों की मुगल-दरबार ही में नहीं, ईरान में भी भूरि-भूरि प्रशंसा होती थी[2]।

रहीम का कवियों को आश्रय-दान

रहीम की कवियों तथा विद्वानों के प्रति उदारता भारत में कहावत सी बन गई है। उनकी मजलिसें दरबारी कवि-गोष्ठियों से टक्कर लेती थीं, और काव्य-कला के जितने कुशल पारखी वे थे, उतना उनके निरक्षर स्वामी अकबर नहीं। उनके अपूर्व आश्रय-दान की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी और दूरस्थ देशों के विद्वान भी अपनी प्रतिभा का समुचित मूल्य प्राप्त करने के उद्देश्य से उनके दरबार में आया करते थे। रहीम भी देश, जाति अथवा धर्म का भेद-भाव किए बिना

१. म० र० भाग २, पृ०२२६
२. म० र० भाग २, पृ०२२२-२६२

सब को समान रूप से उनकी योग्यतानुसार पुरस्कृत किया करते थे। उनकी उदारता असीम थी। उपाख्यानों के अनुसार लोग उन्हें उस समय का 'भोज' कहते थे। उन्हें आत्म-प्रशंसा प्रिय थी और अपने गुण-गायक को वह लाखों रुपए पुरस्कार में दे देते थे। फारसी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के कितने ही ग्रन्थ उस अनुपम आश्रय-दाता की दान-शीलता तथा उदारता की गाथाओं से भरे पड़े हैं।

एक आधुनिक फारसी-विद्वान का कथन है, 'मुगल-दरबार तथा एशिया के समूचे साम्राज्य के साहित्यिक आश्रय-दान के क्षितिज में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है खानखाना का चमचमाता हुआ व्यक्तित्व, जो फारस, भारत, मध्य एशिया और तुर्की के शासकों में फारसी कला तथा साहित्य के समर्थक के रूप में अप्रतम स्थान पाने योग्य है। एशिया के सम्राटों में अकबर निस्सन्देह प्रमुख था, पर उसका दरबारी सामन्त अब्दुर्रहीम खानखाना सर्व प्रमुख था। आश्रयदाता के रूप में उसकी महानता का भली भाँति अनुमान उन फारसी कवियों के उद्गारों से लगाया जा सकता है जो फारस दरबार में स्वयं शाह के सम्मुख उसकी प्रशस्ति किया करते थे[१]।'

१ मुहम्मद अब्दुल ग़नी लिखित-ए हिस्ट्री आफ परशियन लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर ऐट दी मुगल कोर्ट, पृ० २२०-२२१। सफवी दरबार के फारसी कवियों में एक कोसारी नामक कवि था। एक बार उसने शाह अब्बास को यह साहस पूर्ण चुनौती दी कि वह फारस में साहित्यिक आश्रय-दान की कोई आशा नहीं रखता और वह अपनी रचनाएँ भारत में फारसी कविता के उस विद्वान एवं उदार आश्रय दाता ख़ानख़ाना के पास भेजेगा। उसकी कविता की अन्तिम पंक्तियाँ ये थीं:—

"के नबूद हर सख़ुन दानाने दौरां।
ख़रीदारे सख़ुन जुज़ ख़ानख़ानां॥"

"अर्थात् इस युग के विद्वानों में ख़ानख़ाना के अतिरिक्त अन्य कोई भी काव्य ग्राहक नहीं है।"

जहाँ तक काव्य-रचना का सम्बन्ध है, रहीम ने फारसी-भाषा की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। रचनाओं की संख्या की दृष्टि से उनका उस साहित्य में कोई विशेष स्थान नहीं। पर फारसी साहित्य में पुनर्जागृति लाने और फारसी गद्य की अभिवृद्धि में उन्होंने जो प्रयत्न किये वे सर्वथा स्तुत्य एवं चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने उस युग के सभी फारसी कवियों को चाहे वे मुगल दरबार के हों या बाहर के उदार आश्रय दान दिया। जो बहुत से फारसी एवं अरबी विद्वान स्वदेश त्याग भारत आए और यहीं बस गए, वह मुख्यतः खानखाना के ही कारण। उस समय के प्रमुख कवि जैसे नजीरी, उर्फी, जहूरी, शकीबी, अनीसी, नासिरी तथा मजहरी आदि उनके दरबार की शोभा थे। रहीम का व्यक्तित्व उनके लिए एक प्रेरक विषय था और उनकी प्रशंसा में लिखे गए कसीदे उस युग की फारसी की सर्वोत्कृष्ट रचनायें हैं। उर्फी ने उनकी प्रशंसा में सात स्तुति गान लिखे। उनमें से प्रथम इतना लोकप्रिय हुआ कि उस काल के अन्य सात प्रमुख कवियों ने भी उसी लय और छंद में अपनी रचनाएँ की। गजल आश्रय दाता के प्रशंसा के गान के लिए उपयुक्त माध्यम नहीं है, उसमें तो प्रायः आत्मानुभूति की ही अभिव्यक्ति होती है। किन्तु रहीम इतने लोक प्रिय थे कि कवियों ने उन्हें आदर्श प्रियतमा का प्रतीक मान कर कई गजलें लिखीं। इसी प्रकार 'साकीनामा' भी बहुत जन प्रिय छंद नहीं है और कदाचित् ही किसी आश्रयदाता की प्रशंसा में एक से अधिक साकीनामे लिखे गए हों, किन्तु यह रहीम ही का सौभाग्य था कि सात कवियों ने उन पर 'साकीनामे' बनाए। उनमें से दो 'साकीनामे' एक शकीबी और दूसरा

नवी रचित आज भी फारसी भाषा के सर्वोत्तम 'साकीनामे' माने जाते हैं।[१]

दुर्भाग्य से ऐसा कोई प्रामाणिक समसामयिक स्रोत उपलब्ध नहीं है जो रहीमी दरबार के हिन्दी कवियों पर भी कुछ प्रकाश डालता। फारसी इतिहास लेखकों का यह रहस्यपूर्ण मौन सम्भवतः उपेक्षा के कारण नहीं अपितु अज्ञान के कारण है। मआसिरे रहीमी में रहीम के हिन्दी काव्य के प्रति उत्कट प्रेम का उल्लेख मात्र है। किन्तु कतिपय हिन्दी रचनाओं एवं मौखिक परम्पराओं से यह सिद्ध है कि रहीम हिन्दी कवियों के भी एक महान आश्रयदाता थे। सुप्रसिद्ध कवि गंग ने खानखाना की प्रशंसा में लगभग पन्द्रह रचनाएँ कीं। उनमें से एक तो रहीम को इतनी रुचिकर प्रतीत हुई कि उन्होंने रचयिता को उस पर छत्तीस लाख रुपए पुरस्कार दिए। कहते हैं केशवदास ने अपनी 'जहाँगीर चंद्रिका' की रचना रहीम के ज्येष्ठ पुत्र शाहनवाज़ खाँ के अनुरोध पर की थी। उसमें खानखाना की प्रशंसा में भी एक छंद है। अन्य बहुत से कवियों ने खानखाना का स्तुति गान किया है किन्तु उनमें जाडा, मण्डन, प्रसिद्ध, हरिनाथ, अलाकुली, तारा कवि, तथा मुकुंद के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

१ अब्दुल बाकी नहावन्दी ने अपनी कृति 'मआसिरे रहीमी' के तृतीय भाग में खानखाना के दरबार में रहने वाले कवियों, दार्शनिकों तथा विद्वानों का विस्तृत परिचय दिया है। उनमें से चौरानवे कवियों तथा पचास अन्य प्रकार के विद्वानों का तो सर्वांगीण चित्रण है। खानखाना की प्रशंसा में रचे गए एक सौ बयासी कसीदे, ग्यारह 'तरकीब बन्दिशें,' छः तरजी-बन्दें, पाँच दीर्घ मसनवियाँ, सात साकीनामे, चौवन ग़ज़लें तथा कतिपय अन्य कविताएँ भी उसमें दी गई हैं।

ख़ानख़ाना विषयक फ़ारसी तथा हिन्दी सभी कवियों की उक्तियाँ प्रायः अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। उनमें ऐतिहासिक घटनाओं का यदा-कदा उल्लेख अवश्य है किन्तु प्रशंसा और स्तुति के आवरण में सत्य ढँक-सा गया है। रहीम को आत्मप्रशंसा प्रिय थी। कवियों ने उनकी इस दुर्बलता से पूरा लाभ उठाया। फलतः यदि उन्होंने अपने उदार आश्रयदाता के यश-गान में थोड़ी अतिशयोक्ति की तो आश्चर्य ही क्या!

ख़ानख़ाना का पुस्तकालय

रहीम के अहमदाबाद स्थित पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थों का अनुपम संग्रह था। रहीम ने उसकी स्थापना १५८३ ई० में की थी और तत्पश्चात् उत्तरोत्तर उन ग्रंथों की संख्या में वृद्धि ही होती गई। इनमें विविध विषयों के अनेक बहुमूल्य, विरले, और मनोरंजक ग्रन्थ थे। इसकी देखभाल के लिए ख़ानख़ाना ने बहुत से योग्य कर्मचारियों को नियुक्त किया था। वे हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार करते, उनकी अशुद्धियों को सुधारते, अपूर्ण ग्रन्थों को पूर्ण करते, और उन्हें विभिन्न बेल बूटों से अलंकृत करते। रहीम भी उसे व्यवस्थित और सर्वथा परिपूर्ण बनाये रखने में श्रम अथवा धन दोनों ही का विचार न करते। उस पुस्तकालय की मुख्य विशेषता यह थी कि उसमें रहीमी दरबार के सभी प्रमुख कवियों के दीवान उन्हीं के हाथों लिखी हुई लिपि में थे। आज भी भारत के प्रायः सभी सुविख्यात पुस्तकालयों में

खानखाना के हस्ताक्षर किए हुए अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं। स्पष्टतः ये ग्रन्थ कभी उनके पुस्तकालय में ही रहे होंगे[1]।

---

१ मआसिरे-रहीमी, भाग ३, पृ० ८८८; शेर-उल-अजम, भाग ३, पृ० १२-१३; "जर्नल आफ दी डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स, भाग १६, कलकत्ता विश्वविद्यालय में शम्स-उल-उल्मा हाफिज अहमद खाँ लिखित लेख, पृ० ५८-६२ इसमें विद्वान लेखक ने खानखाना के पुस्तकालय का सुविस्तृत वर्णन दिया है। उसमें के कुछ कर्मचारी ये थेः—

१ बहराइच के शेख अब्दुसलाम—दारोगा
२ शिराज़ के एक निवासी—शुजा—सुलेख में प्रवीण
३ मुहम्मद अमीन खुरासानी—बेलबूटे बनाने में सिद्ध-हस्त
४ मुल्ला मुहम्मद हुसेन—जिल्द बाँधने में मशहूर
५ मंडा नामक एक हिन्दू—प्रतिचित्र में कुशल

अष्टम अध्याय

अब्दुर्रहीम के चरित्र एवं कृत्यों का मूल्यांकन

अब्दुर्रहीम खानखाना के राजनीतिक एवं साहित्यिक, दोनों क्षेत्रों के कृत्यों पर विचार करने से हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि वे मध्यभारत की एक अनुपम विभूति थे। चरित्र एवं योग्यता में वे अपने युग के 'अप्रतिम व्यक्ति' कहलाने के पूर्ण अधिकारी हैं। स्वभावतः यह इच्छा होती है कि हम उनकी उस युग की अन्य ज्वाजल्यमान् विभूतियों—फैजी तथा अबुल फज़ल, राजा मानसिंह एवं टोडरमल, बीरबल, और तानसेन आदि से तुलना करें। पर ऐतिहासिक तुलनायें सदैव अरुचिकर ही होती हैं। इसके अतिरिक्त, यह सर्वविदित है कि अकबर की राजधानी फतेहपुर-सीकरी के किसी भवन के दो खम्भे सर्वथा एक समान नहीं हैं। उसी प्रकार अकबरी राज्य-प्रासाद के कोई दो स्तम्भ, चरित्र एवं प्रतिमा में हूबहू एक से नहीं हैं। इस प्रकार की कोई तुलना, रहीम तथा उनके लब्ध-प्रतिष्ठ सम-सामयिकों, दोनों के प्रति अन्याय ही होगा। अकबरी सामन्तों में से, युद्ध तथा शान्ति, विद्वत्ता और बुद्धि, कविता एवं कूटनीति में किसी की प्रतिभा इतनी बहुमुखी न थी, जितनी रहीम की। वे फारसी में काव्य-रचना करते थे और फारसी-गद्य के उत्कृष्ट लेखक थे। किन्तु तो भी न वे कवि के रूप में फैजी और उर्फी की श्रेणी में स्थान पाने के अधिकारी हैं और न शैलीकार एवं प्रगाढ़ विद्वान के

रूप में अबुलफ़ज़ल जैसों की कोटि में। वे कई प्रान्तों के राज्यपाल रहे और कई युद्धों में शौर्य-पराक्रम दिखलाया, किन्तु न तो वह प्रशासन में टोडरमल से आगे बढ़ जाने की महत्वाकांक्षा कर सकते थे और न सैनिक के रूप में मानसिंह से। वस्तुतः किसी क्षेत्र-विशेष में उनकी प्रतिभा द्वितीय कोटि की थी, पर उनके चरित्र के मानवीय गुणों तथा उनके शाही वैभव की पृष्ठभूमि में उनकी अतुल बहुमुखी प्रतिभा का किरणपुंज उस काल के लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देता था। उस दीप्ति का प्रकाश आगामी पीढ़ी पर पड़े बिना कैसे रह सकता था। वास्तव में, रहीम अकबरीयुग के प्रतिभा-समूह में रत्नों के भी रत्न थे।

अकबर की छत्र-छाया में पालित-पोषित तथा एशिया में उस समय के सब से अधिक वैभवशाली एवं प्रबुद्ध दरबार के वातावरण में शिक्षित-दीक्षित, अब्दुर्रहीम बड़े होकर एक ओर तो आदर्श सभासद, कुशल सैनिक, चतुर कूटनीतिज्ञ और सुयोग्य प्रशासक बने और दूसरी ओर अपने शाही आश्रय-दाता की भाँति विद्या एवं विद्वानों के अनुरागी। उनके व्यक्तिगत चरित्र के अध्ययन के लिए हमें प्रचुर सामग्री उपलब्ध नहीं। केवल 'मआसिरे रहीमी' में इसका थोड़ा-बहुत उल्लेख है, किन्तु वह भी सर्वथा निष्पक्ष नहीं। तो भी यह कहा जा सकता है कि उनके सम-सामयिकों में कुछ उनके हार्दिक प्रशंसक थे और कुछ ईर्षालु निन्दक। सौभाग्य से कट्टर मुस्लिम इतिहासकार बदायूनी, जो अकबर के सारे सभासदों को 'उस युग के बदमाश' कहने में भी संकोच नहीं करता, रहीम के विरुद्ध कुछ नहीं लिखता। उनके व्यक्तिगत चरित्र के विषय में हमें कहीं कानाफूसी या क्षतिकारक

बात नहीं सुनाई देती। उनके राजनीतिक आचरण का स्तर प्रायः वही था जो उस युग के सामान्य मुसलमान सामन्तों का था। उनके पेचीदे व्यक्तित्व को समझना सरल न था। राजनीति में जो उनके संसर्ग में आये, उनके लिए वह सदैव पहेली ही बने रहे। किन्तु तुर्क अथवा अफ़गानों की भाँति वे रक्तपिपासु और प्रतिकारी न थे। शत्रु को घनिष्ठ मित्र के रूप में परिणित कर लेने और जो कभी उनका सशस्त्र विपक्षी था उसे अपनी ओर मिला लेने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। अकबरी सभासदों में उनका व्यक्तित्व सबसे अधिक आकर्षक था। प्रतिष्ठा की उच्च भावना, उद्देश्य की महानता तथा जन व्यवहार में अपनी दक्षता के कारण, वह मुगल-साम्राज्य के एक सर्वोच्च सामन्त माने जाते थे। उन्होंने मुस्लिम-अमुस्लिम में कभी भेद-भाव नहीं रखा। अपने तुर्की सम्बन्धों तथा आचरण की भारतीय विशेषताओं के कारण, वह दोनों सम्प्रदायों के समान रूप से प्रेमपात्र थे। अकबर मानव-चरित्र का कुशल पारखी था और प्रवीण जौहरी की भाँति उसने अपने दरबार-शोभा तथा साम्राज्य-सेवा के लिये चुन चुनकर मनुष्य-रत्न रखे थे। रहीम-जैसे वास्तविक रत्न को अपने दरबार के नव रत्नों में स्थान देकर उसने अपनी गुण-ग्राहकता ही का परिचय दिया।

कहते हैं, ख़ानख़ाना के टक्कर का और कोई 'ख़ाँ' न हुआ। वैसे लगभग सभी मुगल-सामन्तों का पैर चादर से बाहर ही रहता था, पर उनमें ऐसा कोई न था जो शान-शौकत, दयालु दान-शीलता तथा सुसंस्कृत रुचि में रहीम को नीचा दिखा सकता। वह असहायों के 'क़िब्ला' और दुःखियों के भगवान थे। कभी कभी तो शाही कोप-भाजन

शरणार्थी भी उनके यहाँ से निराश नहीं लौटने पाता था। अकबर के क्रोध को शान्त करना रहीम के ही वश की बात थी।[१] उनके हृदय में मानव-जाति के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति कूट-कूट कर भरी थी। उनकी अनुपम दानशीलता विश्व-विदित थी। याचक उनके द्वार से कभी निराश न लौटे। पास द्रव्य न रहने पर वह ऋण ले लेते किन्तु दीनों की पुकार अनसुनी न कर सकते। समकक्षों के प्रति तो उनका व्यवहार बड़ा गर्व पूर्ण होता किन्तु विनीतों के प्रति वह बहुत नम्र थे।

हृदय एवं मस्तिष्क के इन विशिष्ट गुणों से सम्पन्न अब्दुर्रहीम खानखाना में कुछ दुर्बलतायें भी थीं। सर्व प्रथम, वह सांसारिक व्यक्ति थे और प्रस्तुत परिस्थितियों में लौकिक दृष्टि से जो मार्ग लाभकारी प्रतीत होता, वह निःसकोच वही ग्रहण करते। वह सिद्धान्तों की वेदी पर बलि होने वाले आदर्शवादी न थे। उनके दीर्घ कालीन जीवन में कई ऐसे अवसर आए जब उनके सिद्धान्तों की परीक्षा हुई किन्तु कहीं कहीं तो वे साधारण नैतिक स्तर से भी बहुत नीचे गिर गए। अवज्ञाओं की दया-याचना तथा कुरान शरीफ की शपथ लेने पर भी संकट-ग्रस्त राजकुमार शाहजहाँ के प्रति उन्होंने जो विश्वासघात किया, उसकी उनसे स्वप्न में भी कल्पना न की जा सकती थी। दक्षिण देश में दुरंगी नीति बरतने के कारण वह कितनी ही बार अपयश के

१ महाभारत के फारसी अनुवादकों में एक थानेश्वर निवासी हाजी सुल्तान नामक व्यक्ति था। थानेश्वर के हिन्दुओं ने उस पर गो-हत्या का अपराध मढ़ा और इस पर अकबर ने उसे देश निकाला दे भक्कर भेज दिया। खानखाना उस समय मुल्तान का राज्यपाल था। उसने उस दंड भोगी के साथ बड़ी दयालुता दिखलाई और बादशाह से कह सुनकर उसको क्षमा दिला दी। बदायूनी, भाग ३, पृ० १७३।

पात्र बने। उनकी स्वामिभक्ति तथा निष्ठा पर लोग सहसा विश्वास नहीं कर सकते थे। संशयात्मक स्वभाव के कारण उन्होंने कितने ही गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे जो यत्र-तत्र होने वाली काना फूसियों तक से अपने स्वामी को अवगत रखते। उनका कथन था कि मित्र वेष में शत्रु पर चोट करना चाहिए और वह इसी उक्ति के अनुसार आचरण भी करते थे।

रहीम का पारिवारिक जीवन कभी सुखी न रहा। उनके सामने ही मुख्य बेगम माहबानों तथा सभी पुत्र इस संसार से चल बसे। युवावस्था में ही उनकी दोनों पुत्रियाँ विधवा हो गईं। विधाता की लीला विचित्र है। ऐसा उदार एवं दानशील व्यक्ति आजीवन क्रूर प्रकृति के थपेड़ों का शिकार बनता रहा।

रहीम सेना-नायक के रूप में

अपने समकालीन सेना-नायकों में रहीम का स्थान अग्रगण्य है। सफल सैनिक-नेता के सभी विशिष्ट गुण उनमें जन्मजात थे, कालान्तर में अपने कृपालु स्वामी अकबर के पथ-प्रदर्शन में उन्हें युद्ध-कला का प्रथम पाठ सीखने का जो शुभावसर मिला, उससे वह प्रतिभा और भी निखर उठी। बहु संख्यक मुगल-सम्राटों में सर्वश्रेष्ठ विजेता ने गुजरात के रण-क्षेत्रों में युवक रहीम को युद्ध के जो दाव-पेंच सिखाए वे आगे चल कर उनके सैनिक जीवन में बड़े उपयोगी प्रमाणित हुए। मुजफ्फर गुजराती, मिर्जा जानी तथा सुहेल खाँ हब्शी आदि योद्धाओं पर प्राप्त उनकी विजयें उनके महान रण-कौशल और

संगठन-शक्ति की स्पष्ट परिचायक हैं। उनकी सूझ-बूझ और मौलिकता भी कम प्रशंसनीय न थी। गुजरात में कितने वयोवृद्ध कप्तानों ने अपनी चालों द्वारा उन्हें पथ-भ्रष्ट करने की चेष्टा की, मार्ग में अनेकों रोड़े अटकाए, किन्तु नवयुवक रहीम कभी भी उनके बहकावे में न आए। अनेकों अवरोधों के होते हुए भी वे कभी अपने निश्चित लक्ष्य से विचलित न हुए। सिंध में मिर्जा जानी को परास्त करना कोई सरल बात न थी। वह दीर्घकाल से शाही आदेशों की अवहेलना करता आ रहा था और अकबर अभी तक उसे अपने वश में नहीं कर सका था। किन्तु रहीम के सम्मुख उसकी एक भी न चली। अकाल और भुखमरी के मध्य भी वह युवक साहस-विहीन न हुआ और ऐसी ऐसी सैनिक चालें चलीं कि सिंध-शासक को अन्त में पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। गुजरात और सिन्ध दोनों ही प्रदेशों में कई बार उन्होंने स्वयं वीरता का ज्वलंत उदाहरण सम्मुख प्रस्तुत कर अपने सह-सैनिकों को अंतिम श्वास तक लड़ते रहने के लिए प्रोत्साहित किया।

दक्षिण-प्रदेश के मोर्चे पर जहाँ अनेक प्रख्यात एवं लब्ध-प्रतिष्ठ सेनानायकों को भी मुँह की खानी पड़ी थी, रहीम ही एक ऐसे व्यक्ति ठहर सकते थे। यदि वहाँ वे मुगल साम्राज्य की सीमा को आगे न बढ़ा सके तो पीछे भी न हटने दिया। उन्हें यथा-स्थान बनाये रखना रहीम ही के वश की बात थी। अकबर के राजत्व-काल में मुगलों की दक्षिण-देश में आंशिक विजय रहीम की दूरदर्शी योजनाओं के कारण ही सम्भव हो सकी थी। शत्रु के बहुसंख्यक और तोपखाने में प्रबल होने पर भी अस्थी-युद्ध में रहीम ने जो

विजय-लाभ किया उससे उनके रण-कौशल तथा सैनिक-बुद्धि का भली भाँति अनुमान लगाया जा सकता है। जहाँगीर कालीन सामन्तों में रहीम ही ऐसे थे जो मलिक अम्बर को ठिकाने ले आने में समर्थ थे। उस हब्शी सरदार के आक्रमण प्रायः तभी सफल होते जब खानखाना दक्षिण-मोर्चे पर उपस्थित न होता।

रहीम अपने अधीनस्थ सैनिकों का बड़ा ध्यान रखते। उनको सुख-सुविधा प्रदान करने में वे सतत सचेष्ट रहते। विजय-प्राप्ति पर तो वे प्रायः अपने शिविर की समस्त सम्पति सैनिकों में वितरित कर देते।

किन्तु सेना-नायक के इन प्रशंसनीय गुणों के होते हुए भी रहीम में वह सैनिक-प्रतिभा न थी, जो उनके पिता बैराम खाँ में थी। दक्षिण सीमा पर उन्हें जो कई बार घोर पराजय हुई उनके अंशतः वह स्वयं उत्तरदायी थे। अपने उतावलेपन तथा अदूरदर्शी योजनाओं के कारण उन्हें कई बार लज्जा एवं ग्लानि का पात्र बनना पड़ा। लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर करने पर वह कदाचित् ही कभी उद्यत रहते। जान देकर भी शान रखने का पाठ उन्होंने नहीं सीखा था। वह एक अवसरवादी थे जो शरीर-रक्षा के हेतु मान-रक्षा की बलि देने में संकोच का कदाचित् ही अनुभव करते। 'सेवा पहिले, स्वार्थ बाद में' यह मन्त्र उनकी नीति से मेल न खाता था।

अब्दुर्रहीम कूटनीतिज्ञ के रूप में

यद्यपि रहीम में शौर्य्य का किसी प्रकार अभाव न था तो भी वे

उतने कुशल सैनिक न थे जितने कुशल कि कूटनीतिज्ञ। यों तो उनकी कूटनीति गुजरात एवं सिंध में भी कम सफल न रही किन्तु दक्षिण देश में उन्होंने जो चमत्कार दिखलाया वह विशेष उल्लेखनीय है। दक्षिण-देश पर आक्रमण करने के प्रथम चरण ही में उन्होंने राजा अली ख़ाँ जैसे महत्वपूर्ण संगी को अपनी ओर मिला कर वास्तव में बड़ी दूरदर्शिता दिखलाई। वह खानदेश-शासक रहीम के मैत्रीपूर्ण एवं उदार व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि अन्तिम श्वास तक अपने मित्र के उद्देश-प्राप्ति के लिये कंधे से कंधा भिड़ाए लड़ता रहा। जिन कारणों ने अहमदनगर की संरक्षिका चाँद बीबी को मुगलों के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजने को विवश किया उनमें रहीम की कूटनीति-पूर्ण चालों का योग कम न था। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। उन्हें यह स्पष्ट परिलक्षित होता था कि उनका तथा उस साम्राज्य का जिसके वह प्रतिनिधि थे, हित इसी में है कि दक्षिण देश में विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे से भिड़ते रहें जिससे उन्हें सर उठाने का अवकाश न मिले। इसी कारण वह वहाँ सदैव शक्ति-संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करते। यदि कहीं औरंगजेब के सेना नायकों में कोई रहीम की प्रतिभा का होता तो कदाचित् दक्षिण-देश मुगल-साम्राज्य का समाधि-स्थान न प्रमाणित होता।

ईर्षालु एवं विश्वासघाती सहकारियों तथा अधीनस्थ अधिकारियों के साथ व्यवहार करने में रहीम बड़े ही पटु थे। आन्तरिक भावों को इस यत्न से छिपाए रखते कि कोई उनका आभास मात्र तक न पा सकता था। मिलते तो ऐसे जैसे कोई अत्यधिक निकट शुभेच्छु हो। वह इतने व्यवहार-कुशल थे कि दक्षिण-देश में जिन दोनों राजकुमारों के अधीन वे कार्य करते थे

वे उनके हाथ की कठपुतली थे। यहाँ तक कि खुर्रम भी जिसकी दक्षिण की सफलता में रहीम का योग कम न था, उनकी सलाह को अनसुनी नहीं कर सकता था। दक्षिण में ही अबुल फज्ल के विरुद्ध झूठी-सही ऐसी ऐसी चालें चलीं कि शेख साहब को वहाँ से भागना ही पड़ा। दक्षिण-कमान में बार बार नियुक्ति उनकी सफल कूटनीति की स्पष्ट परिचायक है। उनके विरुद्ध आरोप पर आरोप लगाए जाते किन्तु ज्योंही वह दक्षिण की ओर पीठ फेरते कि मुगलों की जान पर आ बनती। उस प्रदेश में मुगल-प्रतिष्ठा की रक्षा एवं निर्वाह केवल रहीम ही के वश की बात थी। खानजहाँ लोदी, राजा मानसिंह तथा महावत खाँ प्रभृति सामन्त भी कूटनीतिज्ञता में उनकी बराबरी का दावा न कर सकते थे। उनकी इस प्रतिभा को देख कर उनके सम सामयिक प्रायः दंग रह जाते थे।

रहीम कुशल सेना-नायक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ होते हुए भी दक्षिण में अन्ततोगत्वा असफल ही रहे। क्या यह असफलता उनके विश्वासघात के कारण थी। कहा जाता है कि वह भीतर ही भीतर दक्षिणियों से मिले हुए थे। अबुलफज्ल उन पर दक्षिण में दुरंगी नीति अपनाने तथा निष्क्रिय रहने का आरोप लगाता है। जहाँगीर उनसे सदैव सशंकि रहता और इसी कारण उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार रखता। तत्कालीन अंग्रेज यात्री सर टामस रो ने जन-साधारण से जो कुछ सुना होगा उसी को दोहराया है। आधुनिक लेखक भी रहीम को इन दोषारोपणों से मुक्त नहीं करते।

अकबर से लेकर औरंगजेब के समय तक की दक्षिण प्रदेश में मुगलों की गतिविधियों के सूक्ष्म पर्यवेक्षक को यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा कि उस सुदूर क्षेत्र में शाही-दल को जो असफलतायें हुईं उसका

मुख्य कारण कुछ और ही था। रहीम उदार दाता थे, शान-शौकत, ठाट-बाट उन्हें प्रिय था, सम्भव है प्रलोभन में आकर उन्होंने दक्षिण के धनिक शासकों की थैलियाँ स्वीकार कर ली हों। व्यक्तिगत आकांक्षा के कारण कदाचित् वह दक्षिण में मुगल-युद्ध समाप्त नहीं करना चाहते थे। वह खूब समझते थे कि यदि दक्षिण-विजय का कार्य शीघ्र समाप्त हो गया तो उनका उतना महत्त्व न रह जायगा। सम्भव था तब दरबार में उनके विरुद्ध चालें चली जायें और उनके पतन की विधियाँ सोची जाएँ। उन्होंने स्वार्थ तथा साम्राज्य का कुशल युद्ध जारी रखने में ही देखा होगा। किन्तु दक्षिण में मुगल-पराजयों के लिए केवल रहीम को उत्तरदायी ठहराना ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना होगा। मुगलों की उस प्रदेश में पराजयों के कई मुख्य कारण थे। प्रथम, अत्याधिक पारस्परिक द्वेष तथा कटुता के कारण वे कभी एक साथ मिल कर काम न कर सकते थे। द्वितीय, यातायात की कठिनाइयों के कारण उनके पास आवश्यक खाद्य सामग्री भी ठीक से न पहुँच पाती थी। तृतीय, मुगल सैनिक केवल मैदानी युद्ध-कला ही में प्रवीण थे, जब दक्षिणियों के लुका-छिपा युद्ध के ढंगों का सामना करना पड़ता, तब वे अपने को सर्वथा असमर्थ पाते। उनमें वह क्षमता न थी कि अपने को परिवर्तित परिस्थितियों में ढाल सकते। इनके अतिरिक्त दक्षिणी सेना-नायकों में उस समय मलिक अम्बर तथा मराठा वीरशाहजी भोंसले दो ऐसे असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे जिनका लोहा मुगलों को मानना ही पड़ता था। रहीम के सत्तर वर्ष पश्चात् जब मुगल सम्राट औरंगजेब बीजापुर-राज्य विजय करने चला तो उसे भी काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा यद्यपि तब तक

आदिलशाही राज्य अत्यन्त दुर्बल और आंतरिक रूप से बिलकुल विशृंखल हो गया था। दक्षिण की इन विषम परिस्थितियों में सुविख्यात मुगल सेना-नायक मिर्जा राजा जयसिंह को भी रहीम से अधिक सफलता न प्राप्त हो सकी।

रहीम का धर्म

रहीम का धर्म एक विवाद-ग्रस्त विषय है। धर्म का जो संकुचित अर्थ किया जाता है उसके अनुसार हम उन्हें कदाचित ही धार्मिक व्यक्ति कह सकें। वह स्वदेश के सभी मतों का समान रूप से सम्मान करते थे। कतिपय हिन्दी-आलोचकों ने उनकी कृतियों के आधार पर उनके धर्म के विषय में अपनी सम्मतियाँ प्रकट की हैं किन्तु सुनिश्चित प्रमाणों के अभाव में हमें वह मान्य नहीं। यह सत्य है कि हिन्दू देवी-देवताओं की प्रशंसा में उन्होंने बहुत सी रचनाएँ कीं, तुलसी तथा कबीर की भाँति रामनाम की अमोघ शक्ति का मंडन किया, सूर की भाँति उन्होंने लीलामय कृष्ण के प्रति अपने भावोद्गार व्यक्त किए और गोवध का निषेध किया, किन्तु इन सबके होते हुए वे कभी भी इस्लाम धर्म से विमुख नहीं हुए। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए समसामयिक ग्रंथों में कई उदाहरण उपलब्ध हैं। उन्होंने मुसलमानों के तीर्थ स्थान मक्का आने-जाने के लिए यात्रियों के सुभीतार्थ सूरत बन्दर पर निजी व्यय से रहीमी, करीमी और सलारी नामक तीन जल-पोतों की व्यवस्था की थी[१]। बुरहानपुर नगर स्थित जामा मसजिद से शहर से

१ म० र० भाग २ पृ० ३११

बाहर लाल बाग तक चार मील लम्बी एक नहर का निर्माण रहीम ने करवाया था। उक्त मसजिद के प्रांगण में उन्होंने एक फव्वारा भी बनवाया था जिससे कि आराधकों को नमाज पढने से पूर्व शरीर-शुद्धि के लिए आवश्यक जल प्राप्त हो सके[1]। वे धार्मिक आचार्यों से परामर्श करते रहते थे। बदायूनी लिखता है, १५६४ ई० में खानख़ाना शेख़ अब्दुल गनी नामक फकीर से सलाह लेने गया। शेख ने कहा कि इस्लाम धर्म के अनुकूल आचरण करना सब से अधिक महत्वपूर्ण समझा'[2]। इस्लाम धर्म के प्रख्यात उपदेशकों से ख़ानख़ाना का प्रायः पत्र-व्यवहार होता और वे उसकी धार्मिक निष्ठा पर पूर्ण विश्वास रखते थे। 'मकतूबाते हजरत मुजद्दिद' नामक ग्रंथ में प्रसिद्ध सुधारक शेख अहमद सरहिन्दी द्वारा ख़ानख़ाना के नाम लिखे गए कितने पत्र हैं जो उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं। कट्टर बदायूनी भी रहीम की इस्लाम धर्म के प्रति उदासीनता का कहीं उल्लेख नहीं करता।

एक फरमान में रहीम ने अपने को अकबर का 'मुरीद' अर्थात् शिष्य कहा है[3]। इससे कुछ लोगों ने निष्कर्ष निकाला है कि वह 'दीन-इलाही' के अनुयायी थे। किन्तु अकबर के इस नए धर्म के अनुयायियों की सूची में रहीम का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। ईसाई धर्मावलम्बियों को भी रहीम से कभी कोई शिकायत नहीं रही और वे उनकी प्रशंसा ही किए हैं[4]। कुछ आलोचकों ने आरोप

१ म० र० भाग २ पृ० ६०२

२ बदायूनी भाग ३, पृ० ११२

३ इम्पीरियलफरमान्स (१५७७-१८०५ ए० डी०) झावेरी द्वारा संग्रहीत

४ सर टामसरो पृ० ७०

लगाया है कि वे दक्षिण के शिया शासकों के प्रति पक्षपात करते थे किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण इसे सिद्ध नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि रहीम के लिए धर्म एक नीति का विषय था मत का नहीं।

कला-प्रिय रहीम

अपने स्वामी अकबर की भाँति जिसकी नीति रहीम ने जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में अपनायी, उन्हें भवन-निर्माण-कला का भी बड़ा चाव था। अपने युवा काल में ही उन्होंने सरखेज के निकट सुप्रसिद्ध फतेह बाग की स्थापना की। बुरहानपुर के निकट लाल बाग के ध्वंसावशेष रहीम के सुन्दर उद्यान लगवाने तथा उनमें भव्य भवनों के निर्माण कराने की रुचि के स्पष्ट प्रमाण हैं। बुरहानपुर की निरन्तर बढ़ती हुई आबादी के फलस्वरूप नागरिकों को स्थानाभाव का जो कष्ट हो रहा था, उसका निवारण करने के लिए उन्होंने शहर के बाह्य भाग में एक नए उपनगर की स्थापना की और अपने स्वामी जहाँगीर के नाम पर उसका नाम 'जहाँगीरपुर' रखा। रहीम द्वारा निर्मित सुविस्तृत एवं सुसज्जित स्नानागार इतने लोक प्रिय हुए कि उनके कितने ही समकक्षों ने उन्हें आदर्श मान उन्हीं के ढंग पर स्वयं भी बहुत से स्नानागार बनवाए। दिल्ली, लाहौर, अहमदाबाद तथा बुरहानपुर नगरों में कितनी इमारतों के ध्वंसावशेष आज भी अपने आँचल में रहीम की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए हैं।

भारत के विभिन्न भागों में रहीम ने जितने भवन निर्माण करवाए 'मआसिरे-रहीमी' में उन सब का विशद वर्णन है। दिल्ली में हुमायूँ के

मकबरे के पड़ोस में ही ख़ानख़ाना का मकबरा है जिसे रहीम ने अपने जीवन-काल ही में बनवाया था। मुगल कालीन मकबरों में इसका प्रमुख स्थान है। कालान्तर में मुगल सम्राट शाहजहाँ को ताजमहल बनवाने में जिन मकबरों से प्रेरणा मिली उनमें कदाचित् ख़ानख़ाना का मकबरा भी गण्य है।

रहीम को अन्य ललित कलाओं से भी पर्याप्त प्रेम था। छविकारों और गायकों को वह दिल खोल कर पुरस्कार देते। बदायूनी लिखता है कि रहीम जब कभी गायकों की मधुर स्वर लहरी सुनते, तो उनका कवि-हृदय द्रवित हो जाता। करुण रस-प्लावित रागों को सुन उनके नेत्र आर्द्र हो जाते। तत्कालीन सुविख्यात गायक रामदास को, जो लखनऊ का निवासी था और संगीत कला में जिसकी गणना तानसेन के बाद ही होती थी, रहीम ने एक लाख रुपये पुरस्कार स्वरूप दिए। यह गायक रहीम का सतत संगी था। उसके मधुर कंठ से निस्सृत राग रहीम को प्रायः आत्मविभोर कर देते थे।

अपने स्वामी जहाँगीर की भाँति ख़ानख़ाना चित्रकला का भी अच्छा पारखी था। कहते हैं एक बार किसी चित्रकार ने ख़ानख़ाना को एक चित्र भेंट किया। उस चित्र में यह दिखलाया गया था कि एक सुन्दरी स्नानोपरान्त कुरसी पर बैठी एक ओर को झुकी हुई बाल फटकार रही है। दासी झावें से रगड़ती हुए उसका पैर धो रही है। ख़ानख़ाना चित्र देखते ही मुग्ध हो गया और उसने चित्रकार को पाँच हजार रुपये पुरस्कार में दिए। चित्रकार ने निवेदन किया कि वह पुरस्कार तभी लेगा जब ख़ानख़ाना उसे यह बतला दे कि उस चित्र में क्या विशेषता है जिस पर उसे पुरस्कार प्रदान किया गया है। इस पर सभी

उपस्थित व्यक्ति भौचक्के से ख़ानख़ाना की ओर देखने लगे। कला पारखी ख़ानख़ाना ने कहा कि उस सुन्दरी के होठों पर जो मधुर मुस्कान है और चेहरे का जो भाव है वह अत्यन्त आकर्षक है किन्तु इसका कारण समझने के लिए उसके पैरों की ओर देखना चाहिए जहाँ गुदगुदियाँ हो रही हैं। चित्रकार इस उत्तर पर विमुग्ध हो गया और सदा के लिए ख़ानख़ाना का दास बन गया।

किन्तु रहीम के चरित्र का सबसे बड़ी विशेषता थी उनका हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के प्रति अनन्य प्रेम। वह उन भारतीय जननी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे जो मेवाती राजपूतों की वंशजा थीं और जो कालान्तर में इस्लाम धर्म के अनुयायी हो गए थे। अतः मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति यह सहज निष्ठा उन्हें विरासत में मिली हुई थी। विजित जाति की संस्कृति के प्रति उनके हृदय में जो स्वाभाविक सम्मान था, हिन्दी संत कवियों के साथ उनके घनिष्ठ सम्पर्क ने उसे और भी बढ़ा दिया। वह इस देश में और इस देश के थे। राम रहीम उनके लिए समान थे। उन्होंने मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बियों में कभी कोई भेद-भाव नहीं किया। उनके दीर्घ कालीन जीवन में एक भी ऐसी घटना नहीं मिलती जब कि उन्होंने किसी भी प्रकार से काफ़िरों का धर्म नष्ट किया हो। वास्तव में वह मानवता के पुजारी थे। उनकी हिन्दी-रचनाओं ने उन्हें अमर कर दिया है और उनकी असीम उदारता भारत में कहावत बन गई है। संक्षेप में वह अकबर की भाँति 'भारतीयों के भारतीय' थे।

रहीम-काव्य-संग्रह



दोहावली

अच्युत चरन तरंगिनी, शिव सिर मालति माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल ॥१॥

अधम बचन ते को फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह ।
रहिमन काम न आइहै, ये नीरस जग माँह ॥२॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर ।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥३॥

अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि ।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥४॥

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥५॥

अमृत ऐसे बचन में रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥६॥

अरज गरज माने नहीं, रहिमन ए जन चारि ।
रनियाँ, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि ॥७॥

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलें न राम ॥८॥

आदर घटै नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहि।
जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहि ॥९॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल[१]।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़[२] बबूल ॥१०॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बन्धु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामे बरै बरेह ॥११॥

उगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति[३] ॥१२॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय ॥१३॥

ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं ॥१४॥

असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गए, पारासर के नाज ॥१५॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥१६॥

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥१७॥

---

१ पाठ० मूल २. पाठ० कूर।
३ मिला० उदेत सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

अन्तर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपनो, जा सिर बीती होय ॥१८॥

उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए, पलटत लगे न बार[1] ॥१९॥

ओछो काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहे न कोय[2] ॥२०॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन[3] हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर[4] ॥२१॥

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन[5] ॥२२॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय[6] ॥२३॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय ॥२४॥

---

१ मिला० नदीनां नखिनां चैव, शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

२ पाठ० थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।

३ पाठ० गुनी

४ पाठ० एहि प्रकार हम कूर।

५ मिला० सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत को फल सूर॥ (सूरदास)

६ मिला० यद्व दन्ति चपलेत्यपवाद नैव दूषणमिदं कमलायाः।
दूषणं जलनिधेर्हि भवेत्तत्पुराणपुरुषाय ददौ ताम् ॥

करम हीन रहिमन लखो, धस्यो बड़े घर चोर।
चिन्तन ही बड़ भाग के, लागत ह्वै गो भोर ॥२५॥

रहिमन कहत सुपेट[१] सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करे, भरे बिगारे डीठ[२] ॥२६॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति[३] होय।
तन सनेह कैसे दुरे, दृग दीपक जरु दोय ॥२७॥

कहि रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गए, चरन कमल की ओट ॥२८॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिक की बात।
घटे बढ़े उनका कहा, घास बेचि जे खात ॥२९॥

कहि रहीम या जगत से, प्रीति गई दै टेरि।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥३०॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
बिपति कसौटी जे कसे, तेई[४] साँचे मीत ॥३१॥

---

१ पाठ० स्वपेट
२ पाठ०
अ० कहि रहीम या पेट तें, दुहुँ विधि दीनी पीठि।
भूखे भीख मँगावहू, भरे डिगावे डीठि॥
आ० रहिमन पेठे सों कहै, क्यों न भई तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठि॥
इ० रहिमन भाखत पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
भूखे मान डिगावही, भरे बिगारत दीठ॥
३ पाठ० निधि
४ पाठ० सोही

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥३२॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
ये डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग[1] ॥३३॥

कहु रहीम कैसे बने, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहे औ ना मिले, तासो कहा बसाय ॥३४॥

काकी महिमा नहिं घटी, पर घर गये रहीम।
धाय समानी उदधि मैं, गंग नाम भयो धीम[2] ॥३५॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि मे घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय ॥३६॥

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर ॥३७॥

---

१ मिला० कहियो जाय सूर के प्रभु सों, केर पास ज्यों बेर।

—सूरदास

नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिसाल।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल।

—तुलसी

दुष्ट निकट बसिए नहीं, बसि न कीजिए बात।
कदली बैर प्रसंग ते, छिदै कंठकन पात॥

२ पाठ० कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भयो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम॥

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेई[१]।
बाजू टूटे बाज को, साहेब चारा देइ ॥३८॥

काह करों बैकुण्ठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम बाँह[२] ॥३९॥

काह कामरी पामरी, जाड़ गये से काज।
रहिमन भूख बुझाइए, कैस्यो मिले अनाज ॥४०॥

कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेटे जाहिं[३] ॥४१॥

कैसे निबहे निबल जन करि सबलन सों बैर।
रहिमन बसि सागर विषै, करत मगर सों बैर[४] ॥४२॥

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछितायॅ[५]।
संपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाय ॥४३॥

---

१ पाठ० क रह्यो न काहू काम को, सेंत न कोऊ लेइ।
ख काम कछू आवे नहीं, मोल न कोऊ लेइ।

२ अहमद कवि के नाम से भी यह दोहा मिलता है।

३ मिला० क्यों बसिये क्यों निबहिये, नीति नेहपुर नाँहि।
लगा लगी लोचन करें, नाहक मन बँध जाँहि॥
बिहारी

४ रहिमन के स्थान पर "जैसे" के रूप में यह दोहा वृन्द के नाम से भी प्रचलित है।

५ पाठ० को पर द्वार पै जात न जिय सकुचात॥

खरच बढ़्यो, उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन[1] ॥४४॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत[2] नोंन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत यही सजाय ॥४५॥

खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति[3] ॥४६॥

खैर खून[4] खाँसी खुसी, बैर प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान ॥४७॥

गगन चढ़ै फरक्यो फिरै[5], रहिमन बहरी बाज।
फेरि आइ बन्धन परै, पेट अधम के काज ॥४८॥

गति रहीम बड नरन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥४९॥

---

१ पाठ० खरचु बढ्यो, रोजी घटी, नृपति निठुर मन कीन।
रहिमन वे नर का करैं, ज्यों थोरे जल मीन॥

२ पाठ० मरिए

३ वैष्णव दास कृत भक्त माल में यह पाठ है :
खिंचे चढ़त ढीले ढरत, अहो कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिये की रीति॥

मिला० दूर भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल॥
—बिहारी

४ पाठ० सुरक

५ पाठ० फिर क्यों तिरै,

गरज आपनी आप सो, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुल बधू, पर घर जात लजाय ॥५०॥

गहि सरनागत राम की, भव सागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥५१॥

गुनते लेत रहीम जन, सलिल कूपतें काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू के बाढ़ि ॥५२॥

गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि ॥५३॥

चढ़िबो मैन तुरंग पर, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥५४॥

चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहि छाँड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥५५॥

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेइ।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग सुरु देइ[१] ॥५६॥

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह ॥५७॥

चिन्ता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
सगे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनो किआहि ॥५८॥

---

१ मिला० को न याति वशं लोके मुखे पिंडेन पूर्यंते।
मृदंगो मुख लेपेन करोति मधुरध्वनिम् ॥

चित्रकूट मे रमि रहें, रहिमन अवध नरेस ।
जापर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस[1] ॥५९॥

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात ।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात[2] ॥६०॥

छोटेन से सोहैं[3] बड़े, कहि रहीम यह लेख[4] ।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥६१॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट ।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुन सिर चोट[5] ॥६२॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्त न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि ताकर रिपु होय[6] ॥६३॥

---

१ पाठ० आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष ।
जाको बिपदा परति है, सो करती तुव देस ।

२ मिला० छिमा बड़ेन को चाहिए छोटन को उतपात ।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥
कबीर

३ पाठ० निबहैं

४ पाठ० रेख

५ पाठ० रहिमन यह संसार में, सब सुख मिलत अगोट ।
जैसे फूटे नरद के, परत दुहुन सिर चोट ।

६ पाठ० रवि नाहिन हित होय
मिला० कुसमय मीत का को कवन?
[चालू]
कमल को रवि परम हित है, कहत श्रुति अस बयन ।
घटत बारिधि भयो दारुन, करत कमलन दहन ॥
—सूरदास

जलहिं मिलाइ रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अगवहिं आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर[1] ॥६४॥

जहाँ गाँठ तँह रस नहीं यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥६५॥

जानि अनीतिहिं जो करे, जागत ही रह सोइ[2]।
ताहि जगाइ बुझाइबो, रहिमन उचित न होइ[3] ॥६६॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़ति छोह ॥६७॥

जे गरीब सों हित करैं[4] धनि रहीम वे लोग[5]।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥६८॥

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोय।
तुलसी अंबुज अंबु बिन तरनि तासु रिपु होय॥
तुलसी

१ मिला० तोय मोल मैं देत हो छीरहिं सरिस बढाइ।
आंच न लागत देत वह आप पहिल जरि जाव॥
रसनिधि

२ पाठ० अनकीन्ही बात करै सोवत जागे जोय।

३ मिला० समुझि सुरीति कुरीति रत जागत ही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ।
जान बूझ अजगुत करे तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहे कैसे ताहि जगाय॥

४ पाठ० क. को आदरैं, ख. पर हित करें।

५ पाठ० ते रहीम बड लोग।

जेहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात[१] ॥६९॥

जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासो सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ॥७०॥

जे अनुचितकारी तिन्हे, लगे अक परिनाम॥
लखे उरज उर बेधिए, क्यों न होहि मुख स्याम ॥७१॥

जे रहीम बिधि बड किये, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि[२] ॥७२॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥७३॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिए, लेन कहाँ सो जाय[३] ॥७४॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत घाम औ मेह[४] ॥७५॥

---

१ मिला: येनांचलेन सरसीरुह लोचनायास्त्रातः प्रभूतपवनाद्दुरितेप्रदीपः।
तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमयं विनीतः क्रुद्धे विधौ भजति
मित्रममित्रभावम्॥

२ मिला० होहिं बड़े लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥
—तुलसी

३ जैसी हो भवितव्यता, वैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ ले जाय॥

४ मिला० वर सरे फर्जंदे आदम हरचे आयद बे गुजरद।

जो घर ही में घुसि रहैं, कदली सुपत सुडील ।
तो रहीम तिन ते भले, पथ के अपत करील ॥७६॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥७७॥

जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥७८॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तो ठहराय ।
जो जल उमगैं पार ते, सो रहीम बहि जाय[1] ॥७९॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग[2] ॥८०॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय[3] ।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥८१॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल ।
तो कत हाथहिं दुख दियो, गिरवरि गिरधर लाल[4] ॥८२॥

---

१ पाठ० तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय ।
उमड़ि चले जल पार तैं, तौ रहीम बहि जाय ॥

२ मिला० विकृतिं नैव गच्छन्ति, संगदोषेण साधवः ।
प्रावेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥

३ पाठ० ...... छोटो बढ़ै, बढ़त करत उतपात ।
... ... तिरछो तिरछो जात ॥

४ पाठ० तो काहे कर पर धर्‌यो गोबर्धन गोपाल ॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय ॥८३॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥८४॥

जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ ॥८५॥

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तो काधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥८६॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन[1] कहुँ किन जाहि[2]।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीजत नाहि ॥८७॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट[3]।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट ॥८८॥

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आंसु गारिबो खीस ॥८९॥

जो रहीम रहिबो चहो, कहौ वही को दाउ।
जो नृप वासर निशि कहे, तो कचपची दिखाउ ॥९०॥

---

१ पाठ० तनुआ.
२ पाठ० जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहूँ किन जाहिं
३ मिला० दो० सं० ६६

जो विषया सतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात ।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात[१] ॥६१॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात ।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपने हाथ ॥६२॥

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार ।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ता हार ॥६३॥

तन रहीम है करम बस, मन राखो वहि ओर ।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥६४॥

तबहीं लों जीवो भलो, दीबो होय न धीम ।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥६५॥

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियत न पान ।
कहि रहीम परकाज हित, सँपति-सचहिं सुजान[३] ॥६६॥

तासों ही कछु पाइए, कीजे जाकी आस ।
रीते सरवर पर गए, कैसे बुझै पियास ॥६७॥

---

१ मिला० जो विभूति साधुन तजी, तिहि विभूते लपटाय ।
जौन वमन करि डारिया, स्वान स्वाद सो खाय ॥
—कबीर

२ पाठ० बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचत रहीम ॥

३ मिला० वृच्छ कबहुँ नहि फल भखे, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥
—कबीर

तै रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माँहि खुल जाय ॥९८॥

तैं रहीम[1] मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि वासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥९९॥

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भए, करैं पाछिली बात ॥१००॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहत न कोय[2] ॥१०१॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि[3], सरवर को कोउ नाहिं ॥१०२॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली विचारी दीनता, दीनबन्धु से बंधु ॥१०३॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखत, दीनबंधु सम होय[4] ॥१०४॥

---

१ पाठ० जिहि
२ मिला० साईं एकै गिर धरयो, गिरधर गिरिधर होय।
हनूमान बहु गिरि धरे, गिरधर कहत न कोय॥
× × ×
थोरे ही जस होय जसी पुरुषन को साईं।
—गिरिधर

मिला० दोहा सं० २०
३ पाठ० रहिमन चातक रटनि हू
४ पाठ० रहिमन भली सो दीनता, नरो देवता होय।

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहि।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहि ॥१०५॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर ॥१०६॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागति आगि ॥१०७॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जौ न होय हित[1] हानि[2] ॥१०८॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हमपै धरैं, याते नीचे नैन[3] ॥१०९॥

दोनों रहिमन एक से, जौलों बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं[4] ॥११०॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुल बधू, चिथड़न माहि समात ॥१११॥

---

१ पाठ० मित

२ पाठ० कछुक सोच धन हानि को, बहुत सोच हित हानि ॥

३ प्रसिद्ध है कि रहीम ने कवि गंग के निम्नलिखित दोहे के उत्तर में तत्काल बनाकर उपर्युक्त दोहा सुनाया था।
सीखे कहाँ नवाब जू ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचे करो, त्यों त्यों नीचे नैन ॥

४ यही दोहा वृंद कवि के नाम से भी प्रचलित है। पर उसमें 'दोनो रहिमन एक से' के स्थान पर 'भले बुरे सब एक से' पाठ मिलता है।

धन दारा अरु सुतन सों, लग्यो रहै नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त[1] ॥112॥

धनि रहीम जल पंक[2] को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत[3] पिआसो जाय ॥113॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥114॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहे, त्यों रहीम यह देह ॥115॥

---

1. पाठ. धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त।

2. पाठ० कूप

3. पाठ० पीव

4. मिला० : हेलोल्लासित कल्लोल धिक्ते सागर गर्जितम्।
तव तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ॥
—सुभाषित

उपकर्तुं यथा स्वल्पः समर्थो न तथा महान्।
प्रायः कूपस्तृषां हन्ति सततं न तु वारिधिः ॥
— सुभाषित

गरजे बातन ते कहा, धिक नीरध गंभीर।
विकल विलोके कूप पथ, तृषावंत तव तीर ॥
—दीन दयाल गिरि

विषम वृषादित की, तृषा जिये मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारो मूँड़ पयोधि ॥
—बिहारी

धूर धरत नित सीस पर,[१] कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूढ़त गजराज ॥११६॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग ।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग ॥११७॥

नात नेह दूरी भली, जो रहीम जिय जानि ।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ई को पानि ॥११८॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन देत समेत ।
ते रहिमन पसु ते अधिक, रीझेहुँ कछू न देत ॥११९॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥१२०॥

नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन ।
मीठो भावे लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥१२१॥

पन्नगबेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान ।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥१२२॥

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, दियो भलो उपदेस[२] ॥१२३॥

---

१ पाठ० गज रज ढूंढत गलिन में ।

२ मिला० बिन प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न हिये कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥
—तुलसी

व्यास आस करि माँगिबो, हरिहू हरुओ होय ।
बामन ह्वै बलि के गए, जानत है सब कोय ॥
—व्यास

पसरि पत्र झंपहि पिर्ताहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥१२४॥

पाँच रूप पांडव भए, रथ बाहक नलराज।
दुरदिन परे रहीम कहि, बड़े किए घटि काज ॥१२५॥

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन[1] ॥१२६॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हम को पूछत कौन[2] ॥१२७॥

पुरुष पूजैं देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बने, पड़ो बैल को साथ[3] ॥१२८॥

पीतम[4] छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आपु पथिक फिरि जाय[5] ॥१२९॥

---

१ पाठ० रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरेगो कौन॥
मिला० पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु कौन॥
—तुलसी।

२. मिला० तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहि पूछिहै कौन॥
—तुलसी

३ पाठ० कहु रहीम कैसे बने, भैंस बैल को साथ॥
मिला० खसम जो पूजै देहरा, भूत पूजनी जोय।
एकै घर में दूवै मता, कुसल कहाँ ते होय।
—भारतेन्दु

४. पाठ० मोहन

५. पाठ० ज्यों, पथिक आय फिरि जाय।

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय ।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिए बलाय ॥१३०॥

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि ।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि[1] ॥१३१॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि ।
याते हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि ॥१३२॥

बड़े बड़ाई नहिं तजै, लघु रहीम इतराइ ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१३३॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल ।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥१३४॥

बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनौ धनी को जाइ[2] ।
घटै बढ़ै वाको कहा, भीख माँगि जो खाइ ॥१३५॥

बरु रहीम कानन बसि : अ[illegible][3] करिय फल तोय ।
बंधु मध्य गति दीन ह्वै, बसिबो उचित न होय[4] ॥१३६॥

---

१. पाठ० : अरज सुनत लरजत तुरत गरज मिटाई आनि ।
कहि रहीम का दिन हुती, हरि हाथी पहिचानि ॥

२ पाठ० भलि ही को धन जाय ।

३ पाठ० : भलो बास .....

४ वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवित द्रुमालयं पत्रफलाम्बु भोजनम्
तृणेषु शय्या परिधानवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥
—भर्तृहरि

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस[१] ॥१३७॥

बाँकी चितवनि चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम ॥१३८॥

बिगरी बात बने नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय ॥१३९॥

बिपति भए धन ना रहै, रहै जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भे भोर ॥१४०॥

विरह रूप घन तम भए, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥१४१॥

भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान[२] ॥१४२॥

भलो भयो घर तें छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपत पेट के हेत ॥१४३॥

---

१ मिला० दुर्वृत्तसंगतिरनर्थ परम्पराया
हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र।
लंकेश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
आप्नोति बंधनमसा किल सिंधुराजः ॥
—सुभाषित

दुर्जन के संसर्ग तें सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दशमुख अपराध तें, बंधन लह्यो जलेस।
—वृंद कवि

२ मिला० : भजूं तो को है भजन को, तजूं तो को है आन।
भजन तजन के मध्य मैं, सो कबीर मन आन ॥
—कबीर

भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार ।
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार[१] ॥१४४॥

भावी काहू ना दही, दही एक भगवान ।[२]
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जानि ॥१४५॥

भावी या उनमान की, पांडव बनहिं रहीम ।
तदपि गौरि सुनि बांझ, बरु है संभु अजीम ॥१४६॥

भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम ।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥१४७॥

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।
रहिमन गिरि तें भूमि लों, लखौ तो एकै रूप ॥१४८॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय[३] ॥१४९॥

मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय ।
फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर जाय[४] ॥१५०॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सों कहाँ दिवान ।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥१५१॥

---

१ पाठ० जाके सिर अस भार, सो कत झोंकत भार अस ।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार मैं ॥
२ पाठ० भावी दह भगवान ।
३ मिला० 'शकर' सो बहु मोल जो भीर परे ठहराय ।
४ पाठ० फूल स्याम के उर लगे, फल स्यामा उर आय ॥

मनि मानिक मँहगे किये, सहँगे तृन जल नाज ।
रहिमन याते कहत हैं, राम गरीब नेवाज[1] ॥१५२॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष ।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥१५३॥

मान सरोवर ही मिलैं, हंसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालक नहिं जोग[2] ॥१५४॥

मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस ।
बिना मान अमृत पिए,[3] राहु कटायो सीस ॥१५५॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपने ठौर ॥१५६॥

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ काम ।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम[4] ॥१५७॥

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१५८॥

---

१ मिला॰ तुलसी जाने सुनि समुझि, कृपासिन्धु रघुराज ।
महँगे मनि कंचन किए, सौंघे जग जल नाज ॥
—तुलसी

२ पाठ॰ विपुल बलाकनि जोग ।

३ पाठ॰ बिन आदर अमृत चख्यो

४ मिला॰ कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याचां मानहारिणीम् ।
बलि प्रार्थनया आप लघुतां पुरुषोत्तमः ॥
—सुभाषित

मुकता कर करपूर कर, चातक-जीवन जोय[१] ।
एतो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन बिस होय-[२] ॥[३]१५९॥

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग ।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग ॥१६०॥

मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेख ।
स्याम कचन मे सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देख ॥१६१॥

मंदन के मरिहू गए, औगुन गन न सराहि ।
ज्यों रहीम बांधहू बँधे, मरहा ह्वै अधिकाहि ॥१६२॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवन्त[४] सर ताल ।
रहिमन मानसरोवरहिं,[५] मनसा करत मराल ॥१६३॥

यह न रहीम सराहिए, लेन देन की प्रीति ।
प्रानन बाजी राखिए, हार होय कै जीत ॥ १६४॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय ।
चीता, चोर, कमान के, नए ते अवगुन होय[६] ॥१६५॥

---

१ पाठ० चातक तृष हर सोय ।
२ पाठ० कुथल परे विष होय ।
मिला० सीप गयो मुकता भयो, कदली भयो कपूर ।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर ॥
—सूरदास
३ दे० दोहा सं० २२
४ पाठ० तोयवन्त ।
५ पाठ० एकै मानसर ।
६ मिला० नवत नवत बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान ।
ये तीनों हुते, नव, चीता, चोर, कमान ॥

याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भसम बनाय।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाय ॥१६६॥

ये रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय ॥१६७॥

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे, आपु बड़ाई आपु[1] ॥१६८॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति[2] ॥१६९॥

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बाँटनवारे को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥१७०॥

रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥१७१॥

रहिमन अति न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सैंजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि[2] ॥१७२॥

मला० न सौख्यसौभाग्यकरा गुणा नृणां, स्वयं गृहीताः सदृश कचा इव।
परैर्गृहीता द्वितयं वितन्वते, न तेन गृह्णन्ति निजं गुणं बुधाः ॥

ला० उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥
—सुभाषित
देखि० दो० सं० १२

ह० रहिमन बहुत न फूलिए, चित्त आपनो जानि।
अति फूले सो सहिजनी, डार पात की हानि ॥

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उतसाह ।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥१७३॥

रहिमन अपने[1] पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अनखाये रहे, तो सों को[2] अनखाय ॥१७४॥

रहिमन अब वे बिरिछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर ।
बागन बिच बिच देखियत, सेंहुड़, कंज, करीर ॥१७५॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय[3] ॥१७६॥

रहिमन अंसुवा नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ[4] ॥१७७॥

रहिमन आंटा के लगे, बाजत है दिन रात ।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसात[5] ॥१७८॥

---

१ पाठ० मैं या
२ पाठ० का काहू, : का कोऊ :
मिला० दो० सं० २६
३ मिला० व्याध मिरगा बान बेध्यो, कोटि कानन गवन ।
अंग शोणित भयो वैरी, खोज दीनो सवन ॥
—सूरदास
४ मिला० अरकम बेरूँ मी अफगंद राज दरून पर्दह: रा ।
आर शिकायत हा बूवद मेहमान बेरूँ कर्द: रा ॥
—खुसरो
५ मिला० दोहा सं० ५६

रहिमन आलस भजन में, विषय सुखहिं लपटाय ।
घास चरै पसु स्वाद तें, गुरु गुलिलाये खाय ॥१७९॥

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार[१] ॥१८०॥

रहिमन उजली प्रकृति को, नहीं नीच को संग ।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१८१॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति ॥१८२॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत[२] ॥१८३॥

रहिमन कबहुं बड़ेन के, नाहि गरब को लेस ।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१८४॥

---

१ यह दोहा सम्मन के नाम से भी प्रसिद्ध है ।
मिला० हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः ॥
—वाल्मीकि

तब हार पहार से लागत थे अब बीचन आइ पहार परे ।
—घन-आनन्द

२ मिला० चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये, चिन्तैका हि गरीयसी ।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम् ॥
—भर्तृहरि

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उतसाह ।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥१७३॥

रहिमन अपने[1] पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अनखाये रहे, तो सों को[2] अनखाय ॥१७४॥

रहिमन अब वे बिरिछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर ।
बागन बिच बिच देखियत, सेंहुड़, कुंज, करीर ॥१७५॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय[3] ॥१७६॥

रहिमन अंसुवा नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ[4] ॥१७७॥

रहिमन आंटा के लगे, बाजत है दिन रात ।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसात[5] ॥१७८॥

---

१ पाठ० मैं था
२ पाठ० का काहू, : का कोऊ :
मिला० दो० सं० २९
३ मिला० व्याध मिरगा बान बेध्यो, कोटि कानन गवन ।
अंग शोणित भयो बैरी, खोज दीन्हो लवन ॥
—सूरदास
४ मिला० अश्कम बेरूँ मी अफगंद राज दरून पर्दहः रा ।
आर शिकायत हा बुवद मेहमान बेरूँ कर्दः रा ॥
—खुसरो
५ मिला० दोहा सं० २९

रहिमन आलस भजन में, विषय सुखहिं लपटाय।
घास चरै पसु स्वाद तें, गुरु गुलिलाये खाय ॥१७९॥

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार[1] ॥१८०॥

रहिमन उजली प्रकृति को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१८१॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति ॥१८२॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत[2] ॥१८३॥

रहिमन कबहुं बड़ेन के, नाहिं गरब को लेस।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१८४॥

---

१ यह दोहा सम्मन के नाम से भी प्रसिद्ध है।
मिला० हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः ॥
—वाल्मीकि

तब हार पहार से लागत थे अब बीचन आइ पहार परे।
—घन-आनन्द

२ मिला० चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये, चिन्तैका हि गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम् ॥
—भर्तृहरि

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥१८५॥

रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन को कसकत रहे, समय चूक की हूक ॥१८६॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन चाखन हार ॥१८७॥

रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि ॥१८८॥

रहिमन खोटी आदि की[१], सो परिनाम लखाउ।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥१८९॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं[२]।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥१९०॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतेहि सन्मुख होत है, भरी दिखावै पीठ ॥१९१॥

---

१ पाठ० खानि को......

मिला० जब मैं था गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं ॥

मिला० जीवन ग्रहणे नम्रा, ग्रहीत्वा पुनरुन्नताः।
किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा, घटी यंत्रस्य दुर्जनाः ॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥१९०॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं[1] ॥१९१॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सन्मुख होत है, भरी दिखावै पीठ[2] ॥१९२॥

रहिमन चाक कुम्हार को, मागे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥१९३॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए,[3] देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं,[4] बनत न लगिहैं बेर ॥१९४॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम[5] ॥१९५॥

---

१ मिला०: जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं॥

२ मिला०: जीवन ग्रहणे नम्रा, गृहीत्वा पुनरुन्नताः।
किं कनिष्ठाः किमुत ज्येष्ठा घटी यंत्रस्य दुर्जनाः॥
—कबीर

३ पाठ०: चुप के ह्वै रहो।

४ पाठ०: जबकीं अइहै सुभ घरी।

५ मिला०: कैसे छोटे नरनु तें, सरत बड़ेन को काम।
मढ़्यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम॥
—बिहारी

रहिमन जगत बड़ाइ की, कूकुर की पहिचानि[1]।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि ॥१९६॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गथ[2] लैन ॥१९७॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय ॥१९८॥

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सब[3] कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥१९९॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥२००॥

रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रसमरा, रस काहे ना होय ॥२०१॥

रहिमन जो रहिबै चहै, कहै वाहि के दाव।
जो बासर कों[4] निसि कहै, तो कचपची दिखाव ॥२०२॥

---

१ व्यास जी की साखी की हस्तलिखित प्रति में यह दोहा 'व्यास बड़ाई जगत की' इस रूप में भी मिलता है।

मिला०: मान बड़ाई जगत की कूकर की पहिचानि।
मीति करे मुख चाटई, बैर किए तन हानि॥
—कबीर

२ पाठ० गद

३ पाठ०: सिर

४ पाठ० जो नृन बासर

मिला०: अगर शह रोज रा गोयद शबस्त ईं।
बेबायद गुफ्त ईनक माहो पर्वीं॥
—शेख सादी

रहिमन ठठरी[१] धूर की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि की धूरि ॥२०३॥

रहिमन तव लगि ठहरिए, दान, मान सन्मान।
घटत मान देखिय जबहि, तुरतहि करिय पयान[२] ॥२०४॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
परबस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥२०५॥

रहिमन तुम हमसों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुबीर ॥२०६॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट तैं, चोट परे मरि जाय[३] ॥२०७॥

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छनन को परतिया, नहीं करन को ब्याह ॥२०८॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुंआ खनावत लोग[४] ॥२०९॥

---

१ पाठ०: गठरी
२ मिला० दो० सं० २३६।
३ पाठ०: धनवन्तरि न बचाय ॥
४ मिला०: साधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीण वित्तो ऽपि सर्वदा।
शुष्को पि नदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः ॥
—सुभाषित

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नलराज[1] ॥२१०॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥२११॥

रहिमन धागा प्रेम को, मत तोड़ो चटकाय[2]।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय ॥२१२॥

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकले राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम[3] ॥२१३॥

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय[4]।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाटि न लैहै कोय ॥२१४॥

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहि रवि सकै बचाय ॥२१५॥

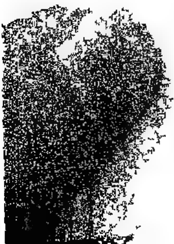
---

१ मिला०: साईं अवसर के पड़े को न सहै दुख द्वंद।
× × × ×
फिरे तपस्वी बेष बड़े अर्जुन बलधारी॥
कह गिरधर कविराय रसोई भीम बनाई।
को न करै घटि काम, पड़े अवसर के साईं॥

२ पाठ० छिटकाय।

३ मि०: तुलसी जिनके मुखन तें, धोखेहु निकलत राम।
तिनके पग की पगतरी मेरे तन को चाम॥
—तुलसी

४ मिला: तुलसी पर घर जाइकै ..
अपनी लाज गवाइहौ, बांटि न लइहै कोय॥



रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे[1], मद समुझै सब ताहि[2] ॥२१६॥

रहिमन नीच[3] प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै संपुटी, मारु सहै घरिआर[4] ॥२१७॥

रहिमन पर उपकार के, करत न यारी बीच।
माँस दियो शिवि भूप ने दीन्हों हाड़ दधीच ॥२१८॥

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥२१९॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥२२०॥

रहिमन पैंडा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल ॥२२१॥

रहिमन प्रीति सराहिए मिले होत रंग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सपेदी चून ॥२२२॥

१ पाठः दूध कलारिन हाथ लखि,
मिला०: जिहि प्रसंग दूखन लगे, तजिए ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारी हाथ॥
३ पाठः ओछ,
४ मिला०: सच्छिद्र निकटे वासो न कर्त्तव्यः कदाचन।
घटी पिबति पानीयं ताड्यते झल्लरी यथा॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय[1] ॥२२३॥

रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँडत साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ[2] ॥२२४॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं ।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं[3] ॥२२५॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम ।
हरि बाढ़े आकास लौं, तऊ बावनै नाम[4] ॥२२६॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात ।
बड़े बड़े समरथ भये, तौ न कोउ मरि जात ॥२२७

रहिमन मनहि लगाइ के, देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥२२८॥

---

१ मिला० फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याउ ।
तुलसी गाय बजाय के, देत काठ में पाँउ ॥
—तुलसी

२ मिला०: अरक्षितं तिष्ठति दैव रक्षितं, सुरक्षितं दैव हतं विनश्यति,
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित कृतंप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ।
राम भरोसे जे रहैं, पर्वत पर हरियाय ।
तुलसी बिरवा बाग के, सींचेहु, पै मुरझाय ॥
—तुलसी

३ मिला०: सुन्दर जिन अमृत पिये, सोई जाने स्वाद ।
बिन पीये करते फिरै जहाँ जहाँ बकवाद ॥
—सुन्दर

४ मिला०: अपे लघिमा पश्चान्महतापि पिधीयते नहि महिम्ना ।
वामन इति त्रिविक्रमभिदधति दशावतार विदः ॥
—सुभाषित

रहिमन माँगत बडेन की लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगन को गए, धरि बावन को रूप ॥२२९॥

रहिमन मारग प्रेम को, मत हीन मझाव[1]।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव[2] ॥२३०॥

रहिमन[3] मैन तुरंग चढि, चलिबो पावक माँहि
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥२३१॥

रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात[4] ॥२३२॥

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर[5] ॥२३३॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अंखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत[6] ॥२३४॥

---

१ पाठ..., बिन बूझे मति जाव।
२ पाठ..., नहीं धरन को पाँव॥
३ पाठ० लालन
४ मिला०: याचना हि पुरुषस्य महत्वं नाशयत्यखिलमेव तथाहि।
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन्॥
—सुभाषित।
५ मिला०: साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय।
—कबीर
६ बढत आपनो गोत को और सबै अनखाहि।
सुहृद नैन नैना बढ़े देखत हियो सिहाहि॥
—रसनिधि

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम को, रहिबो आपुहि आप ॥२३५॥

रहिमन रहिबो वा भलो, जौं लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२३६॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥२३७॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय ॥२३८॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय[१] ॥२३९॥

रहिमन रिस को छाँड़िकै, करो गरीबी भेस।
मीठो बोलो, नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥२४०॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बडे प्रीति की पौरि[२]।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२४१॥

रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ॥२४२॥

---

१ पाठ० क. राम नाम नहिं लेत है, रह्यो विषय लपटाय।
घास चरे पसु आप सों, गुड़ गास्यो ही खाय।
ख. कहि रहीम नहिं लेत है, रह्यो विषय लपटाय।
घास चरे पसु आपते, गुड़ लौलाए खाय॥

२ पाठ: रहिमन बड़ो निरादरै, तजिय न ताकी पौरि।

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पियतहूँ, साँप सहज धरि खाय ॥२४३॥

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत ।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥२४४॥

रहिमन वित्त अधर्म को जरत न लागै बार ।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥२४५॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
भूपर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ बिषान[१] ॥२४६॥

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥२४७॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं[२] ॥२४८॥

---

१ मिला०: येषां न विद्या न धर्मं न दानं
ज्ञानं न शील न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥
—सुभाषित

२ मिला०: माँगन गए सो मरि रहे, मरे सो मागन जाहि ।
तिन सों पहिले वे मुए, होत करत जो नाहिं ॥
—कबीर

रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिर मिलें, यहै जान अवतार[1] ॥२४९॥

रहिमन सूधी चाल तें प्यादा होत उजीर।
फरजी मीर न ह्वै सकै टेढ़े की तासीर[2] ॥२५०॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागो नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन ॥२५१॥

राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥२५२॥

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपनो, जनम गंवायो बादि ॥२५३॥

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२५४॥

रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा[3] लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम बिसाल ॥२५५॥

---

१ मिला० अहमद गति अवतार की, सबै कहत संसार।
बिछुरे मानुस फिर मिले, यहै जान अवतार॥
—अहमद

२ पाठ० फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सों, प्यादो होत वजीर॥

३ पाठ० दूबा

रूप बिलोकि रहीम तँह, जँह जहँ मन लगि जाय ।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय ॥२५६॥

रोल बिगाड़ें राज नैं,[1] मोल बिगाड़े माल ।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाडे चाल ॥२५७॥

लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन ।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगहर थान[2] ॥२५८॥

लोहे की न लोहार की, रहिमन कही विचार ।
जा हनि मारै सीस में, ताही की तलवार ॥२५९॥

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत ।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥२६०॥

विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत ।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥२६१॥

सदा नगारा कूच का, बाजत आठो जाम ।
रहिमन या जग आइकै, का करि रहा मुकाम ॥२६२॥

सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम ।
हित अनहित तब जानिये जब कछु अटकै काम ॥२६३॥

---

१ पाठ० रौजकूं
२ पाठ० मगरू स्थान ।

सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कँह जाय।
रहिमन सेलह जोई सहै, सो जागीरैं खाय ॥२६४॥

समय दसा कुल देखिकै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२६५॥

समय परे ओछे बचन, सब के सहै रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिये रहे भीम ॥२६६॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात ॥२६७॥

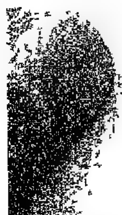
समय लाभ सम लाभ नहि, समय चूकि सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूकि की हूक ॥२६८॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२६९॥

सर सूखे पंछी उड़ै, औरै सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कँह जाहिं ॥२७०॥

स्वारथ रचत रहीम सब, औगुनहूँ जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ कूबर छाँहि ॥२७१॥

स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिये, रहिमन तीन पवित्त ॥२७२॥



साधु सराहै साधुता,[1] जती जोखिता जान।
रहिमन[2] साँचे सूर को, बैरी करै बखान ॥२७३॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूर जान है बाट ॥२७४॥

संतत संपति जानि कै सब को सब कछु देत[3]।
दीन बन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥२७५॥

संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहि।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहि माँहि ॥२७६॥

ससि की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहि सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥२७७॥

ससि सुकेस[4] साहस सलिल, मान[5] सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम[6] ॥२७८॥

---

१ पाठ० सो सती
२ पाठ० रज्जब
३ पाठ० क. संपति संपतिवान को, संपति वारो देत।
ख. संपति संपतिवान को, सब कोऊ बसु देत।
४ पाठ० सकोच
५ पाठ : साज
६ मिला० बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत फिरि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाय॥
बिहारी—

सीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥२७९॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर[1] ॥२८०॥

हरी हरी करुनाकरी, सुनी जो सब ना टेर।
डग डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर ॥२८१॥

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात[2]।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात ॥२८२॥

होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदापि घट जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय ॥२८३॥

होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिन काज की, तैसे तार खजूर[3] ॥२८४॥

---

१ मिला० मोहन छबि रसखानि लखी अब दृग आपनि नाहिं।
ऐसे आवत धनुष से छूटे सर से जाहिं॥
—रसखान।

२ पाठ० जहाँ बसात।

३ मिला० बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥
—कबीर।

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो लगै ॥२८५॥

रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिन के अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥२८६॥

रहिमन जग की रीति, मै देख्यो रस ऊख मैं।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तँह रस नहीं ॥२८७॥

रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥२८८॥

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२८९॥

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥२९०॥

बिन्दु भी सिन्धु समान, को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हिरान, रहिमन अपुने आप तें ॥२९१॥

नगर-शोभा

आदि रूप की परम दुति, घट घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ ॥१॥

नैन तृप्ति कछु होत है, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयत, आदि रूप की कांति ॥२॥

उत्तम जाती ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय ॥३॥

परजापति परमेश्वरी, गंगा रूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान ॥४॥

रूप-रंग-रति-राज में, खतरानी इतरान।
मानो रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान ॥५॥

परस पाहन की मनो, धरे पूतरी अंग।
क्यों न होय कंचन बहू, जे बिलसै तिहि संग ॥६॥

कबहुँ दिखावै जौहरनि[१], हँसि हँसि मानक लाल।
कबहूँ चख ते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल ॥७॥

जद्यपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ ॥८॥

१ पाठ० जौहरिन
२ पाठ० चितरनि

कैथिनि कथन न पारई, प्रेम कथा मुख भेन।
छाती ही पाती मनों, लिखै मैन की सैन ॥९॥

बरुनि बार लेखनि करैं, मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिखि नैन तें, पिय बाँचन को देइ ॥१०॥

चतुर चितेरनि चित हरै, चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ ॥११॥

पलक न टारैं बदन तैं, पलक न मारै मित्र।
नेकु न चित ते ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र ॥१२॥

सुरँग बरन बरइन बनी, नैन खवाये पान।
निस दिन फेरैं पान ज्यों, बिरही जन के प्रान ॥१३॥

पानी पीरी अति बनी, चन्दन खौरे गात।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै ह्वै जात ॥१४॥

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि ॥१५॥

रहसनि बहसनि मन हरै, घेरि घेरि[1] तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुनि चित्त न देहि ॥१६॥

बनियाँइन बनि आइकै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुवे टारत बाट ॥१७॥

---

१ पाठ० घोर घोर

गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँडी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात ॥१८॥

रँगरेजनि के संग में, उठत अनंग-तरंग।
आनन ऊपर आइयतु[1], सुरत अन्त के रंग ॥१९॥

मारत नैन कुरंग ते, मो मन मार मरोर।
आपन अधर सुरंग ते, कामी काढ़त बोर ॥२०॥

गति[2] गरूर गयन्द[3] जिमि, गोरे बरन गँवार।
जाके परसत पाइयै, धनवा की उनहार ॥२१॥

घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बाँधि कै, लेजू लै ज्यौं जाइ ॥२२॥

भाटा बरन सु कौंजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग ॥२३॥

हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात।
झूठे हू गारी सुनत, साचेहू ललचात ॥२४॥

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहिरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही हर जिय जाइ ॥२५॥

और बनज ब्यौपार को, भाव बिचारै कौन।
लोइन लोने होत है, देखत वाको लौन ॥२६॥

---

१ पाठ० पाइयतु
२ " गति
३ " गजराज

बर बाँके माटी भरे, कौरी बैस कुम्हारि।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहारि ॥२७॥

निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवै वाक।
उर मानौं आबाद है, चित भ्रमै जिमि चाक ॥२८॥

बिरह अगिनि निसिदिन धवै, उठै चित्त चिनगारि।
बिरही जियहिं जराइ कै, करत लुहारि लुहारि ॥२९॥

राखत मो मन लोह-सम, पारि प्रेम घन टोरि।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोरि ॥३०॥

कलवारी रस प्रेम कों, नैननि भरि भरि लेति।
जोबन-मद माँती फिरै, छाती छुवन न देति ॥३१॥

नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देत।
मतवारे की मत हरै, जो चाहै सो लेत ॥३२॥

परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नेक न देइ ॥३३॥

गाहक सों हँसि बिहँसि कै, करत बोल अरु कौल।
पहिले आपुन मोल कहि, कहत दही को मोल ॥३४॥

काछिनि कछु न जानई, नैन बीच हित चित्त।
जोबन जल सींचति रहै, काम कियारी निच ॥३५॥

कुच भाटा गाजर अधर, मूरा से भुज पाइ।
बैठी लौकी बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥३६॥

हाथ लिये हत्या फिरै, जोबन गरब हुलास।
घरैं कसाइन रैन दिन, बिरही रकत पिपास ॥३७॥

नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सों टेइ ॥३८॥

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत।
सुरवा नेक चखाइ कै, हड़ी फारि सब देत ॥३९॥

अधर सुधर चख चीकनै, वै भरहैं तन गात।[१]
वाको परसो खात ही, बिरही नहिन अघात ॥४०॥

बेलन तिली सुवास कै, तेलिन करै फुलेल।
बिरही दृष्टि कियौ फिरै, ज्यों तेली को बैल ॥४१॥

कबहूँ मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात।
वाको करुओ बचन सुनि, मुख मीठो ह्वै जात ॥४२॥

पाटम्बर पटइन पहिरि, सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छाँड़ही, वा पटवा की हाट ॥४३॥

रस रेसम बेचत रहै, नैन सैन की सात।
फूँदी पर को फौंदना, करै कोटि जिय घात ॥४४॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात ॥४५॥

१—पाठ० अधर सुधर चख चीखने, दूमर हैं सब गात।

भटियारी उर मुँह करै, प्रेम पथिक को ठौर।
द्यौस दिखावै और की, रात दिखावै और ॥४६॥

करै गुमान कमाँगरी, भौंह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खैंचई, फिर कमान सी जाइ ॥४७॥

जोगति है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह अगिन में सेक ॥४८॥

हँसि हँसि मारै नैन सर, वारत जिय बहु पीर।
बोझा ह्वै उर जात है, तीरगरन को तीर ॥४९॥

प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख संकट पै काढ़िके, सुख सरेस में देत ॥५०॥

छीपिन छापों अधर को, सुरँग पीक भरि लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ ॥५१॥

मानों सूरत मैन की, धरै रंग सुर तंग।
नैन रँगीले होत हैं, देखत वाको रंग ॥५२॥

सकल अंग सिकलीगरनि, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकला फेरि ॥५३॥

अंजन चख चन्दन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग ॥५४॥

करै न काहू की सका, सक्किन जोबन रूप।
सदा सरस जल ते भरी, रहै चिबुक कै कूप ॥५५॥

सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम सर[1] फूट ।
लोक लाज उर धाकते, जात मसक सी छूट ॥५६॥

सुरँग बदन तन गाँधिनी, देखत दृग न अघाय ।
कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन न आय ॥५७॥

कामेश्वर नैननि धरैं, करत प्रेम की केलि ।
नैन माहिं चोवा भरे, ओरन माहि फुलेलि ॥५८॥

राज करत रजपूतनी, देस रूप के दीप ।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप ॥५९॥

सोभित मुख ऊपर धरैं, सदा सुरत मैदान ।
छूटी लटैं बँदूकची, भौहैं रूप कमान ॥६०॥

चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ ।
रस ही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि न जाइ ॥६१॥

सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार ।
प्रान इजारे लेत है, वाकी लाल इजार ॥६२॥

जोगिन जोग न जानई, परै प्रेम रस माहिं ।
डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छाँहि ॥६३॥

मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी विष बैन ।
मुदरा धारै अधर कै, मूँदि ध्यान सों नैन ॥६४॥

---

१ पाठ० रस

भाटिन भटकी प्रेम की, हट की रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरक सनेह॥६५॥

मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख लौन।
आपुन जोबन रूप की, अस्तुति करै न कौन॥६६॥

लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान॥६७॥

नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुनि जात हैं, सरबस लेइ रिझाइ॥६८॥

चेरी माँती मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक-भरी जँभुवाइ कै, भुज उठाय अँगराइ॥६९॥

रंग रंग राती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह॥७०॥

बाँस चढ़ी नट बंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन बैन[1] की सैन तें, कटत कटाछन साँस॥७१॥

अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध ले बरजोर।
चोरि चोरि मन लेत है, ठौर ठौर तन तोर॥७२॥

बोलन पै पिय मन बिमल, चितवति चित्त समाय।
निस बासर हिंदू तुरकि, कौतुक देखि लुभाय॥७३॥

---

१ पाठ० सैन

लटकि लेइ कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल ।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥७४॥

कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग ।
भाना भामैं भोरही, रहै घटा के संग ॥७५॥

नैननि भीतर नृत्य कै, सैन देत सतराय ।
छबि तै चित्त छुड़ावही, नट के भाइ दिखाय ॥७६॥

हरि गुन आवज केसवा, हिसा बाजत काम ।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम ॥७७॥

प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध परयो रस तान ।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान ॥७८॥

मिलत अंग सब माँगना[1], प्रथम माँन मन लेइ ।
घेरि घेरि उर राखही, फेरि फेरि नहिं[2] देइ ॥७९॥

बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह ।
फिर तन गेह न आवही, मन जु चेंदुवा लेह ॥८०॥

प्रान पूतरी पातुरी, पातुर कला निधान ।
सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रस बान ॥८१॥

उपजावै रस मे बिरस, बिरस माहि रस नेम ।
जो कीजे विपरीत रति, अतिहि बढ़ावत प्रेम ॥८२॥

१— पाठ अगना
२— " डर

कहै आन की आँन कछु, बिरह पीर तन ताप ।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप ॥८३॥

छुँकिहारी जौबन लिये, हाथ फिरै रस हेत ।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत ॥८४॥

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोक ।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोंक ॥८५॥

बिरह बिथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन ।
करत कोप बहु भाँत ही, धाइ मैन की सैन ॥८६॥

बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछू न ताहि ।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि ॥८७॥

वाहि ताहि के उर गड़ै, कुंदी बसन मलीन ।
निस दिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन ॥८८॥

जो वाके अँग संग मे, धरैं प्रीत की आस ।
वाको लागै महिमही, बसन बसेधी बास ॥८९॥

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन न कलंक ।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंक (ग) ॥९०॥

बिरह बिथा मन की हरैं, महा बिमल ह्वै जाइ ।
मन मलीन जो धोवई, वाकौ साबुन लाइ ॥९१॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपिन की उर सींव ।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नीव ॥९२॥

लटकि लेइ कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल ।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥७४॥

कंचन मे तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग ।
भाना भामैं भोरही, रहै घटा के संग ॥७५॥

नैननि भीतर नृत्य कै, सैन देत सतराय ।
छबि तें चित्त छुड़ावही, नट के भाइ दिखाय ॥७६॥

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम ।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम ॥७७॥

प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध परयो रस तान ।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान ॥७८॥

मिलत अंग सब माँगना[1], प्रथम मौन मन लेइ ।
घेरि घेरि उर राखही, फेरि फेरि नहिं[2] देइ ॥७९॥

बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह ।
फिर तन गेह न आवही, मन जु चैटुवा लेह ॥८०॥

प्रान पूतरी पातुरी, पातुर कला निधान ।
सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रस बान ॥८१॥

उपजावै रस मैं बिरस, बिरस माहिं रस नेम ।
जो कीजै विपरीत रति, अतिहि बढ़ावत प्रेम ॥८२॥

१— पाठ अगना
२— " उर

कहै आन की आँन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप ॥८३॥

छुँकिहारी जोबन लिये, हाथ फिरै रस हेत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत ॥८४॥

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोंक ॥८५॥

बिरह बिथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहु भांत ही, धाइ मैन की सैन ॥८६॥

बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछू न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि ॥८७॥

चाहि ताहि के उर गड़ै, कुंदी बसन मलीन।
निस दिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन ॥८८॥

जो वाके अँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महिमही, बसन चमेधी बास ॥८९॥

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन न कलंक।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंक (ग) ॥९०॥

बिरह बिथा मन की हरै, महा विमल ह्वै जाइ।
मन मलीन जो धोवई, वाकौ साबुन लाइ ॥९१॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपिन की उर सीव।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नीव ॥९२॥

करत बदन सुख सदन पै, घूँघट नेत्रन छाँह ।
नैननि मूँदे पग धरै, मोहन आरे माँह ॥९३॥

कुन्दन सी कुन्दीगरिन, कामिनि कठिन कठोर ।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर ॥९४॥

पगहि मोगरी सी रहै, पेम बज्र बहु खाइ ।
रँग रँग अंग अनंग के, करै बनाइ बनाइ ॥९५॥

धुनियाइन धुनि रैनि दिन, धरै सुरति की भाँति ।
वाकों राग न बूझही, कहा बजावै ताँति ॥९६॥

काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम हो जाइ ।
रोम रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ ॥९७॥

कोरिन कूर न जानई, पेम नेम के भाइ ।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत भजाइ ॥९८॥

बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम ।
जोबन पानी मुख धरै, खैंचे पिय के नैन ॥९९॥

जोबन दुनि[१] पिय दबगरिन, कहत पीय के पास ।
मो मन और न भावई, छाँडि तिहारी बास ॥१००॥

भरी कुपी कुच पीन की, कंचुक में न समाइ ।
नव सनेह असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ ॥१०१॥

---

१ पाठ० युत

घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि।
घर घर वाके रूप को, रह्यो नगारा बाजि ॥१०२॥

पहनै जो बिछुवा-खरी, पिय के सँग अँगरात।
रति पति की नौबत मनो, बाजत आधी रात ॥१०३॥

मन दल मलै दलालनी, रूप अंग के भाइ।
नैन मटकि मुख की चटकि, गाँहक रूप दिखाइ ॥१०४॥

लोक लाज कुल कॉनि तैं, नहीं सुनावति बोल।
नैननि सैननि मैं करै, बिरही जन को मोल ॥१०५॥

निस दिन रहै ठठेरनी, झाजे माजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात ॥१०६॥

आभूषन बसतर पहिरि, चितवत पिय मुख ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच, गडुवा ढार कठोर ॥१०७॥

कागद से तन कागदिन, रहै प्रेम के पाइ।
रीझी भीजी मैन जर्ल, कागद सी सिथलाइ ॥१०८॥

मानो कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।
सुरत दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास ॥१०९॥

देखन के मिस मसिकरिन, पुनि भर मसि खिन देत।
चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥११०॥

रूप जोति मुख पैं धरै, छिनक मलीन न होत।
कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोत ॥१११॥

बाजदारनी बाज पिय, करै नहीं तन साज।
बिरह पीर तन यौं रहै, पर झकिनी जिमि बाज ॥११२॥

नैन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सचान कों, अधर न चाखन देत ॥११३॥

जिलोदारनी अति जलद, बिरह अगिन कै तेज।
नाक न मोरे मेज पर, अति हाजर महि भेज ॥११४॥

औरन को घर सघन मन, चलै जु घूँघट माहिं।
वाके रंग सुरंग को, जिलोदार पर छाँहि ॥११५॥

सोभा अंग भँगेरनी, सोभित माल गुलाल।
पना पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल ॥११६॥

काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।
काहू की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत ॥११७॥

बाजीगरिन बजार मैं, खेलत बाजी प्रेम।
देखत बाको रस रसन, तजत नैन ब्रत नेम ॥११८॥

पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहै, एक परे मत खोइ ॥११९॥

चीतावानी देखि कै, बिरही रहे लुभाइ।
गाडी को चीतो मनो, चलै न अपने पाय ॥१२०॥

अपनी बैसि गरूर ते, गिनै न काहू मित्त।
लाक दिखावत ही हरै, चीता हू को चित्त ॥१२१॥

कठिहारी उर की कठिन, काठपूतरी आहि।
छिनक न पिय सँग ते टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि ॥१२२॥

करै न काहू को कह्यो, रहे किये हिय साथ।
बिरही को कोमल हियो, क्यों न होइ जिमि काठ ॥१२३॥

घासिनि थोरे दिनन-की, बैठी जोबन त्यागि।
थोरे ही बुझ जात है, घास जराई आगि ॥१२४॥

तन पर काहू ना गिनैं, अपने पिय के हेत।
हरवर बेड़ो बैस को, थोरे ही को देत ॥१२५॥

रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग।
ना जानै संजोग रस, ना जानै बैराग ॥१२६॥

अनमिल बतियाँ सब करै, नाहीं मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निस दिन वाके गेह ॥१२७॥

बिरही के उर मैं गड़ै, गड़िआरिन को नेह।
शिव बाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह ॥१२८॥

पैम पीर वाकी मनौ, कंटकहू न गड़ाइ।
गाड़ी पर बैठे नहीं, नैननि सों गड़ि जाइ ॥१२९॥

बैठी महत महावतिन, धरै जु आपुन अंग।
जोबन मद मैं गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग ॥१३०॥

पीत काँछि कंचुक तियन, बाला गहे कलाव।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताव ॥१३१॥

सरवानी विपरीत रस, किय चाहे न डराइ।
दुरै न बिरही को दुखौ,[१] ऊँट न छाग समाइ ॥१३२॥

जाहि ताहि को चित हरै, बाँधै पेम कटार।
चित आवत गहि खैंचई, भरि कै गहै मुहार ॥१३३॥

नालबंदिनी रैन दिन, रहै सखिन के नाल।
जोबन अंग तुरंग की, बाँधन देइ न नाल ॥१३४॥

चोली माँहि चुरावई, चिरवादारिन चित्त।
फेरत वाके गात पर, काम खरहरा नित्त ॥१३५॥

सारी निस पिय सँग रहै, प्रेम अंग आधीन।
मूठी माहि दिखावही, बिरही को कटि खीन ॥१३६॥

धोबिन लुबदी प्रेम की, ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर, लुगरा धरै लिलाट ॥१३७॥

सुरत अंग मुख मोर कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन देखे वा ओरि ॥१३८॥

चोरत चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज ॥१३९॥

जावै क्यों नहि नेम सब, होइ लाज कुल हानि।
जो वाके संग पौढ़ई, प्रेम अघोरी तानि ॥१४०॥

---

१ पाठ० बिरही को दुख्यो

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
याके अधर कपोल को, चुचौ परै जिमि रंग ॥१४१॥

परमलता सी लहलही, धरै पैम संयोग।
कर-गहि गरै लगाइयै, हरै विरह को रोग ॥१४२॥

बरवै नायिका भेद

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद ।
बिरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै रस कंद ॥१॥

मंगलाचरण—बंदौ देवि सरदवा, पद कर जोरि ।
बरनत काव्य बरैवा लगै न खोरि ॥२॥

उत्तमा— लखि अपराध पियरवा, नहि रिस कीन ।
बिहँसत चनन चउकिया, बैठक दीन ॥३॥

मध्यमा— बिनु गुन पिय उर हरवा, उपरयो हेरि ।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया, रहि मुखि फेरि ॥४॥

अधमा— बेरिहि बेरि गुमनवा[१] जनि करु नारि ।
मानिक औ गजमुकता, जौ लगि बारि ॥५॥

स्वकीया— रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय ।
चलत न पग पैजनियाँ, मग अहटाय[२] ॥६॥

मुग्धा— लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥७॥

लागे आन नवेलियहि, मनसिज बान ।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥८॥

---

१. पाठ० बार बार गुन मनवा,
२. पाठ० ठहराय

अज्ञात यौवना— कवन रोग दुहुँ छतिया, उपजे आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय[1] ॥९॥

ज्ञात यौवना— औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटिगा संग गोइयवाँ, नहिं भल कीन ॥१०॥

नवोढ़ा— पहिरति चूनि चुनरिया, भूषन भाव।
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव ॥११॥

विश्रब्ध नवोढ़ा— जंघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुवन न पावै पियवा, कहुँ कुच कोर ॥१२॥

मध्यमा— ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसकाय ॥१३॥

प्रौढ़ा रतिप्रीता— भोरहिं बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।
घरी एक घरि अलिया,[2] रहु चुप चाप ॥१४॥

परकीया— सुनि सुनि[3] कान मुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़त गोरिया, गनत न खेद ॥१५॥

ऊढ़ा— निस दिन सासु ननदिया, मोहि घर घेर[4]।
सुनत न देत मुरलिया, मधुरी[5] टेर ॥१६॥

---

१ पाठ० जाय
२ " अथवा घरि घरि एक घरि अलक
३. " सुनि
४. " ह
५. " मधुर

अनूढा— मोहिं बर जोग कन्हैया, लागौं पाँय।
तुहुँ कुल पूज देवतवा[1], होउ सहाय॥१७॥

भूत सुरति संगोपना— चूनत फूल गुलबवा, डार कटील।
टुटिगो बंद अँगियवा, फट पट नील॥१८॥

अब नहिं तोहिं पढ़ावौं[2], सुगना सार।
परिगो दाग अधरवा, चोंच चोटार॥१९॥

वर्तमान सुरतिगोपना— मैं पठयेउँ जिहि कमवाँ, आयेस साघ।
छुटिगो सीस को जुरवा, कसि के बाँध॥२०॥

मुहि तोंहि हरबर आवत, भा पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद॥२१॥

भविष्य सुरति गोपना— होइ कत कारि बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहो घन अमरैया, सुगना[3] साथ॥२२॥

जैहौं चुनन कुसमियाँ, खेत बड़ दूर।
नउआ[4] केर छोहरिया, मोहि सँग कूर॥२३॥

क्रिया विदग्धा— बाहिर लैके दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देत बुझाय॥२४॥

---

१. पाठ० तुमको पूजउँ देवतवा
२. " आयेसि कवनेउ ओरवा
३. " संग न
४. " बारिआ

वचन विदग्धा— थोरेसि[१] नाक नथुनियाँ, मित हित नीक ।
कहति नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥२५॥

लक्षिता— आज नयन के कोरवा,[२] औरै भाँति ।
नागर नेह नवेलिया, मूँदि न[३] जात ॥२६॥

अन्य सुरति दुखिता— बालम अस मन मिलियउँ, जस पय पानि ।
हन्सिन भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥२७॥

प्रेमगर्विता— आपुहि देत कजरवा,[४] गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रान अधार ॥२८॥

आकरन पाय जवकका, नाइन दीन ।
मुहि पग आगर गोरिया, आनन कीन[५] ॥२९॥

रूप गर्विता— खीन मलिन बिखभैया औगुन तीन ।
मोहिँ कहत बिधु-बदनी, पिय मति हीन[६] ॥३०॥

रातुल भयेसि सुगउवा,[६] निरस पखान ।
यह मधु भरल अधरवा, करसि गुमान ॥३१॥

द्वितीय अनुसयाना—

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग ।
जात जहाँ पिय देसवा बन बन बाग ॥३२॥

---

१. पाठ० तनिक
२. " कजरा
३. " मुदिने
४ " जवकया
५ " तुम्हें अगोरत गोरिया न्हान न कीन ॥
पिउ कह चन्द बदनियाँ हिय मति हीन ॥

जनि मरु रोय दुलहिया कर मन ऊन ।
सघन कुंज ससुररिया औ घर सून ॥३३॥

प्रथम अनुसयाना, भावी संकेत नष्टा—

जमुना तीर तरुनिअहिँ लखि भो सूल ।
झरि गो रूख बेइलिया, फूलत न फूल ॥३४॥

ग्रीषम दवत दवरिया, कुंज कुटीर ।
तिमि तिमि तकत तरुनि-अहिँ, बाढ़ी पीर ॥३५॥

तृतीय अनुसयाना, रमणागमना—

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात ।
फिरि फिरि तकत तरुनियाँ, मन पछतात ॥३६॥

मित उत तें फिरि आयेउ, देखु न राम ।
मैं न गई अमरैया, लहेउ न काम ॥३७॥

मुदिता—

नेवते गइल ननदिया, मैके सासु ।
दुलहिन तोर खबरिया, आवै आसु ॥३८॥

जैहौं काल नेवतवा भो दुख दून ।
गाँव करेसि रखवरिया, सब घर सून ॥३९॥

कुलटा—

जस मद मातल हथिया, हुमकत जाय ।
चितवति जात तरुनियाँ, मन मुसकाय ॥४०॥

चितवति ऊँच अटरिया, दहिने बाम ।
लाखन लखत बिछियवा, लाखि सकाम ॥४१॥

सामान्या गणिका—लखि लखि धनिक नयकवा, बनवत भेष ।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख ॥४२॥

मुग्धा प्रोषितपतिका-कासों कहों सँदेसवा पिय परदेस ।
लागेहु चइत न फूले तेहि बन टेसु ॥४३॥

मध्या प्रोषित पतिका— का तुम जुगुल तिरियवा, झगरति आय ।
पिउ बिन मनहुँ अटरिया, मुहि न सुहाय ॥४४॥

प्रौढ़ा प्रोषित पतिका— तैं अब जासि बेइलिया, बरु जरि मूल ।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुअ फूल ॥४५॥

या झर में घर घर में, मदन हिलोर ।
पिय नहिं अपने कर में, करमै खोर ॥४६॥

मुग्धा खंडिता— सखि सिख मान नवेलिया, कीन्हेसि मान ।
पिय लखि कोप भवनवा, ठानेसि ठान ॥४७॥

सीस नवाय नवेलिया, निचवइ जोय ।
छिति खनि छोर छिगुनिया, सुसुकति रोय ॥४८॥

मध्या खण्डिता— गिरि गइ पीय पगरिया, आलस पाइ ।
पवढहु जाइ बरोठवा, सेज उसाइ ॥४९॥

पोछहु अधर कजरवा, जावक भाल ।
उपजेउ पीतम छतिया, बिन गुन माल ॥५०॥

प्रौढ़ा खण्डिता— पिय आवत अंगनैया, उठिकै लीन ।
बिहँसत चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥५१॥

पवढ़हु पीय पलँगिया मीजहुँ पाय ।
रैन जगे कर निंदिया, सब मिटि जाय ॥५२॥

परकीया खंडिता— जेहि लगि सजन सनेहिया, छुटि घर बार ।
आपन हित परिवरवा, सोच परार ॥५३॥

गणिका खंडिता— मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।
लियेसि काढ़ि बइरिनिया, तकि मनिमाल ॥५४॥

मुग्धा कलहांतरिता— आयेहु अबहिं गवनवा, जुरते मान ।
अब रस लागिहि, गोरिअहिं मन पछतान ॥५५॥

मध्या कलहांतरिता— मैं मतिमंद तिरियवा, परिलिउँ भोर ।
तेहि नहिँ कन्त मनउलिउँ, तेहि कछु खोर ॥५६॥

प्रौढ़ा कलहांतरिता— थकिगा करि मनुहरिया, फिरिगा पीय ।
मैं उठि तुरति न लायेउँ, हिमकर हीय ॥५७॥

परकीया कलहांतरिता— जेहि लगि कीन बिरोधवा, ननद जिठानी ।
रखिउँ न जाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥५८॥

गणिका कलहांतरिता— जिहिं दीन्हें बहु बेरिया मोंहि मनि माल
तेहि से रूठिऊँ सखिया, फिर गौ लाल ।

५—विप्रलब्धा

मुग्धा विप्रलब्धा— मिलेउ[2] न कंत सहेटवा लखेउ डेराइ ।
धनियाँ कमल बदनिया गइ कुँमिलाई ।

1. पाठ० लखे न
2. " फिरि दुखराय ।

मध्या विप्रलब्धा— देखि न केलि भवनवाँ नंदकुमार ।
लै लै ऊँचि उससवा, भइ बिकरार ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा— देखि न कंत सहेटवा मा दुख पूरि ।
रोवत[1] नैन कजरवा होइ गौ[2] दूरि ।

परकीया विप्रलब्धा— बैरिनि मँह[3] अभिसरवा, अति दुखिदानि ।
प्रातउ[4] मिलेउ न मितवा मो पछितानि ॥

गणिका विप्रलब्धा— करिकै सोरह सिँगरवा अतर लगाइ ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछताइ ॥

५—उत्कंठिता

मुग्धा उत्कंठिता— गौ[5] युग जाम जमिनि भा पिय नहिं आइ ।
राखेहु कौन सवतिया गौ[6] बिलमाइ ॥

मध्या उत्कंठिता— जोहत परी पलकिया[7] पिउ की बाट[8] ।
बँचेउ चतुर तिरियवा केहि के हाट[9] ॥

---

१. पाठ० भौ तन
२. ” भै गा म्रूर
३. ” भा
४. ” तापर
५. ” भा
६. ” रहि, रहु
७. ” अगनवा, पलँगिया
८. ” पिय को मार ।
९. ” केहि के हार ॥

प्रौढ़ा उत्कंठिता— पिय पथ हेरति गोरिया भा भिनसार।
चलहु न करिय तिरियवा तुव इतबार॥

परकीया उत्कंठिता— उठ उठ जात खिरिकिया जोहत[१] बाट।
कत वह आइहि मितवा सूनी खाट[२]॥

गणिका उत्कंठिता— कठिन[३] नींद भिनुसरवा आलस पाइ।
धन दै मूरख मितवा रहल लोभाइ॥

६ वासक सज्जा

मुग्धा वासक सज्जा— हरुए गवन नवेलिआ दीठि बचाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया सेज बिछाइ॥

मध्या वासक सज्जा— सुभग[४] बिछाइ पलँगिया अंग सिँगार।
चितवत चौंकि तरुनिया, दै दिग द्वार[५]॥

प्रौढ़ावासक सज्जा— हँसि हँसि[६] हेरि[७] अरसिआ, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नवेलिआ तिय कै बार॥

परकीया वासक सज्जा— सोवत सब गुरु लोगवा जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिया, उठिकै हाल॥

१ पाठ० जोहन
२ " कतहु न आवत मितवा सुनि सुनि खाट।
३ " कहि न
४ " सेज
५ " चौंकत चितै तरुनिआ, बहु कै बार॥
६ " पिय।
७ " हरि।

गणिका वासक सज्जा— कीन्हेसि सबै सिँगरवा चातुर बाल ।
ऐहै प्रान पियरवा जो मनि माल ॥

७ स्वाधीन पतिका—

मुग्धा स्वाधीन पतिका— आपुहि देत जवकवा गहि गहि पाँय ।
आपु देत मोहिं पियवा पान खवाय ॥

मध्या स्वाधीन पतिका— पीतम करत पियरवा कहल न जात ।
रहत गढ़ावत सोनवा इहै सिरात ॥

प्रौढ़ा स्वाधीन पतिका— मैं अरु मोर पियरवा जस जल मीन ।
बिछुरत तजत परनवाँ रहत अधीन ॥

स्कीया स्वाधीन पतिका— मो जुग नयन चकोरवा पिय-मुख चंद ।
जानत है तिय अपुने मोहि सुख कंद ॥

गणिका स्वाधीन पतिका— लै हीरन के हरवा मानिक माल[१] ।
मोहिं रहत पहिरावत बस ह्वै लाल ॥

अभिसारिका—

मुग्धाभिसारिका— चली लिवाइ नवेलिअहिं, सखि सब संग ।
जस हुलसत गो गोदवा मत्त मतंग ॥

मध्याभिसारिका— पहिरे लाल अछुअवा, तिय गज पाय ।
चढ़े नेह हथि अवहा, हुलसत जाय ॥

प्रौढ़ाभिसारिका— चली रैनि अँधियरिया साहस गाढ़ि ।
पायन केर कँगनिया डारेस काढ़ि ॥

१ पाठ० मोतिन ।

परकीयाकृष्णाभिसारिका—नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रइनि अँधिअरिआ धनि अभिसार॥

परकीया शुक्लाभिसारिका—सेत कुसुम कै हरवा भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिआ पिउ के हेत॥

दिवाभिसारिका— पहिरि बसन जरतरिआ पिअ के हेत।
चली जेठ दुपहरिआ मिलि रबि जोत॥

गणिकाभिसारिका— धन हित कीन्ह सिंगरवा चातुर बाल।
चली संग लै चेरिआ, जहँवा लाल॥

६ प्रवत्स्यत्प्रेयसी—

मुग्धाप्रवत्स्यत्प्रेयसी— परि गौ कानन सखिया पिय के गौन।
बैठी कनक पँलगिया, ह्वैइकै मौन॥

मध्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी— सुठि सुकुमार तरुनिया सुनि पिय-गौन।
लाजनि पौढ़ि ओबरिया, ह्वै कै मौन॥

प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्प्रेयसी— बन घन फूलहि टेसुआ,[१] बगिअनि बेलि।
चलेउ बिदेस पियरवा, फागुन फैलि[२]॥

परकीया प्रवत्स्यत्प्रेयसी—मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
पिय को सुरत गगरिया, रहि मग लागि॥

गणिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी—पीतम इक सुमिरिनियाँ, मोंहि देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करौं निबाहु॥

---

१ पाठ० फगुआ केलि।
२ " पौरि

आगत पतिका—

मुग्धा आगतपतिका— बहुत दिवस पै पियवा आएहु आज।
पुलकित नवल दुलहिया कर गृह काज॥

मध्या आगतपतिका— पियवा आय[1] दुअरवा उठि किन देख।
दुरलभ पाइ बिदेसिया जिय के लेख[2]॥

प्रौढ़ा आगतपतिका— जोबन[3] आन पिअरवा हेरेउ आइ[4]।
तलफत मीन तिरिअवा जस जल पाइ॥

परकीया आगतपतिका—पूछत चली खबरिया, मितवा तीर।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर॥

गणिका आगतपतिका—तौं लगि मिटै न मितवा तनकी पीर।
जौ लगि पहिरि न हरवा, जटिल सुहीर॥

त्रिविध नायिका

उत्तमा— लखि अपराध नयकवा[5] नहिं रिस कीन्ह।
बिहँसत चँदन चउकिया बैठन दीन्ह॥

मध्यमा— बिन गुन पिय उर हरवा उपरेउ हेरि।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया रहि चख फेरि॥

---

१ पाठ० फूलि टेसुइया
२ " सुद अवरेख
३ " पावन,
४ " आवत सुनत तिरिअवा उठि हरषाइ।
५ " पिअरवा

अबला— बार बार गुन मनवा, जनि करु नारि।
मानिक औ गज मोतिया जो लगि बारि॥

सखी के काम

मण्डन— सखियन कीन्ह सिंगरवा रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया मुहु मुसुकाति॥

शिक्षा— थके बैठि गोड़वरिया मींजहु पाँउ।[१]
पिय तन पेखि गरमिया बिजन डोलाउ॥

उपालंभ— चुप ह्वै रहयो संदेसवा सुनि मुसुकाय।
पिय निज कर बिछुवनवा दीन्ह पठाय॥[२]

परिहास— बिहँसत भौंह चढ़ाए धनुष मनोज[३]।
लावत उर उबटनवा ऐंठि उरोज॥[४]

दर्शन

साक्षात दर्शन—बिरहिन और बिदेसिया भौ एक ठौर।
पिय मुख हेरि[५] तिरियवा चन्द्र चकोर॥

चित्र दर्शन— पिय मूरति चितसरिया देखत बाल।
बितवत औध बरसवा जपि जपि माल॥

---

१. पाठ० छाकटु बढि दुआरिया मीजहु पाँय।
२. " पिय निज हाथ बिछवना दीन्ह पठाय॥
३. " मनीय
४. " लावत उर अबलनिया उठि उठि पीय॥
५. " तकत

श्रवण दर्शन—	आयउ मीत बिदेसिया सुनु सखि तोर ।
	उठि किन करसि सिंगरवा सुनि सिख मोर ॥
स्वप्न दर्शन—	पीतम मिलेउ सपनवाँ, भौ सुख खानि ।
	आनि जगायसि चेरिआ भइ दुख दानि ॥
नायक—	सुन्दर चतुर धनिकवा कुल को ऊँच ।
	केलि कला परबिनवाँ सील समूच ॥
	पति उपपति बैसिकवा त्रिबिध बखान ।
	बिधि सो व्याहो गुरु जन पति सो जान ॥
पति—	लै के सुघर पुरुषवा पिअ के साथ ।
	छपरो एक छतरिया बरखत पाथ ॥
चतुर्विध पति—	करत नहीं[1] अपरधवा सपनेहुँ पीउ ।
अनुकूल—	मान करन की बेरियाँ[2] रहि गइ हीउ[3] ।
दक्षिण—	सब मिलि करैं[4] निहोरवा हम कहँ देइ[5] ।
	गुहि गुहि चंपक टेड़िआ उचइ सो लेइ[6] ।
धृष्ट—	जहवाँ जगे[7] रइनियाँ तहँवा जाहु ।
	जोरि नयन निरलजवा कत मुसकाउ ॥

---

१ पाठ० न हिय ।
२ " सधना ।
३ " जीव ।
४ " देह ।
५ " चुन चुन चंपक चुरिया उच से लेहु ॥
६ " सौतिन करैं—
७ " जाव ।

शठ— छूटेउ लाज[1] गरियवा औ कुल कानि।
करत जात[2] अपरधवा परि गइ बानि॥

दृष्पति— झाँकि झरोखे गोरिया अँखियन जोरि।
फिर चितवति चित मितवा करत निहोरि॥

वैसिक— लटकी नील झुलुफिया बनसी भाइ।
मो मन बार बधुइया मीन बझाइ॥

चतुर्विध नायक—

क्रिया चतुर— खेलत जानेसि टोलि आ[3] नंदकिसोर।
छुइ बृषभान कुमरिआ भैगा चोर॥

वचन चतुर— सघन कुंज अमरैआ सीतल छाँहि।
झगरत आइ कोइलिया फिर उड़ि जाँहि।

मानी— अब न जनम भर सखिआ ताकौं ओहि[4]।
ऐंठत गो अभिमनवाँ तजि के मोहिं।

प्रोषित— करिबै ऊँचि अटरिया तिय संग केलि।
कब धौं पहिरि गजरवा हार चमेलि॥

इति नायिका भेद

१ पाठ० डगरिया।
२ „ रोज।
३ „ रोझिआ।
४ „ अब भरि जनम सहेलिया तकब न ओहि।

बरवै

बन्दौं विघन-बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि-सीस ॥१॥

सुमिरौं मन दृढ़ करिकै, नन्द कुमार ।
जो वृषभान-कुँवरि कै, प्रान-अधार ॥२॥

भजहु चराचर-नायक, सूरज देव ।
दीन जनन-सुखदायक, तारन एव[1] ॥३॥

ध्यावौं सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि-सीस ॥४॥

ध्यावौं बिपद-बिदारन, सुवन समीर ।
खल-दानव-बन-जारन, प्रिय रघुबीर ॥५॥

पुन पुन बन्दौं गुरु के, पद-जलजात ।
जिहि प्रताप तैं मनके, तिमिर बिलात ॥६॥

करत घुमड़ि घन-घुरवा, मुरवा सोर ।
लगि रह विकसि अकुँरवा, नन्दकिसोर ॥७॥

बरसत मेघ चहूँ दिसि, मूसरा धार ।
सावन आवन कीजत, नन्दकुमार ॥८॥

अजौं न आये सुधि कै, सखि घनश्याम ।
राख लिये कहुँ बसिकै, काहू बाम ॥९॥

---

१. पाठ० ग्यारह येव

कबलौं रहि है सजनी, मन मैं धीर।
सावन हूँ नहिं आवन, कित बलबीर ॥१०॥

घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन-तीज ॥११॥

पीव पीव कहि चातक, सठ अहरात।[१]
करत बिरहनी तिय के, हिय उतपात ॥१२॥

सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान ॥१३॥

मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय।
तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय ॥१४॥

बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाव।
मनमोहन तैं मिलबौ, सखि कहँ दाँव ॥१५॥

मनमोहन बिन देखे, दिन न सुहाय।
गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय ॥१६॥

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े, दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन, करत पयान ॥१७॥

समुझति सुमुखि सयानी, बादर झूम।
बिरहिन के हिय भमकत, तिनकी धूम ॥१८॥

१ पा० अधरात

उलहे नये अँकुरवा, बिन बलवीर।
मानहु मदन महिप के, बिन पर तीर ॥१९॥

सुगमहि गातहि गारन, जारन देह।
अगम महा अति पारन, सुघर सनेह ॥२०॥

मनमोहन तुव मूरति, बेरिझबार।
बिन पियान मुहि बनिहै, सकल बिचार ॥२१॥

झूमि-झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरसत देह ॥२२॥

झूँठी झूँठी सौंहें, हरि नित खात।
फिर जब मिलत मरू के, उतर बतात ॥२३॥

डोलत त्रिबिध मरुतवा, सुखद सुढार।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥२४॥

कहियो पथिक सँदेसवा, गहि के पाय।
मोहन तुम बिन तनिकहु, रह्यो न जाय ॥२५॥

जबते आयौ सजनी, मास असाढ़।
जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ॥२६॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
आये नन्द दिठनवा,[1] लगत असाढ़ ॥२७॥

१—पाठ० ढोटनवा

वेद पुरान बखानत, अधम उधार।
केहि कारन करुनानिधि, करत बिचार ॥२८॥

लगत असाढ़ कहत हो, चलन किसोर।
घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर ॥२९॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यौ अबलनि पै, धनुष सुरेस ॥३०॥

बिरह बढ़्यौ सखि अंगन, बढ्यौ चवाव।
कर्‌यो निठुर नँदनन्दन, कौन कुदाव ॥३१॥

भज्यो कितौ न जनम भरि, कितनी जाग।
संग रहत या तन की, छाँही भाग ॥३२॥

भज रे मन नँदनन्दन, बिपति बिदार।
गोपी-जन-मन-रंजन, परम उदार ॥३३॥

जदपि बसत हैं सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चित को, सुख संजोग ॥३४॥

जदपि भई जल पूरित, छितब सुआस।
स्वाति बूँद बिन चातक, मरत-पियास ॥३५॥

देखन ही को निसदिन, तरफत देह।
यही होत मधुसूदन, पूरन नेह! ॥३६॥

कब तें देखत सजनी, बरसत मेह।
गनत न चढ़े अटन पै, सने सनेह ॥३७॥

बिरह बिथा तें लखियत, मरिबौं झूरि ।
जो नहिं मिलिहै मोहन, जीवन मूरि ॥३८॥

ऊधौ भलौ न कहनौ, कछु पर पूठि ।
साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि ॥३९॥

भादों निस अँधियरिया, घर अँधियार ।
बिसर्‌यो सुघर बटोही, शिव आगार ॥४०॥

हौं लखिहौं री सजनी, चौथ मयंक ।
देखों केहि बिधि हरि सों, लगत कलंक ॥४१॥

इन बातन कछु होत न, कहो हजार ।
सबही तैं हँसि बोलत, नन्दकुमार ॥४२॥

कहा छलत हो ऊधौ, दै परतीति ।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहनि-मीति ॥४३॥

बन उपवन गिरि सरिता, जिती कठोर ।
लगत देह से बिछुरे, नन्द किसोर ॥४४॥

भलि भलि दरसन दीनहु, सब निसि टारि ।
कैसे आवन कीनेहु, हौं बलिहारि ॥४५॥

आदिहि-ते सब छुटगो, जग व्यौहार ।
ऊधो अब न तिनौं भरि, रही उधार ॥४६॥

घेर रह्यौ दिन रतियाँ, बिरह बलाय ।
मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय ! ॥४७॥

नर नारी मतवारी, अचरज नाहिं ।
होत विटपहू नागौ, फागुन माहिं ॥४८॥

सहज हँसोई बातैं, होत चवाइ ।
मोहन कों तन सजनी, दै समुझाइ ॥४९॥

ज्यों चौरासी लख में, मानुष देह ।
त्योंही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥५०॥

मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय ।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ॥५१॥

अति अद्‌भुत छबि-सागर, मोहन-गात ।
देखत ही सखि बूड़त, दृग-जलजात ॥५२॥

निरमोही अति झूठौ, साँवर गात ।
चुभ्यौ रहत चित कौधौं, जानि न जात ॥५३॥

बिन देखें कल नाहिन, यह अखियाँन ।
पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥५४॥

जब तब मोहन झूठी, सौंहें खात ।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥५५॥

ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन प्रान ।
ऊधो यह संदेसवा, अकह कहान ॥५६॥

मोहि मीत बिन देखें, छिन न सुहात ।
पल पल भरि भरि उमलत, दृग जल जात[१] ॥५७॥

---

१. पाठ० जलजात ।

जब तें बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्यौ हिय साँसन, आँसुन नैन ॥५८॥

कैसे आवत कोऊ, दूरि बसाय।
पल अन्तरहू सजनी, रह्यो न जाय ॥५९॥

जान कहत हो ऊधौ, अवधि बताइ।
अवधि अवधि-लौं दुस्तर, परत लखाइ ॥६०॥

मिलनि न बनि है भाखत, इन इक टूक॥
भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक ॥६१॥

गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
तबते लगनि अगनि की, उठत भबूक ॥६२॥

मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन ॥६३॥

होरी पूजत सजनी, जुर नर नारि।
हरि-बिन जानहु जिय में, दई दवारि ॥६४॥

दिस बिदसान करत ज्यों, कोयल कूक।
चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक ॥६५॥

जबते मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं।
रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहिं ॥६६॥

उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।
जब ते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार ॥६७॥

जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस ।
हरि न मिलत बसि नेरे, यह अफ़सोस ॥६८॥

चतुर मया करि मिलिहौं, तुरतहिं आय ।
बिन देखे निस बासर, तरफ़त जाय ॥६९॥

तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात ।
होरी से त्यौहारन, पीहर जात ॥७०॥

और कहा हरि कहिये, धनि यह नेह ।
देखन ही को निसदिन, तरफ़त देह ॥७१॥

जब तें बिछुरे मोहन, भूख न प्यास ।
बेरि बेरि बढ़ि आवत बड़े उसास ॥७२॥

अन्तरगत हिय बेधत, छेदत प्रान ।
विष सम परम सबन तें, लोचन बान ॥७३॥

गली अँधेरी मिल कै, रहि चुपचाप ।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप ॥७४॥

सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय ।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय ॥७५॥

उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज ।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि बृजराज ॥७६॥

जिहिके लिये जगत में, बजे निसान ।
तिहिं-ते करे अबोलन, कौन सयान ॥७७॥

रे मन भज निस बासर, श्री बलबीर।
जो बिन जाँचे टारत, जन की पीर ॥७८॥

बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय ॥७९॥

सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर ॥८०॥

लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥८१॥

कोटि जतनहु फिरत न, बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि, बिमुख बसात ॥८२॥

देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामन बेचत, मैदा साह ॥८३॥

कहा कान्ह ते कहनौ, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि ॥८४॥

तैं चंचल चित हरि कौ, लियौ चुराइ।
याहीं तैं दुचती सी, परत लखाइ ॥८५॥

मी गुज़रद ईं दिलरा, बे दिलदार।
इक इक साअत हमचूँ, साल हज़ार ॥८६॥

नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोक सु, अचरज कौन ॥८७॥

समुझि मधुप कोकिल की, यह रस रीति ।
सुनहु श्याम की सजनी, का परतीति ॥८८॥

नृप जोगी सब जानत, होत बयार ।
संदेसन तौ राखत, हरि ब्यौहार ॥८९॥

मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन ।
दरसन ही कों तरफत, ये दृग मीन ॥९०॥

भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस ।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस ॥९१॥

भजि नरहरि नारायन, तजि बकवाद ।
प्रगटि खंभ ते राख्यो, जिन प्रहलाद ॥९२॥

गोरज धन-बिच राखत, श्री ब्रजचन्द ।
तिय दामिनि जिमि हेरत, प्रभा अमन्द ॥९३॥

ग़र्क़ अज मैं शुद आलम, चन्द हज़ार ।
बे दिलदार के गीरद, दिलम क़रार ॥९४॥

दिलबर ज़द बर जिगरम, तीर निगाह ।
तपीदा जाँ मी आयद, हरदम आह ॥९५॥

कै गोयम अहवालम, पेश निगार ।
तनहा नज़र न आयद, दिल लाचार ॥९६॥

लोग लुगाई हिलमिल, खेलत फाग ।
पर्यो उड़ावन मोकों, सब दिन काग ॥९७॥

मो जिय कोरी सिगरी, ननद जिठानि ।
भई स्याम सों तब तें, तनक पिछानि ॥९८॥

होत विकल अनलेखे, सुघर कहाय ।
को सुख पावत सजनी, नेह लगाय ॥९९॥

अहो सुधाधर प्यारे, नेह निचोर ।
देखन ही कों तरसे, नैन चकोर ॥१००॥

आँखिन देखत सबही, कहत सुधारि ।
पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि ॥१०१॥

पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव ।
पैया परों ननदिया, फेरि कहाव ॥१०२॥

या झर में घर घर में, मदन हिलोर ।
पिय नहिं अपने कर में, करमैं खोर ॥१०३॥

बालम अस मन मिलयउँ, जस पय पानि ।
हंसनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥१०४॥

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय ।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥१०५॥

बरि गइ हाथ उपरिया रहि गई आगि ।
घर कै बाट बिसरि गइ, गुहनै लागि ॥१०६॥

अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार ।
समलहु दिय दुति मनसिज, मल करतार ॥१०७॥

जलज बदन पर थिर अलि, अनलन रूप ।
लीन हार हिय कमलहि, उलत अनूप ॥१०८॥
ओठ की चवन केवरिया, जोहौं बाट ।
उड़िगे सोन चिरैया, पिंजर हाथ ॥१०९॥

प्रास

' तत्र विचित्रता तरुजतां, मैं था गया बाग में ।
ात् तत्र कुरंगशावनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
भ्रूधनुषा कटाक्ष विशिखैः, घायल किया था मुझे ।
ादामि सदैव मोह जलधौ, हे दिल गुजारो गुजर ॥१॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चलन वाला चाँदनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला ।
अलि बनि अलबेला यार मेरा अकेला ॥२॥

अकल कुटिलकारी देख दिलदार जुल्फैं ।
अलि कलित निहारैं आपने दिल की कुल्फैं ॥
सकल शशि-कला को रोशनी हीन लेखौं ।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं ॥३॥

वहति मरुति मन्दम् मैं उठी रात जागी ।
शशिकर कर लागे सेज को छोड़ भागी ॥
अहह विगत स्वामी मैं करूँ क्या अकेली ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥४॥

छवि चकित छबीली छैलरा की छड़ी थी ।
मणि जटित रसीली माधुरी सुन्दरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा ।
कहि सकत न जैसा कान्ह का हस्त देखा ॥५॥

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
सुत पति गति निद्रा स्वामियाँ छोड़ भागी।
मदन शिर सिभूयः क्या बला आन लागी॥६॥

हर नयन हुताशन ज्वालया असिम भूत।
रति नयन जलौघे, खाक बाकी बहाया॥
तदपि दहति चित्तं मामकम् क्या करौंगी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥७॥

हिम रितु रति धामा सेज लौटौं अकेली।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौंरी सहेली॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥८॥

मनसि मम नितान्तम् आयकैं वासु कीया ।
तन धन सब मेरा मानतैं छीन लीया ॥
अति चतुर मृगाची देखतैं मौन भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥१॥

वहति मरुत मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशिकर कर लागें सेल ते पैन बागी ॥[१]
अहह विगत स्वामी क्या करौं मैं अभागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥२॥

हर नयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया ।
रति नयन जलौघै खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तम् मामकम् क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥३॥

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियाँ छोड़ भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥४॥

हिम ऋतु रति धामा सेज लोटौं अकेली ।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौं री सहेली ॥
चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥५॥

---

१. पाठ० शशिकर कर लागे सेज को छोड़ भागी ॥

कमल मुकुल मध्ये राति को ए सयानी ।
लखि मधुकर बंधम् तू भई री दिवानी ॥
तदुपरि मधु काले कोकिला देखि भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥६॥

तव बदन मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी ।
मुख छवि लखि भू पै चाँद ते कांति गाढ़ी ॥
मदन मथित रंभा देखतै मोहि लागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥७॥

नभसि घन घनान्ते है घनी कैसि छाया ।
पथिक जन बधूनाम् जन्म केता गँवाया ।
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥८॥



हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित

शरद निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी॥
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥१॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥२॥

दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा॥३॥

कठिन कुटिलकारी देख दिलदार जुलफैं।
अलि कलित बिहारी[१] आपने दिल की कुलफैं॥
सकल शशि कला को रोशनी हीन लेखौं।
अहह! ब्रज लला को किस तरह फेर देखौं॥४॥

जरद बसन वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥५॥

---

१ पाठ० निहार।

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं ।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं ॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं ।
विलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आखैं ॥६॥

भुजग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं ॥
नटवर ! तव मोहैं बाकुरी मान भौंहैं ॥
सुनु सखि ! मृदु बानी बेदुरुस्ती अकिल में ।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में ॥७॥

पकरि परम प्यारे सांवरे को मिलाओ ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ ॥
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥८॥



अति अनियारे मनो सान दै सुधारे ,
महा विष के विषारे ये करत परघात हैं ।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै ,
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं ॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये ,
तोहू तो 'रहीम' थोरे बिधि ना सकात हैं ।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित ,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं ॥१॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन ,
चाहत है धन जेती संपदा सराहबी ।
तेरोई कहाय के 'रहीम' कहे दीनबन्धु ,
आपनी विपत्ति जाय काके द्वार काहिबी ॥
पेट भर खायो चाहे उद्यम बनायो चाहे ,
कुटुम जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबी ।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो ,
ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहा साहिबी ॥२॥

बड़ेन सों जान पहिचान कै 'रहीम' काह ,
जो पै करतार ही न सुख देनहार है ।
सीतहर सूरज सों नेह कियो याही हेत ,
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है ॥

छीर निधि[1] माँहि धँस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।
बड़ो रिझवार है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है[2] ॥३॥

सुनिये बिटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजि हौ हरष तौ बिरष है न यारो कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनी छबि पाइहैं।
सुरन चढ़ेंगे सुर-नरन चढ़ेंगे हम,
सुकवि 'रहीम' हाथ हाथ ही बिकाइहैं।
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे
काहू भेष में रहेंगे पै रावरे कहाइहैं ॥४॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइबे।

---

१. पाठ० नीरनिधि।
२. पाठ० बड़ेन सों जान पहिचान तो कहा 'रहीम'
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीतहर सूरज सों प्रीति करी पंकज ने,
तऊ कंज बनन को मारत तुषार है॥
उदधि के बीच बस्यो, शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि मैं सदा रहै।
बड़ो रीझिवार है चकोर दरबार देख्यो,
सुधाधर यार ए पै चुँगत अँगार है॥

तन मन रावरे सों मतों के मगन होतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये ॥
चित लाग्यो जित जैये तितही 'रहीम' नित,
धायबे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर
में, सो प्रीत बसी तऊ हँसी न कराइये ॥५॥

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन कों लखि के ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो ॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥६॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताहि समै सु निकारि पिता बन बास दिया ॥
कहे बीच 'रहीम' रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो उन[1] हार हिया।
बिधि सों नसिया रसबार सिया कर बार सिया पिय सार सिया[2] ॥७॥[3]

दीन चहै करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरै नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे ॥

---

१ पाठ० बिलु।
२ पाठ० सार सिया।
३ पाठ० जिहि कारन बार न लायो कछू गहि संभु सरासन द्वैजु किया।
न हुतो समयो बनवासहु को पैनिकास पिता बनवास दिया ॥
भजि भेद 'रहीम' कह्यो न कछू करि राख हुती उनहार हिया।
बिधि यों न सिया सुख बार सिया को सु बार सिया पतिवारसिया ॥

छीर निधि[1] माँहि धँस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।
बड़ो रिझिवार है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है[2] ॥३॥

सुनिये बिटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजि हौ हरष तौ बिरष है न चारो कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनी छवि पाइहैं।
सुरन चढ़ेंगे सुर-नरन चढ़ेंगे हम,
सुकवि 'रहीम' हाथ हाथ ही बिकाइ हैं।
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे
काहू भेष में रहेंगे पै रावरे कहाइहैं ॥४॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।

---

१. पाठ० नीरनिधि।
२. पाठ० बड़ेन सो जान पहिचान तो कहा 'रहीम'
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीतहर सूरज सों प्रीति करी पंकज ने,
तऊ कंज बनन को मारत तुषार है॥
उदधि के बीच बस्यो, शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि मैं सदा रहै।
बड़ो रीझिवार है चकोर दरबार देख्यो,
सुधाधर यार ए पै चुँगत अँगार है॥

तन मन रावरे सों मतों के मगन होतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये॥
चित लाग्यो जित जैये तितही 'रहीम' नित,
धाधवे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर
मे, सो प्रीत बसी तऊ हँसी न कराइये॥५॥

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन कों लखि के ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो॥६॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताहि समै सु निकारि पिता बन बास दिया॥
कहे बीच 'रहीम' रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो उन[1] हार हिया।
बिधि सों नसिया रसबार सिया कर बार सिया पिय सा रसिया[2]॥७॥[3]

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरे नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥

---

१ पाठ० बिनु।
२ पाठ० सार सिया।
३ पाठ० जिहि कारन बार न लायो कछू गहि संभु सरासन द्वैजु किया।
न हुतो समयो बनवासहु को पैनिकास पिता बनवास दिया॥
भजि भेद 'रहीम' कह्यो न कछू करि राख हुती उनहार हिया।
बिधि यों न सिया सुख बार सिया को सु बार सिया पतिवारसिया॥

दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे ।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नन्द के द्वारे ॥८।

पुतरी अतुरीन कहूँ मिलिकै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो ।
हिरदै दहिबे सहिबे ही को है कहिबे को कहा कछु है गहि फेटो ॥
सूधे चितै तन हाहा करैं हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेंटो ।
ऐसे कठोर सों औ चित-चोर सों कौन सी हाय घरी भइ भेंटो ॥९।

सीखी है ऐसो 'रहीम' कहा इन नैन अनोखे धों नेह की नाँधन ।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राधन ॥
पुन्यन प्यारे सों भेट भई ए पै मौन कुसंगा मिल्यो अपराधन ,
स्याम सुधानिधि आनन की मरिये सखि सूधे चितैवे की साधन॥१०

घर रहसी रहसी धरम, खपजासी खुरसाण ।
अमर बिसंभर ऊपरै, राखो नहचौ राण ॥११॥[3]

तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होंहि ससि गैन ।
तदपि अँधेरो है सखी, पीउ न देखै नैन ॥१२॥

१ पाठ० दोनो बड़े करतार जिन्हैं सुख कौन रहीम सके तिहि टारे ।
उद्यम कोऊ करो न करो धन आवत है बिन ताके हँकारे ॥
दैव हँसे सब आपुस में बिधि के परपंच न कोउ निहारे ।
बालक आनक दुन्दुभी के भयो दुंदुभि बाजत आन के द्वारे ॥
२. पाठ० कौन धौं सीख रहीम इहाँ इन नैन अनोखिय नेह की नाँधनि ।
प्यारे सो पुण्यन भेट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधिन ॥
स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूधे चितैबे की साधनि ।
ओट किए रहते न बने कहते न बने बिरहानल बाधनि ॥
३. पाठ० ध्रम रहसी, रहसी धरा खिस जासे खुरसाण ।
अमर बिसंभर ऊपरे, नहचौ राखो राण ॥

छबि आवन मोहन लाल की ।
काछे काछनि कलित मुरलि कर, पीत पिछौरी साल की ॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें चितवनि नयन बिसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की ।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुतामाल की ॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानौ इस 'रहीम' के हाल की ॥१३॥

कमल दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मन्द मन्द मुसुकानि ॥
यह दसननि-दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बस-करी मधुरता सुधापगी बतरानि ॥
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुत माल थहरानि ।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥
अनुदिन श्री वृन्दाबन ब्रज तें आवन आवन जानि ।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥१४॥

———

श्रीगणेशाम्बागुरुभ्यो नमः

अथ खेट-कौतुकम्

यत्पादपंकजरेणोः प्रसादमासाद्य सर्वं भुवनेषु ।
प्रणमामीष्टसुमूर्त्तिं तामहममराः प्रभुत्वमपि यान्ति ॥१॥
फारसीयपदमिश्रितग्रंथाः खलु पंडितैः कृता पूर्वैः ।
संप्राप्य तत्पदपथं कुर्वामि खेटकौतुकम् पद्यम् ॥२॥

अथ सूर्य फलम्

लग्नगः सम्शखेटस्तदा लागरः कामिनी दूषितो दुष्प्रजा यदा वै ।
पयधारामरतो राशिमीजान्गतो मानहीनोऽथ हीषीं विदृष्टिः पुमान् ॥३॥

यदा चश्मखाने भवेदाफताबस्तदा ज्ञानहीनोऽथ गुस्सवर्षुद्दाम् ।
सदा तंग दिलशख्तगो द्रव्यहीनः कुवेशो यदा स्याद्बेहोशो दिवासाम् ॥४॥

यदा सम्शखेटस्तृतीयस्थितो नेककर्दा निरोगो हि शीरींसखुन् ।
सदा मोदते रम्यसीमंतिनीभिः सह वासवारो धनाढ्यो हि निःकोपशन् ॥५॥

यदा मादरागारगः सम्शखेटः सुखी नो हि शंसः परेशानकः स्यात् ।
सदा म्लान-चित्तोऽथ वेश्यारतो वा तथा जायते वेखुशी हिर्जगर्दः ॥६॥

फर्जन्दखाने यदा सम्शखेटस्तदा मानवो मानहीनः सदा जाहिलः ।
स्वल्पसंगप्रजश्चौर्यचिन्ताधियुग्गुस्सवरो धर्मकार्ये सदा काहिलः ॥७॥

यदा मर्जखाने भवेदाफताबो जलीलो गनी खूबरू हम्रवाचः ।
सदा मातृपक्षोऽसतस्यालब्धिर्निरोगो नरः शत्रुमर्दी तदया स्यात् ॥८॥

यदा सम्शखेटः स्मरस्थानगश्चिन्तया व्याकुला ना भवेत् कामुकः ।
सदा क्षीयते कामिनीभिर्महावंचको युद्धभूमौ चलो जम्बरः ॥९॥

यदा सम्शखेटो भवेन्मौतखाने मुसाफिर्विदेशे क्षुधा पीडितो हि ।
सदोद्योगहीनो महालागरः स्वीयदेशं विहायान्यदेशाटनः स्यात् ॥१०॥

यदा रवौ पेशखाने प्रसिद्धः सुखी मानवश्चान्यवित्तैरलं शोभते ।
विघ्नवृन्दैर्युतो मातृपक्षात् सुखं नो धनाढ्यो यदा जायते चोच्चगः ॥११॥

रवौ शाहखाने धनाढ्यो वफारस्तदा मोदते वाजिवृन्दैः सुखी च ।
मही पान्तिकी नेककदी सुशीलो जमीलो पितुस्सौख्यमत्वं भवेद् वै ॥१२॥

यदा याफितखाने भवेत् सम्शखेटः सुवेशो धनी वाहनाढ्योऽल्पशीलः ।
सुघोषः शुमोकाः सिपाही सलाही सविगीतगाने सुनेत्रोऽपि सिरदारः ॥१३॥

यदा खर्चखाने भवेत् सम्शखेटस्तदा कम्तनिर्मानहीनो नरः स्यात् ॥
महत्खर्चकः सत्क्रियो वा शरारत्पनाहः सदा पीड्यतेऽङ्गेषु रोगैः ॥१४॥

इति तन्वादिभावस्थ सूर्यफलम् ।

अथ चन्द्रफलम्

नवर्कगर्यदांगगस्तवंगरः सुरूपवान् ।
सुधीः सुखी नरो भवेद् विलोमगश्च तन्न हि ॥१५॥

कमर्यदा धनालये धनी दमी प्रियंवदः ।
विदूषको नरा भवेद् बलान्वितो बकी नरः ॥१६॥

कमर्बिलाधशालये नरा हि वा सुरौवतः ।
सदा बली च साबिरः सुकर्मकृद्यदा भवेत् ॥१७॥

कमर्यदाम्बुगेहगः सखी सुकर्वंः प्रभुः ।
भवेन्नरश्च मंजिसी तदा बुधः सुभाग्यवान् ॥१८॥

कमर्थदेन्मगोहगः स गुल्करू भवेन्नरः ।
बलान्वितो हि पादकी नदिल्पिशर्मकानगः ॥१९॥
काबलो विपक्षपक्षपीडितो हि बद्शकल् ।
जागरः कमर्भवेद् रिपौ यदा नरः सरुक् ॥२०॥
जन्मखानगःकमर्यदा भवेन्नरो भृशम् ।
गुल्फरू यशी गनी यशः करोत्यहर्निशम् ॥२१॥
उमर्गृहे कमर्यदा नरो भवेत् सदा भयी ।
च हिंजुर्दं गुस्सवं देशमुच्च निर्दयी ॥२२॥
नशीबखानगः कमर्सुईशसंज्ञकः नरम् ।
सुतम्मतिल्व आमिलं सिकम्युकं करोति वै ॥२३॥
कमर्यदा गृहाश्रितो हि हम्जवारकं नरम् ।
तवंगरं च कामिलं करोति वै च साबिरम् ॥२४॥
धनाधिपश्च खूबरू सखी सुबुद्धिपुंगवः ।
शीरींसखुन् विदूषको भवेद्यदा कमर्भवेत् ॥२५॥
व्ययाजये कमर्यदा भवेत् किरीह चश्मखन् ।
विरोधनश्च खिश्मनाप्यकीर्त्तिमान् हि उष्ट्रघः ॥२६

इति चन्द्रफलम्

अथ भौमफलम्

यदि भवति मिरीखो जन्मगः खिश्मनाक् स्याद्
रुधिरप्रभवः रोगैः पीडितो मुफ्लि
सकलजनविरोधी हासिलो जागरो ना
जनुषि खलु वियोगी दारपुत्रैर्हमेशः ॥२

यदि भवति मिरीखश्चश्मखाने बहोशः सुतधनसुतदारैर्वर्जितः शूरगः स्यात् ।
नसनयमुतफाकिहीनशक्तिर्वदर्दः खलजनसमबुद्धिर्मानवः कर्जदारः ॥२८॥

जरशतुरजवाहिर्रत्नतम्बूकनातैः सहजविमति रोगैसंयुतै संयुतश्च ।
यदि भवति मिरीखः खूबरो वा मुखैश्लबजर फितरसंज्ञः स्याद् बिरादर्गृहे
ना । ॥२९॥

पदकरजयतविराट्नोतनूत्थं सुखं च समरधरधरायां धैर्यधुन्धीवनीनः ।
खरयुशनक बेदर्द कर्जमन्दो हमेशः प्रभवति च मिरीखो दोस्तखाने
नरश्चेत् ॥३०॥

कमफहमतदाना अक्लखाने मिरीखः पिशरजरवजीरन्नेस्तदरखानये स्यात् ।
अनिलकफजरोगैर्व्याकुलो बेसुरौवत् गुसवर बदक्लश्चोदरव्याधियुक्
स्यात् ॥३१॥

रिपुजनपरिहन्ता खूबरो हम्ज वा स्याज्जशनजरजलालैर्युङ्महेवान जातः ।
यदि भवति मिरीखो मर्जखाने कददीन्कृतकुलजननोखो मातृपक्षे
कुठारः ॥३२॥

कमशहबत किरयांवश्चबेरो नहि स्याज्जिहिल जुलुम जंगेर्युङ् न चास्य
खमाये ।

तनुधनगमवेशमखी सुखवाजताऽज्ञो भवति यदि जलादुल्कको
जन्मकाले ॥३३॥

यदि भवति जलादुल्कको मौतखाने सततमहितभाषी गुह्यरुक् स्त्री-सुखो न ।
मुतफकिरबदामे जौहरी सोथ जख्मी कमफहममनस्स्याल्लागरो
सृग्विकारैः ॥३४॥

नरपतिकुलमान्यः संभ्रमो बन्दनादौ भवति यदि जलादुल्कको बख्तखाने
परयुवतिरतस्स्यान्मानवो भाग्यवान् वै पुरजमुखसुसिद्धो
हिर्जंगर्दश्चलेखः ॥३५॥

पुराफतसरतसंज्ञः काबिलो नेकिदौनयसमरिह लोके पूजितः साहसी च ।
मिहिरजरजलालजाजैवर्युतो ना भवति यदि मिरीखः शाहखाने
सखी स्यात् ॥३६॥

बरयखमलमख्वीजकशी साहिबीभिस्तुरगरथपदात्यैर्युग्जनश्चारिरूपाः ।
यदि भवति जलादुल्कको पाफ्तिखाने मदनसमरदक्षः पंडितः
सत्यगन्ता ॥३७॥

यदि भवति मिरीखः खर्चखाने गतश्च स्वजनहृदयभेत्ताकर्कशैर्नार्वचोभिः ।
महम्महयूतुल्मी शाहिदः वेजार प्राग्जठरदहनदर्पो हमेशः परीशान् ॥३८।
इति भौमफलम् ।

अथ बुधफलम्

साहबस्सवारो जिलखूबरू अमाततार्हः साहिबहिम्मतश्च ।
ताले भवेच्चेत् सततं विनीतो दानी चिरं चात्मनसौख्ययुक् स्यात् ॥३९।

शीरींसखुन दानिशवर चेत्तवंगरः स्याद्यदि चश्मखाने ।
उतारिदो न स्वजनानुरक्तो भवेद् विनीतः शुभगन्नयति ॥४०॥

सुरौवती साहबदर्दसंज्ञः प्रभूतमित्रः प्रमदाप्रियश्च ।
उतारदश्चेन्नशरो यशीयुं सोनो भवेन्ना खुशरो हमेशः ॥४१॥

पुष्टोऽनपत्योऽथ स वै यथेच्छो दानीश्वरो गीतप्रियः सखी च ।
उतारदः स्याद्यदि दोस्तखाने शीरींसखुन् कार्यगते मृषी च ॥४२॥

सुतान्वितः सुरफिकोऽथ भवेदुतारिदःस्याद्यदि अक्लखाने ।
दानाग्रणी साविरसंज्ञकश्च शगुफतरू साहब हिम्मतश्च ॥४३॥

बेकन्नरः स्यान्नसका विधानो बदखुल्ककः काहिल जाहिलोऽपि ।
रिपुस्मकाने हि भवेद्धीलःकल्को यदा मान्विपञ्च युक्चेत् ॥४४॥

तालेवरः सत्यवचो मुसाहिब् जन खूबरू च ।
उतारिदः स्याद्यदि सप्तमे च भवेन्नरः काबिल् मामुरौवत ॥४५॥

उमरदराजः सुतरां सगर्भमेकं पुर पार्थिवतत्त्ववित्तम् ।
बेरूं विधानं हि नरं प्रकुर्यादुतारिदो मर्ग मकानगश्चेत् ॥४६॥

दानीश्वरः सत्यगुणैरुपेतः खुशरू गनी धर्मपरस्तवंगरः ।
यदादबीलुलकल्को नशीबखाने भवेत्स प्रथितः शुभंकरश्च ॥४७॥

साहब् जलालो सुतमव्वल स्यान्नरेन्द्रमुख्य शुभकर्मकृन्नः ।
शीरीं सखुन्साहबदर्दसंज्ञश्चोतारिदश्चेत्खलु शाहखाने ॥४८॥

तवंगरश्चात्मजसौख्ययुक्स्याद्दाग्रणी भूपप्रियस्सिपाही ।
सदारिकः पाकदिलो दबीलुलकल्को यदा याफ्तमकानगस्स्यात् ॥४९॥

नापाज्जनश्चाक गुणैरुपेतो बेतालकः कम्शदवर बदर्दः ।
उदारिदः स्याद्यदि खर्च खाने भवेद् विरूपोऽपि गिर्दवर्तः ॥५०॥

इति बुध फलम् ।

अथ गुरुफलम्

मुश्तरी यदि भवेदादि खाने साहिबः खुशदिलो मानुषस्स्यात् ।
कामिलः पुरसखुन सिरदारः कारको हूमकबरो महबूबः ॥५१॥

मुश्तरी यदि भवेज्जरखाने बुजुर्गः परमपुण्यमतिस्स्यात् ।
कामिलः कनकसूनुयुतश्च खूबरू हि मनुजो जरदारः ॥५२॥

गाफिलो बहुपराक्रमयुक् स्यान्मानवः परुषवाक् च बखीलः ।
पालको भवति श्रेष्ठजनानां मुश्तरी यदि बिरादरखाने ॥५३॥

अस्पजरबरकशीरथफीलैर्युज्जनः प्रियतमः खलु राज्ञः ।
मुश्तरी यदि भवेद्धि चहारुम्खानये सकल सौख्ययुतः स्यात् ॥५४॥

पंडितः पुरतरुद् द आर्यः पुत्रपौत्रसहितो महबूबः ।
मुश्तरी यदि भवेत्फरजन्दस्यालये न मनुजो जरदारः ॥५५॥

काहिलश्च बहुरोगयुतश्च बदसखुन्बदशक्लः ।
मुश्तरी यदि भवेद्रिपुखाने मातुलादि भव सौख्यविहीनः ॥५६॥

फाजिलः सुखयुतः सुविनीतो हम्जवाक् च रमणीसुखयुक्तः ।
फारसश्च चतुरः कलनरः स्यान्मुश्तरी यदि भवेज्जनखाने ॥५७॥

बेदिलः परदेशरतश्च जाहिलः खलु नरः सगदश्च ।
मुश्तरी यदि हि हश्तुमखाने गुस्सवर स किल भवेज्जन मरतः[१] ॥५८॥

हजरतः खुशपरिजनश्च खूबरू बहुसुखी च मुशीरः ।
आमिलश्च यदि नशीबखाने मुश्तरी प्रविभवेत्खलु यस्य ॥५९॥

पालकी जुल जवाहिरफीलैः संयुतो विविधवस्त्र विशालैः ।
मुश्तरी भवति शाहमकाने साहबः खलु नरो नसरस्स्यात् ॥६०॥

साबिरः शुभतनुर्जरदारः फारसो बहुपराक्रमयुक् स्यात् ।
काबिलश्च यदि याफ्त मकाने मुश्तरी प्रविभवेत्खुशरू स्यात् ॥६१॥

१ मुरीदः

सुफलिसः कमफहम् गतलज्जा बदसखुं च रवाभूतलर्षितः ।
काहिलश्च यदि खर्च मकाने मुश्तरी भवति नः बदफेलः ॥६३॥

इति बृहस्पति फलम् ।

अथ शुक्र फलम्

अव्वलखाने जोहरा महबूबं सुकर्रं नृपतिम् ।
दानिशमंदं मनुजं जनखूबरू प्रकुरुते ॥६३॥

शीरीसखुन्मनुष्यं जरजेवरजर्कशीशालैः ।
युक्तं मिहिरो जरखाने जोहरा कुरुते च सद्भवं दक्षम् ॥६४॥

जोहरा भवति बिरादरखाने चेन्मानवो जातः ।
जोरावरो हरीशः सालस्यः सानुजस्साश्वः ॥६५॥

ऐयाशः मालदारः नेककारश्च फारसश्चेत्स्यात् ।
जोहरा दोस्तमखाने भवति प्रियवदश्चाढयः ॥६६॥

दानीश्वरो मनुष्यः सुतधनधान्यैश्च संकुलो यस्य ।
जोहरा पंजुमखाने भवति यदा हि महीपतेः प्रीतिः ॥६७॥

यारो न कम्सुहबत बेदर्दो जाहिलो जातः ।
खलु जोहरा कि दुश्मनखाने वै बेदिलो भवति ॥६८॥

साहबदर्दः कुशलः सकलकलासु फारसो ना स्यात् ।
जोहरा हफ्तुमखाने स्त्रीगर्वितासुरंजको भवति ॥६९॥

मगरूरो बदखुल्कः स्त्रीधनसौख्यैश्च वर्जितो मनुजः ।
हश्तुमखाने जोहरा भवति वितृप्तं मनो न संग्रामे ॥७०॥

नेककारः सुभगः खुशरू दाना च मानवो जोहरा ।
बख्तमकाने मुर्तजा नसरश्च मजलिसी भवति स इति ॥

दिरीको जरदारः पितृगुरुभक्तश्च काबिलो मनुजः ।
जोहरा शाहमकाने भवति मुशीरश्च साहबो वा स्यात् ॥

जरदारं महबूबं सिरदारं बामुरौवतं मनुजम् ।
या फितमकाने जोहरा मईशपुरदिलं कुरुते ॥७३॥

साहबखर्चो बदकारकमतहश्च मानवो ह्युदितः ।
बदअक्लः किल जोहरा खर्चमकाने हि गुस्सवरो भवति ॥

इति शुक्रफलम्

अथ शनिफलम्

ताले यदि स्याज्जुहलो बदअक्लः लागरो मनुजः ।
शठकंबरं बेदिलः वाममतिपूर्णः प्रभुर्भवति ॥७५॥

यावागो बदहालः कोता दस्तश्च गुस्सवरो जुहलः ।
जरखाने यदि मनुजो नाढ्यः परदेशगश्चापि ॥७६॥

जोरावरो यशीलः खुशदाना च मानवः सभ्यः ।
अनुचरवृन्दसमेतो भवति यदा वै बिरादरे जुहलः ॥७७॥

मुतफक्किरो बहोशः परितप्तो मानसो जुहलः ।
मादरखाने यदि स्यात् कमजोरश्च लागरो भवति ॥७८

बदअक्लो मुतफक्किरः सुतसुखरहितश्च काहिलो मनुजः ।
जुहलः पंजुमखाने कोताहदेहश्च जाहिलो भवति ॥७९॥

दानीश्वरं जलीलं जनयति मनुजं मुकर्रमं नृपतिम् ।
निर्जितवैरिसमूहं दुश्मनखाने स्थितो जुहलः ॥८०॥

बदरू जनः कृशांगः कम्फहमश्च मानवो हिर्जः ।
जानो वा स्याज्जुहलो हफ़्तुमखाने यदा भवति ॥८१॥

बीमारश्च हरीसो दग़ाबाजश्च दोजखी मनुजः ।
जुहलो हश्तुमखाने भवति बखीलः कृपालसो भीरुः ॥८२॥

बख्तबुलन्दः श्रीमान् शीरींसखुनश्च मानवो यदि वै ।
जुहलो बख्तमकाने वेतालश्च हि कृपालुरपि भवति ॥८३॥

शाहमकाने जुहलश्चेषु दशाफ़्ते च मानवः शाहः ।
अथवा भवेन्मुशीरः खुशखुल्कः सुकृती गनी स्नेही ॥८४॥

साहबदर्दो नेकः शीरींसखुनस्तवंगरा ना स्यात् ।
याफ़्तमकाने जुहल ईशः साबिरो रिपुहन्ता ॥८५॥

तंगहालो बदफेलः पापासक्तश्च मुफ़्लिसो मनुजः ।
जुहल खर्चमकाने भवति हरीसः कृपालुरेव स्यात् ॥८६॥

इति शनिफलम्

अथ राहुफलम्

अव्वलखाने यदा रासः खिश्मनाकश्च काहिलः ।
मनुजः स्वार्थकर्ता स्याद् भवेद् बेरुत्व जाहिलः ॥८७॥

किज़र वाहासिद रासो मालखाने मुफ़्लिसम् ।
करोति मनुजं वान्यदेशे धनसमन्वितम् ॥८८॥

पाकः शाहबलः स्याद् वै नेकनामो गनी सखी ।
सेयुम्खाने यदा रासः प्रभवेन्मनुजो धनी ॥८९॥

रासश्चदोस्तखाने स्यात् परीशानो मुसाफिरः ।
नादानोपि च वादी च सौख्यहीनो विपक्षकः ॥९०॥

पिसरखाने स्थितो रास पुत्रसौख्यविवर्जितम् ।
बेहोशं दर्द शिकमं नादानं कुरुते नरम् ॥९१॥

म्लेच्छावनीशाद् द्रव्यप्राप्तिर्दिलं च साहबं नरम् ।
बद्खानास्थितो रासः करोति रिपुसंक्षयम् ॥९२॥

राहजगदश्च बेताल्नो गुस्सवरो बदजनो भवेत् ।
हरतमखाने यदा रासः कलही मनुजस्तदा ॥९३॥

हरतमखाने यदा रासः शरीरी स्यान् मुसाफिरः ।
बेदीनः खिश्मनाकः स्याद् बदकारश्च मुफ्लिसः ॥९

बख्तखाने यदा रासः प्रभवेन्मनुजस्तदा ।
जवाहिरजरकशीयुक्तः साहबः सौख्यवान्नरः ॥९५॥

रासो बादशाहखाने भवेज्जोरावरो गनी ।
विपक्षपक्षरहितो मुईश पुनरुद्धृतः ॥९६॥

याफ्तखाने भवेद् रासो जायते न हि साहबः ।
बेकारश्च कर्जमन्दः कलही मनुजस्तदा ॥९७॥

रासः स्थितो यदा खर्चखाने भवेत्तदा ।
कलहप्रिय बेकारः कर्जमन्दश्च मुफ्लिसः ॥९८॥

यस्मिन् भावे फलं यद्धि राहो प्रोक्तम् शुभाशुभम् ।
तद्वदेव विजानीयात्तत्रैव शिखिनः फलम् ॥९९॥

इति राहुफलम्

जो शुभाशुभ फल राहु का है वही केतु का जानना

इति ग्रहभावफलम् ।

अथ राजयोगाध्याय : प्रारंभः

यदा माहताबो भवेन्मालखाने मिरीखोऽथवा मुश्तरी बख्तखाने ।
अतारिद् विलग्ने भवेद्‌बरूशपूर्णो भवेद्दानदारोऽथवा बादशाहः ॥१॥

भवेदाफताबो यदा षष्ठखाने पुनर्दैत्यपीरोऽथ केन्द्रे गुरुर्वा ।
सुजातः शुतर्फीलताज्याह्याढ्यो जरीजरजरावस्यदाता चिरायुः ॥२॥

यदा चश्मखोरा भवेद्दस्तिखाने ततो मुश्तरी दोस्तखानेऽथ लग्ने ।
अतारिद्धनस्थो बृहत्साहिबी स्याद्‌बृहद्रूपमखमलखबाना सुपूर्णः ॥३॥

तृतीये भवेदाफताबस्य पुत्रो यदा माहताबस्य पुत्रो विलग्ने ।
भवेन्मुश्तरी केन्द्रखाने नराणां बृहत्साहिबी तस्य तालेरुजूः स्यात् ॥४॥

यदा मुश्तरी पंजखाने मिरीखो यदा बख्तखाने रिपौ आफताबः ।
नरो वा अकूफो भवेत्कुंबरेशो बृहद्रोशनो वाहिनी वारणाढ्यः ॥५॥

अतारिद्‌विलग्ने सुखे माहताबो गुरुर्बख्तखाने तमो लाभखाने ।
जहानस्य खूबी भवेन्नेकबख्तः खजानागजाढ्यो मुलुकसाहिबी स्यात् ॥६॥

यदा देवपीरो भवेद्‌बख्तखाने पुनर्दैत्यपीरोऽथवा स्वप्नखाने ।
अतारिद्‌विलग्ने तृतीये मिरीखः शनिर्लाभखाने नरः काबिलः स्यात् ॥७॥

हमलमाहताबो व्यये आफताबो यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे ।
भवेन्मानवो देवतेजस्कराढ्यो बृहत्साहिबी बख्तखूबी कमालः ॥८॥

खजानागजाढ्यो भवेल्लश्कराढ्यो जहानप्रियो मुश्तरी जायखाने ।
मिरीखोऽथ लाभे बुधः पंजखाने शनिः शत्रुखाने नरः काबिलः स्यात् ॥९॥

कमरकेन्द्रखाने शनिः शत्रुखाने त्रिकोणेऽथवा मुश्तरी चश्मखोरा ।
सजातो नरः साबिरः सद्‌गुणाज्ञो भवेच्छायरो मालदारोऽथ खूबी ॥१०॥

मिरीखोऽथवा खेस्सस्तौखिखाने शुरुमौंतराशौ जाया माहताबः ।
भवेज्जन्मकाले यदा चश्मखोरो जुजीखग्रहृतौ जहानप्रचंडः ॥११॥

धनस्थे कुमुद्बन्धु षष्ठे रविस्स्यात् सलब्योभिविच्चेतिविद्वान्कविश्च ।
बृहस्साबरी शालमल्मलूबनानः शुतुर्फौजिफान्स तंबूकनातः ॥१२॥

आयु-खाने चश्मखोरा मालखाने च मुश्तरी ।
राहु जो पैदा मकाने शाह होवै मुलुक का ॥१३॥

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने यदा चश्मखोरा जमींवासमाने ।
तदा ज्योतिषी क्या लिखे क्या पढ़ेगा हुआ बालका बादशाही करेगा ॥१

यदा चश्मखोरा भवेत्तम्मखाने तदा मुश्तरी बख्तखाने विलआत् ।
जातः शुतुर्फौलताज्याख्याढयो जरीनरजरी वक्तदाता चिरायुः ॥१५॥

आफताबो मालखाने यस्य जन्मनि च ध्रुवम् ।
सफल रोजी मुश्किलं पड़ै फाके मुफ्जिसम् ॥१६॥

कमविलाधशालये नरो हि बाबुरौवतः ।
सदा बली च साबिरः सुकर्मकृधदा भवेत् ॥१७॥

आयु खाने चश्मखोरा मालखाने च मुश्तरी ।
सवाब बखाने चन्द्रदोदस् बादशाहम्बबैरी ॥१८॥

हमल् आफताबो बृषे माहताबो यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे ।
भवेन्मानवो दौलतो लश्कराढयो बृहत्साहिबो तस्य खूबी कमालः ॥१

हमल् आफताबो बृषे माहताबस्त्रिकोणेऽपि वा मुश्तरी चश्मखोरा ।
जातो नरो राह रालन्गुणाज्ञो भवेत्शायरो मानदारोऽतिखूबी ॥२०॥

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने मपे खेटपुत्रो वसेत्कारखाने ।
समं वीक्षते खूब खेटाः समस्ता भवेन्मर्दवं ददयंतुं दयालुः ॥२१॥

यदा भाग्यमाखिक मले घर पड़ै कमाकर सुदौलत सखाने मरे ।
करे जां वख्शी अमीरी सुफल वजीरी अमीरी करै वेफिकर ॥२२॥

यदा चश्मखोरा भवेद् हफ्तखाने शशी दोस्तखाने मिरीखोऽथ नक्के ।
सूरत्कमालो नरो दीनदारो गनीमप्रहंता जहान-प्रचंडः ॥२३॥

जमींबोऽथ नक्के शनौ मौत खाने गुरौ माहराशौ बरे माहताबः ।
भवेज्जन्मकाले नरो वा उदारो गनीमप्रहन्ता जहान-प्रचंडः ॥२४॥

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे यदा बख्तखाने रिपौ आफताबः ।
अतारिद्विलग्ने नरो बख्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः ॥२५॥

समाप्त

———

स्रोत-ग्रन्थ

१. फारसी भाषा में लिखित

(क) सामान्य ग्रंथ

१. अकबरनामा:—अबुलफज्ल अल्लामी लिखित यह ऐतिहासिक ग्रन्थ कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा तीन भागों में प्रकाशित किया गया है। हेनरी बेवरिज द्वारा तीन भागों में इसका अँग्रेजी अनुवाद भी छप चुका है। अब्दुर्रहीम के जन्म, दरबारी जीवन तथा गुजरात, सिंध और दक्षिण-विजय के अध्ययन में यह हमारा आधार ग्रन्थ रहा है। अबुलफज्ल अकबर के दरबारी इतिहासकार थे और उनकी पहुँच सभी विश्वस्त एवं मूल स्रोतों तक थी, अतः जन्म से लेकर १६०२ ई० तक के रहीम के जीवन की प्रमुख घटनाओं के लिए इससे अधिक अधिकृत ग्रंथ और हो ही कौन सकता है। इसमें हमारे नायक के जीवन के प्रारंभिक भाग का बड़ा ही विशद एवं अधिकारपूर्ण विवेचन है। तिथियों की दृष्टि से यह स्रोत तो बहुत ही महत्वपूर्ण है।

२. तकमील अकबरनामा:—इनायत उल्ला लिखित यह ग्रंथ भी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है और मूल अकबरनामा के साथ ही बेवरिज ने इसका भी अँग्रेजी में अनुवाद किया है। अबुलफज्ल की मृत्यु के समय से लेकर अकबर के राज्य-काल की समाप्ति तक की सारी महत्वपूर्ण घटनाओं का इसमें विशद वर्णन है। १६०२ ई० से १६०५ ई० तक के रहीम के दक्षिण देश में किए गए कार्यों के अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ हमारा प्रधान स्रोत रहा है।

३. तबकाते-अकबरी:—ख्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद बख्शी लिखित यह ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हो चुका है। इसके प्रथम दो भागों का अँग्रेजी अनुवाद बी० डे ने किया है। अकबर युगीन फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका प्रमुख स्थान है। यद्यपि यह ग्रन्थ "घटनाओं की शुष्क सूची" के रूप में लिखा गया है और विशद विवेचना की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है तो भी सम सामयिक होने के नाते रहीम के जीवन-अध्ययन के लिए इसका बड़ा महत्व है। लेखक गुजरात-विजय में रहीम का अधीनस्थ अधिकारी था अतः वहाँ का जो आँखों देखा हाल वह वर्णन करता है, वह बड़ा विश्वसनीय है।

४. मुन्तख़ब-उत-तवारीख़ः—मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी लिखित यह ग्रंथ भी एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके प्रथम भाग का अँग्रेजी अनुवाद लेफ्टिनेंट कर्नल रैंकिंग, द्वितीय का डब्ल्यू० एच० लो तथा तृतीय का लेफ्टिनेंट कर्नल हेग ने किया है। जहाँ तक राजनैतिक घटनाओं के वर्णन का सम्बन्ध है, वह निजामुद्दीन की कृति ही पर विशेषतः आधारित है। किन्तु रहीम के जीवन-सम्बन्धी कतिपय अतिरिक्त तथ्यों का भी इसमें यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है जैसे रहीम का कलाकारों एवं फारसी कवियों को आश्रय-दान। गुजरात में मुजफ्फर पर विजय-प्राप्ति के पश्चात् ख़ानख़ाना ने जो औदार्य्य-प्रदर्शन किया उसका उल्लेख हमें केवल बदायूनी की कृति ही में मिलता है।

५. आईने-अकबरीः—अबुल फज्ल लिखित यह ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग का अँग्रेजी अनुवाद ब्लाकमन ने तथा द्वितीय और तृतीय का जैरेट ने किया है। इसके पहिले भाग में बहुत से मुगल सामन्तों का संक्षिप्त जीवन-परिचय दिया गया है। रहीम के जीवन का जो संक्षिप्त किन्तु पूर्ण वर्णन ब्लाकमन ने "मआसिर-उल-उमरा" के आधार पर इस ग्रन्थ में दिया है, वह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं। रहीम के जीवन के शासकीय अंग पर भी इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र प्रकाश डाला गया है।

६. मआसिरे-रहीमीः—अब्दुल बाकी नहावन्दी लिखित यह विशाल ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा चार भागों में प्रकाशित हो चुका है। इसका लेखक रहीम का अधीनस्थ अधिकारी था और दक्षिण में उनके साथ काफी अरसे तक रहा। इस ग्रंथ में ख़ानख़ाना के गुजरात एवं सिंध-विजय जैसे राजनीतिक विषयों का जो वर्णन है वह तो मुख्यतः निजामुद्दीन की कृति पर ही आधारित है किन्तु ख़ानख़ाना तथा उसके पुत्रों का मलिक अम्बर एवं राजू के विरुद्ध किए गए युद्धों का जो सचित्र एवं सजीव वर्णन हमें इस पुस्तक में प्राप्त है उससे इसकी उपादेयता बहुत अधिक बढ़ गई है। नहावन्दी १६१६ ई० तक ख़ानख़ाना की सेवा में रहा और तब तक का आँखों देखा हाल वर्णन करता है। इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में बहुत से ऐसे फरमानों की प्रतियाँ हैं जो ख़ानख़ाना को सम्बोधित करते हुए लिखे गए थे। इनके अतिरिक्त ख़ानख़ाना के गुणों, विजयों, उनकी फारसी कृतियों तथा गुजरात, सिंध और दक्षिण के शासकों का भी विस्तृत विवरण हमें इस भाग में प्राप्त होता है। ख़ानख़ाना द्वारा निर्मित विभिन्न प्रकार के भवनों का भी इसमें उल्लेख है। तीसरे तथा

चौथे भाग में उन बानवे कवियों की जीवनियों और कृतियों का उल्लेख है जो रहीम की छत्र-छाया में फूलते-फलते थे। इनके अतिरिक्त बहुत से सम सामयिक दार्शनिकों तथा वैद्य-हकीमों और खानखाना के अधीनस्थ चौआलीस सुविख्यात सैनिक अधिकारियों के भी जीवन-चरित हमें इन भागों में प्राप्त हैं।

७. तारीखे-फरिश्ताः—मुहम्मद कासिम हिन्दू शाह ने जो प्रायः फरिश्ता के नाम से विख्यात है, इस ग्रंथ की रचना १६१२ ई० के आसपास की। नवल किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा लेफ्टिनेन्ट कर्नल जान ब्रिग्ज द्वारा "हिस्ट्री आफ दी राइज आफ दी मुहम्मडन पावर इन इन्डिया" शीर्षक से अँग्रेजी में अनूदित यह ग्रन्थ मध्यकालीन इतिहास स्रोतों में बड़ा महत्व पूर्ण है। फरिश्ता दक्षिण-देश का निवासी था और दक्षिणी मामलों पर सर्व सम्मति से यह सर्वोत्कृष्ट अधिकार ग्रन्थ माना जाता है। इसमें अकबर के राज्य-काल की समाप्ति तक के घटनाओं का वर्णन है। खानखाना ने मलिक अम्बर तथा राजू दक्षिणी के विरुद्ध जितनी कार्रवाइयाँ की, उन पर यह ग्रंथ विशेष रूप से प्रकाश डालता है। अहमदनगर पर घेरा डालने के समय खानखाना द्वारा किये गये कृत्यों का इसमें विस्तृत विवरण है।

८. इन्शाए-अबुल-फज़्लः—यह अबुल फज्ल द्वारा लिखे गए निजी तथा सरकारी पत्रों का संग्रह है, जिसे उसके भानजे अब्दुसमद ने किया। फारसी-साहित्य के विद्यार्थी इनसे भली-भाँति परिचित होंगे। 'द्वितीय दफ्तर' में तीस से अधिक वे पत्र हैं, जिन्हें अबुल फज्ल ने खानखाना को समय-समय पर लिखे थे। इनमें अधिकांश पत्रोत्तर के रूप में हैं। गुजरात में खानखाना को अपने वयोवृद्ध सहयोगियों के साथ व्यवहार करने में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई, उन पर ये पत्र बहुत अच्छा प्रकाश डालते हैं। खानखाना ने किन कारणों से कंधार-विजय की योजना में परिवर्तन किया तथा मुराद के स्वेच्छा पूर्ण व्यवहार से खानखाना की मनःस्थिति क्या हो गई थी—इन बातों का भी उक्त पत्रों में स्पष्ट वर्णन मिलता है। उक्त पत्रों का वैसे तो कई स्थानों से प्रकाशन हुआ है किन्तु जो संग्रह मीरहसन प्रेस, लखनऊ द्वारा छपा है, वह सब से अधिक प्रामाणिक है।

९. अकबर नामाः—फैजी सरहिन्दी लिखित इस पुस्तक की पांडुलिपि "इंडिया आफिस लंदन" में सुरक्षित है। यह प्रायः अबुल-फज्ल तथा निजामुद्दीन की कृतियों पर आधारित है, किन्तु सूपा-युद्ध का विवरण इस ग्रन्थ में उक्त दोनों से कहीं अधिक निर्दोष एवं सुविस्तृत है। इस पुस्तक के उस भाग का जिसमें अकबर के

समय के ख़ानख़ाना की दक्षिणी लड़ाइयों का वर्णन है, इलियट ने अँग्रेज़ी में अनुवाद भी किया है।

१०. तारीख़े अकबरशाही:—आरिफ़ मुहम्मद कन्धारी लिखित इस कृति की पांडुलिपि रामपुर पुस्तकालय में प्राप्य है। लेखक बैरमख़ाँ का निजी सेवक था और जब १५६१ ई० में पाटन में उसके स्वामी की हत्या की गई तो उस समय वह वहाँ उपस्थित था। उसने अपनी रचना में रहीम के वंशजों का सुविस्तृत वर्णन किया है।

११. मुरक्क़ा:—सरकारी पत्रों का यह महत्वपूर्ण संग्रह हैदराबाद स्थित दफ़्तरे दीवानी के अधिपत्य में है। इसके संकलनकर्त्ता मीर मुहम्मद माली ने उन व्यक्तियों के जो इन पत्रों से सम्बंधित है, संक्षिप्त जीवन परिचय भी इस संग्रह में जोड़ दिए हैं। इसमें कितने ही ऐसे पत्र संगृहीत हैं जिन्हें ख़ानख़ाना ने समय-समय पर तत्कालीन सुप्रसिद्ध फ़ारसी कवियों को लिखे थे। उन कवियों में उर्फ़ी शकेबी और हयाती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ख़ानख़ाना के कुछ अन्य पत्र भी जो उसने हकीम अब्दुलफ़तेह तथा कुलीज खां जैसे व्यक्तियों को लिखे थे, इस संग्रह में उपलब्ध हैं। इन पत्रों की लेखन-शैली से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि ख़ानख़ाना का फ़ारसी-गद्य पर पूर्ण अधिकार था।

१२. मुन्शियाते अब्दुल फ़तेह गिलानी:—हकीम अब्दुल फ़तेह गिलानी द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए निजी पत्रों का यह संग्रह बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त है। इनमें चार ऐसे पत्र हैं जो ख़ानख़ाना के नाम लिखे गए थे। इन पत्रों से ख़ानख़ाना के जीवन पर कुछ विशेष अतिरिक्त प्रकाश नहीं पड़ता।

१३. तुज़ुके जहाँगीरी:—यह जहाँगीर बादशाह की आत्म कथा है। अपने राज्य-काल के सत्रहवें वर्ष तक तो वह इसको स्वयं लिखता रहा किन्तु अन्तिम दो वर्षों का विवरण उसकी देख-रेख में मुतामिद खां ने लिखा। यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई है। इसका अँग्रेज़ी अनुवाद सर्वप्रथम अलेक्ज़ेन्डर रोजर्स ने किया और फिर हेनरी बेवरिज ने उसे दोहराया और सम्पादित किया।

जहाँगीर के राज-काल में ख़ानख़ाना के जीवन-कृत्यों के अध्ययन के लिए 'तुज़ुके-जहाँगीरी' ही हमारा सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ख़ानख़ाना के संदेहों एवं भयों, उसका बादशाह से मिलन, उसकी दक्षिण-देश में जय-पराजयों तथा उसके पुत्रों की सफलताओं-विफलताओं का बहुत ही सजीव चित्रण हमें इस ग्रन्थ में मिलता है। ख़ानख़ाना तथा उसके पुत्रों को समय-समय पर जो उदार पुरस्कार तथा

पदोन्नति मिली, उनका भी इसमें विस्तृत वर्णन है। खानखाना के दक्षिणियों के साथ संदिग्ध पूर्ण व्यवहार का इसमें स्पष्ट उल्लेख है। रहीम ने फारसी भाषा में जो काव्य-रचना की, उनके भी कुछ नमूने इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। विद्रोही राजकुमार खुर्रम के सहयोगी के नाते खानखाना ने जो कृत्य किए उनके लिए तो यह हमारा एक मात्र प्रामाणिक स्रोत है।

१४. ततम्मिमाए-तुजुके जहाँगीरी :—यह रचना मुहम्मद हादी की है और जहाँगीर के राज्यकाल की समाप्ति तक की घटनाओं का इसमें समावेश है। तुजुके जहाँगीरी के घटना-क्रम का सिलसिला इसमें जारी रहता है और प्रायः यह उसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में जोड़ दिया जाता है।

१५. इक़बालनामा :—मोतमादखाँ की यह रचना तीन भागों में है। प्रथम में हुमायूँ की मृत्यु तक के तैमूर वंश का सारा इतिहास वर्णित है। द्वितीय में अकबर के राज्य-काल का वर्णन है और तृतीय भाग में जहाँगीर के समस्त राज्यकाल तथा शाहजहाँ के सिंहासनारोहण तक का इतिहास है। प्रथम दो भाग दुर्लभ हैं किन्तु तृतीय जो प्रायः "इकबालनामाए—जहाँगीरी" शीर्षक से विख्यात है, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है। लेखक जो जहाँगीर के राज्य-काल में "बख्शी" के पद पर रहा खानखाना विषयक उन कतिपय घटनाओं का उल्लेख करता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं। खुर्रम का शाहनवाज़ खाँ की पुत्री से विवाह, जीवन के अन्तिम दिनों में खानखाना के कृत्यों तथा उसके मृत्यु-विषयक विवरण आदि के अध्ययन के लिए यह हमारा सब से अधिक प्रामाणिक ग्रंथ है।

१६ मआसिरे जहाँगीरी:—ख्वाजा कामगार गैरत खाँ के इस कृति की पांडुलिपि, बाँकीपुर (पटना) पुस्तकालय में उपलब्ध है। प्रारंभिक भाग को छोड़कर जिसमें सलीम के राजकुमार-जीवन का वर्णन है यह ग्रंथ प्रायः तुजुके जहाँगीरी और इकबालनामा पर ही आधारित है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोही कारनामों में खानखाना का क्या भाग था, इसके अध्ययन के लिये यह ग्रंथ विशेष उपयोगी है।

१७. बादशाहनामा :—काजवीनी लिखित यह शाहजहाँ के राज्यकाल का महत्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथ है। लेखक ने बड़ी ही सरल और रोचक भाषा में शाहजादा खुर्रम के विद्रोह का वर्णन किया है। इसमें खानखाना की जीवन-सन्ध्या के बहुत से ऐसे कार्यों के विषय में नवीन सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

१८. मुन्तखब-उल-लुबाब :—खाफीखाँ लिखित यह ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी

आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है। कालान्तर की रचना होने पर भी इसमें हमें रहीम के विषय में बहुत सी नवीन बातें मिलती हैं। लेखक ने अपनी सामग्री उन ग्रंथों से ली है, जिनमें कुछ अब अप्राप्य हैं। खानखाना के गुण-दोष, सफलताओं-विफलताओं का इसमें बड़ा ही विशद वर्णन है। रहीम के उस कपटपूर्ण आचरण पर जब कि उसने विद्रोही राजकुमार खुर्रम के साथ विश्वासघात किया था, यह ग्रंथ विशेष प्रकाश डालता है।

१९ मआसिर-उल-उमरा :—शाहनवाज़ खाँ तथा उसके पुत्र अब्दुलहक द्वारा लिखित यह ग्रंथ बंगाल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके कुछ अंश का वर्णमाला-क्रम से बेवरिज ने अँग्रेजी में अनुवाद भी किया है। बाबर के समय से लेकर अठारहवीं शताब्दी के लगभग अंत तक के प्रमुख मुगल-सामंतों की जीवनियों का यह एक महत्वपूर्ण कोष है। फारसी इतिहासों से संकलित यह वर्णमाला-क्रम से तैयार किया गया है। इस ग्रंथ में रहीम तथा उनके पिता बैरमखाँ का संक्षिप्त किन्तु सर्वांगपूर्ण जीवन-परिचय मिलता है। रहीम के औदार्य की कतिपय गाथाएँ जो इसमें वर्णित हैं, अन्य कहीं भी प्राप्त नहीं।

(ख) प्रान्तीय इतिहास ग्रन्थ

१. मिराते-सिकंदरी—सिकन्दर बिन मुहम्मद लिखित यह ग्रंथ फतेह करीम प्रेस बंबई से प्रकाशित हुआ है। इसका अँग्रेजी अनुवाद एक तो सर ई० क्लाइव बेली ने अपने "लोकल मुहम्मडन डाइनेस्टीज-गुजरात" में किया है और दूसरा फजलुल्ला लुत्फुल्ला फरीदी ने। इसमें गुजरात का इतिहास वर्णित है। लेखक ने उन घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था जिनके कारण अंततोगत्वा गुजरात के महान विल्पव का शमन हो सका, अतः उस प्रान्त के राज्यपाल के रूप में खानखाना की जिन कार्रवाइयों का वह वर्णन करता है वे विश्वसनीय हैं। वह लिखता है कि मालवा-सेना जिसके साथ वह स्वयं था, अहमदाबाद बिल्कुल गई ही नहीं, किन्तु अबुल फजल, निजामुद्दीन तथा बदायूनी इस कथन की पुष्टि नहीं करते।

२. तारीखे-गुजरात—मीर तुराब अली लिखित एवं डा० ई० डी० रास द्वारा सम्पादित, यह ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, द्वारा प्रकाशित हुआ है। लेखक इतिमाद खां का साथी था और जब १५७२ ई० को गुजरात की पहली चढ़ाई के समय इतिमाद खाँ मुगलों से आ मिला तो वह भी उसके साथ चला आया। मिर्जाखाँ की नियुक्ति के पूर्व गुजरात के मामलों की जानकारी प्राप्त करने में इस ग्रंथ से विशेष सहायता मिलती है।

३. मिराते-अहमदी—अली मुहम्मद खाँ रचित यह ग्रंथ ओरियंटल रिसर्च, बड़ौदा द्वारा दो भागों और एक परिशिष्ट में प्रकाशित हुआ है। जेम्स बर्ड ने अपने "पोलिटिकल एण्ड इस्टेटिस्टिकल हिस्ट्री आफ गुजरात" में इसके एक अंशका अँग्रेजी में अनुवाद भी किया है। इसमें १७६१ ई० तक का गुजरात का इतिहास वर्णित है। मिर्जा खाँ सम्बन्धी सारी सूचनाएँ प्रायः मिराते-सिकन्दरी से ही ली गई हैं।

४. तारीखे-मासूमी—सैयद मुहम्मद मासूम भक्करी रचित यह ग्रंथ भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना द्वारा प्रकाशित हुआ है। इलियट और डाउसन के प्रथम भाग में इसका अंशतः अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है। इसमें सिंध का अरब-विजय से लेकर उस देश का अकबर के समय में मुगल-राज्य में मिलाए जाने तक का विस्तृत इतिहास वर्णित है। मिर्जाजानी के विरुद्ध खानखाना ने जो कुछ किया उसका सविस्तार वर्णन इस पुस्तक में उपलब्ध है। लेखक ने खानखाना की सिंध-विजय में स्वयं भाग लिया था अतः उसका आँखों देखा वर्णन अत्यन्त विश्वसनीय है।

५. तारीखे–ताहिरीः—मीर ताहिर मुहम्मद लिखित इस ग्रंथ के उस भाग का जिसमें खानखाना की सिंध-चढाई का वर्णन है, इलियट के प्रथम भाग में अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। इसमें जल-युद्ध का वर्णन बड़ा ही सजीव है।

६. बुरहाने-मआसिरी—अली बिन अजीज उल्ला तबातबा लिखित यह दक्षिण-देश का महत्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथ है। खानखाना द्वारा अहमदनगर पर डाले गए पहले घेरे का इसमें सविस्तार वर्णन है। इस पुस्तक का विशेष महत्व इसलिए है कि इसमें घटनाओं का वर्णन दक्षिणी दृष्टिकोण से किया गया है।

७. तज़किरात–उल-मुलूक—मीर रफीउद्दीन शीराजी लिखित इस पुस्तक की पांडुलिपि डा० यदुनाथ सरकार के पुस्तकालय में प्राप्य है। इसमें बीजापुर, बहमनी वंश, गुजरात, अहमदनगर, गोलकुंडा तथा बाबर, हुमायूँ और अकबर का इतिहास वर्णित है। दक्षिण-देश में मलिक अम्बर ने मुगलों के विरुद्ध जो कार्यवाइयाँ कीं, उनका इसमें सविस्तार वर्णन है।

८. तज़किरा-तउस-सलातीन—मिर्जा इब्राहीम जुबेरी की यह कृति सैदी प्रेस, हैदराबाद से प्रकाशित हुई है। इसमें बीजापुरी सुलतानों का इतिहास वर्णित है। मलिक अम्बर तथा खानखाना के युद्धों का इसमें संक्षिप्त वर्णन है।

९. फ़ुतूहाते-आदिलशाही—फजूनी अस्तराबादी के इस कृति की पांडुलिपि ब्रिटिश म्यूजियम में प्राप्य है। डा० यदुनाथ सरकार ने इसका अंशतः अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है। बीजापुर के इतिहास का यह ग्रंथ खानखाना की दक्षिण-देश की कार्यवाइयों का विस्तृत विवरण देता है। यह दक्षिणी दृष्टिकोण से लिखा गया है। मलिक अम्बर के साथ किये हुए खानखाना के व्यवहार की बहुत-सी बातें हमें इसमें मिलती हैं। वह इस अफवाह का भी उल्लेख करता है कि खानखाना छिपे–छिपे दक्षिणियों से मिला हुआ था।

२. हिन्दी-स्रोत (विशेष)

१. रहीम-रत्नावली :—श्री माया शंकर याज्ञिक बी० ए० द्वारा संकलित एवं सम्पादित तथा साहित्य-सेवा सदन, बुलानाला, काशी द्वारा प्रकाशित यह रहीम की लगभग सभी हिन्दी-कृतियों का सर्वोत्तम संग्रह है। संकलनकर्ता ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में रहीम की हिन्दी-रचनाओं का आलोचनात्मक विवेचन किया है। पुस्तक आठ भागों में विभाजित है। प्रथम दो भागों में उन सभी दोहों का संग्रह है जो रहीम-रचित हैं या ऐसा कहे जाते हैं। तीसरे तथा चौथे भाग में बरवै संग्रहीत है। शेष चार भागों में रहीम की अन्य रचनाएँ जैसे "मदनाष्टक" "छंद एवं पद" "शृंगार-सोरठ" तथा "रहीम-काव्य" आदि दी हुई हैं। संकलनकर्ता ने इस पुस्तक में रहीम का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी दिया है।

२. रहिमन-विलास :—बाबू व्रजरत्नदास द्वारा संकलित यह रहीम के दोहों तथा बरवै का संग्रह है।

३. रहिमन विनोद :—पं० अयोध्याप्रसाद शर्मा ने इसका संकलन किया है। संकलनकर्ता ने इसमें कथावस्तु के अनुकूल रहीम के दोहों को चार भागों में विभाजित किया है। इसमें "बरव नायिका भेद" तथा रहीम की कतिपय अन्य रचनाएँ भी सग्रहीत है।

४. रहीम :—रहीम की रचनाओं के जो संग्रह प्रारम्भ में हुए, उनमें एक यह भी है। रहीम के दोहे जो कभी कभी तुलसी तथा वृन्द के दोहों से मिलते-जुलते से लगते हैं, कहाँ तक प्रामाणिक हैं, इसकी लेखक ने आलोचनात्मक विवेचना की है।

इनके अतिरिक्त रहीम की रचनाओं के निम्नलिखित संकलित संग्रह भी हैं—

५. रहिमन विलाप—राधाकृष्णदास द्वारा संकलित
६. रहिमन-रत्नाकर—उमरावसिंह त्रिपाठी ,,
७. रहीम-कवितावली—सुरेन्द्रनाथ तिवारी ,,
८. रहिमन-चंद्रिका—रामनाथलाल सुमन ,,
९. रहिमन-शतक—पं० सूर्यनारायण दीक्षित ,,
१०. रहिमन-शतक—लाला भगवानदीन ,,
११. रहिमन-शतक—ज्ञानभास्कर प्रेस, बाराबंकी द्वारा प्रकाशित।
१२. रहिमन-शतक—(दो भाग) बबई भूषण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित।

१३. मूलगोसाईं चरित—तुलसीदास की जीवनी पर लिखे गए इस ग्रंथ की रचना उस कवि के एक समकालीन शिष्य बाबा वेणी माधवदास जी ने की है। तुलसी के जीवन-विषयक अध्ययन के लिए बाबू श्याम सुन्दरदास एवं कतिपय अन्य लेखकों ने इसे अपना प्रधान स्रोत माना था किन्तु आधुनिक आलोचक इसकी प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट करते हैं। उनका मुख्य कथन यह है कि इसमें तिथि सम्बन्धी बहुत-सी अशुद्धियाँ हैं। कुछ भी हो, केवल इसी ग्रंथ में यह उल्लेख मिलता है कि रहीम ने कतिपय बरवै तुलसी के पास भेजे और उस छन्द के सौंदर्य से प्रेरित हो, तुलसी ने "बरवै रामायण" की रचना की।

१४. वंश-भास्कर—कवि सूरजमल ने भारत-विषयक इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना हिन्दी छंदों में १८४१ ई० के लगभग बूँदी के रावराजा रामसिंह के दरबार में की। इस ग्रंथ के तीन पृष्ठों में ख़ानख़ाना का वर्णन है। लेखक ने ख़ानख़ाना के निजी एवं अधिकारी जीवन सम्बन्धी बहुत-सी रोचक गाथाओं का वर्णन किया है। रहीम का संस्कृत पर कितना अधिकार था, इसका परिचय विशेष रूप से हमें इसी ग्रंथ से प्राप्त होता है।

१५. चकत्ता-वंश-परम्परा—(पांडुलिपि - मायाशंकर याज्ञिक) इस ग्रंथ के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं। सम्भवतः यह पुस्तक सम्वत् १८२५ के लगभग जयपुर के शासक माधोसिंह के समय में लिखी गई। इसमें मुगल वंश एवं रहीम सम्बन्धी बहुत सी रोचक गाथाएँ वर्णित हैं। किन्तु इनमें अधिकांश ऐसी हैं जिनकी ऐतिहासिक पुष्टि नहीं।

१६. भक्तमाल प्रसंग :—(पांडुलिपि-मायाशंकर याज्ञिक) वैष्णव दास ने इसे सम्वत् १८१४ में लिखा। इसमें रहीम-विषयक अनेक दंत कथाएँ हैं जिनसे रहीम की उदारता और लोक प्रियता का ज्ञान होता है।

१७. जहाँगीर-चंद्रिका :—कहते हैं कि रहीम के ज्येष्ठ पुत्र शाहनवाज के आग्रह पर केशवदास ने यह ग्रंथ लिखा। यों तो इसमें जहाँगीर के शासन-काल का वर्णन है किन्तु यदा-कदा हमें इसमें रहीम के महत्वपूर्ण कृत्यों का भी परिचय प्राप्त होता है।

१८. जस-कवित्त :—(पांडुलिपि-मायाशंकर याज्ञिक) मदन की इस कृति में रहीम की प्रशंसा पर एक काव्य उपलब्ध है।

१९. खानख़ानानामा :— मुख्यतः फारसी स्रोतों पर आधारित रहीम तथा

बैरमखाँ के जीवनी-विषयक इस ग्रंथ की रचना मुंशी देवी प्रसाद ने की है। इसमें रहीम के वंश, जीवन तथा साहित्यिक उपलब्धियों का वर्णन है। अबुलफज़ल ने समय-समय पर खानखाना को जो पत्र लिखे, उनमें से कुछ का हिन्दी अनुवाद भी इसमें दिया गया है। हिन्दी के प्रायः सभी लेखकों ने रहीम के जीवन-वृत्तान्त के लिए इसे ही अपना आधार-ग्रंथ माना है। इस पुस्तक की प्रतियाँ अब दुर्लभ हैं और मैंने जिस प्रति का अपने अध्ययन में उपयोग किया है वह काशी नागरी प्रचारिणी बनारस सभा के पुस्तकालय में प्राप्त है।

२०. मिश्रबंधु विनोद :—मिश्र बंधुओं की यह कृति हिन्दी-साहित्य के इतिहास लिखने का प्रथम प्रशंसनीय प्रयास है। इसमें रहीम की उदारता की बहुत सी दंत-कथाएँ हैं। किन्तु विद्वान लेखकों का यह निष्कर्ष कि रहीम कृष्ण-उपासक थे, ऐतिहासिक तथ्यों से प्रमाणित नहीं होता।

२१. हिन्दी साहित्य का इतिहास :—पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखित यह हिन्दी-साहित्य के इतिहास का प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें रहीम के जीवन एवं साहित्यिक कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

२२. हिन्दी-भाषा और साहित्य :—बाबू श्यामसुन्दर दास लिखित यह हिन्दी-भाषा एवं साहित्य का इतिहास-ग्रंथ है। रहीम ने खड़ी बोली की उत्पत्ति एवं विकास में क्या योग दिया, इसका इसमें संक्षिप्त उल्लेख है।

२३. कविता-कौमुदी—भाग १—पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने इस संग्रह में हिन्दी के अन्य प्रमुख कवियों के साथ रहीम केजीवन एवं काव्यों का भी आलोचनात्मक विवेचन किया है।

२४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—हिन्दी साहित्य के प्रथम दो काल के इस विस्तृत एवं आलोचनात्मक इतिहास-ग्रंथ की रचना डा० रामकुमार वर्मा ने की है। विद्वान लेखक के रहीम के बरवै-रचना सम्बन्धी जो निष्कर्ष हैं उनकी हमने इस पुस्तक में समीक्षा की है।

२५. खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास—बाबू ब्रजरत्नदास की यह कृति हिन्दी के खड़ी बोली के इतिहास पर प्रकाश डालती है। रहीम ने खड़ी बोली की वृद्धि में क्या योग दिया, इसका इसमें उल्लेख है।

२६. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि— डाक्टर सरजूप्रसाद अग्रवाल की यह विद्वत्तापूर्ण कृति लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमें उन पांचों प्रमुख

हिन्दी कवियों के जीवन-वृतान्त हैं जो अकबर के दरबार में रहते थे। इसमें उनकी साहित्यिक कृतियों का भी आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें रहीम का जो जीवन-वृत्तांत दिया गया है वह मुख्यतः 'खानखानानामा' पर ही आधारित है। यत्र-तत्र 'मआसिरे रहीमी' का भी आधार लिया गया है। लेखक ने रहीम की साहित्य-कृतियों का अध्ययन "रहीम रत्नावली" के आधार पर किया है। इस पुस्तक में रहीम के काव्य का विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन किया गया है। इसमें लेखक ने जो गंग कवि की कविताएँ दी हैं उनमें से १५ से भी अधिक खानखाना की प्रशंसा में लिखी गई हैं।

२७. खैट कौतुक जातकम् (संस्कृत)—खानखाना की हिन्दू ज्योतिष पर लिखी गई यह पुस्तक वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित हुई है। इसका हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। संस्कृत पद्यों में लिखित यह हिन्दू ज्योतिष की प्रामाणिक पुस्तक है।

३. हिन्दी के अन्य स्रोत

दोहा सार संग्रह	(पांडुलिपि-माया शंकर याज्ञिक)	
गुन गंज नामा	(पांडुलिपि-माया शंकर याज्ञिक)	
अष्ट छाप	डा० धीरेन्द्र वर्मा	
कबीर का रहस्यवाद	लेखक	डा० रामकुमार वर्मा
कबीर ग्रन्थावली	"	डा० श्यामसुन्दर दास
कवि प्रिया (केशव दास)	प्रकाशक	नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
खोज रिपोर्ट	"	नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस
गोस्वामी तुलसीदास	लेखक	श्यामसुन्दरदास
तुलसीदास	"	डा० माताप्रसाद गुप्त
तुलसीदास	"	चन्द्रबली पांडे
तुलसीदास और उनकी कविता	"	रामनरेश त्रिपाठी
तुलसी ग्रन्थावली, भाग १–२ और ३	प्रकाशक	नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस
बिहारी रत्नाकर	लेखक	जगन्नाथप्रसाद 'रत्नाकर'
व्रज-माधुरी-सार	"	वियोगी हरि
भ्रमर गीत सार	"	रामचन्द्र शुक्ल
राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज,	"	मुंशी देवीप्रसाद
रामचन्द्रिका	प्रकाशक	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
रामचरितमानस	"	गीता प्रेस गोरखपुर
शिवसिंह सरोज	"	नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
सूर सागर	"	वेंकटेश्वर प्रेस बनारस
हिन्दी नव रत्न	लेखक	मिश्र बन्धु
हिन्दी साहित्य की भूमिका	"	पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी
जायसी ग्रन्थावली	"	पं० रामचन्द्र शुक्ल
मतिराम ग्रन्थावली	"	कृष्णबिहारी मिश्र
काव्य निर्णय	"	भिखारी दास
हिन्दी के कवि और काव्य	"	गणेशप्रसाद द्विवेदी
अमीर खुसरो की हिन्दी कविता	"	ब्रजरत्नदास

अकबरी दरबार	अनुवादक	रामचन्द्र वर्मा
मआसिर-उल-उमरा	"	ब्रज रत्नदास
प्राचीन कवियों की काव्य साधना	लेखक	राजेन्द्रसिंह गौड़
हिन्दी कवि चर्चा	"	चन्द्रबली पांडे
अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय	"	डा० दीनदयालु गुप्त
कवि विनोद	"	विश्वम्भरनाथ खत्री
काव्य कल्पद्रुम (भाग १—२)	"	कन्हैयालाल पोद्दार
महाकवि गंग की कविता	लेखक	पुरोहित हरनारायण शर्मा
मुगल बादशाहों की हिन्दी	"	चन्द्रबली पांडेय
राजा बीरबल	"	मुंशी देवीप्रसाद

४. उर्दू में लिखित ग्रंथ

दरबारे-अकबरी—मुहम्मद हुसेन आजाद ने अपनी इस महत्वपूर्ण कृति में रहीम का संक्षिप्त किन्तु पूर्ण जीवन-विवरण दिया है। यह वृत्तान्त मुख्यतः अबुल फज़ल की रचना पर आधारित है। लेखक रहीम की हिन्दी कृतियों के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं करता।

शेर-उल-अजम—मौलाना शिब्ली की इस कृति में फारसी कवियों का आलोचनात्मक विवेचन है। इसमें रहीम की जिन फारसी रचनाओं का विवेचन हुआ है, वे मुख्यतः मआसिरे रहीमी पर आधारित हैं। विद्वान आलोचक ने रहीम को कवि और आश्रयदाता के रूप में उच्चस्थान दिया है।

५. अँग्रेजी में लिखित ग्रंथ

हुमायूँ बादशाह (दो भाग)	लेखक	डा० एस० के० बनर्जी
शेरशाह	"	डा० के. आर. कानूनगो
अकबर, दी ग्रेट मुगल	"	विन्सेंट स्मिथ
अकबर	"	मैलेसन
अकबर	"	बिनयन (लारेन्स)
दी एम्परर अकबर (दो भाग)	"	अगस्टीन फ्रेड्रीक—काउन्ट आफ नोयर (अनुवाद कर्त्ता ए० एस० बेवरीज)
हिस्ट्री आफ जहाँगीर	"	डा० बेनी प्रसाद
हिस्ट्री आफ जहाँगीर	"	ग्लेडविन

शाहजहाँ आफ डेलही	लेखक	डा० बी० पी० सक्सेना
हिस्ट्री आफ औरंगजेब (पाँच भाग)	"	सर यदुनाथ सरकार
दाराशिकोह	"	डा० के० आर० कानूनगो
हिस्ट्री आफ गुजरात	"	ई० सी० बैली
हिस्ट्री आफ गुजरात	"	कमसैरियट
दी पोलिटिकल एण्ड स्टेटिस्टिकल हिस्ट्री आफ गुजरात	"	जेम्स बर्ड
हिस्ट्री आफ काठियावाड़	"	विलबर फोर्स-बैल
दी मोहमडन आर्कीटेक्चर आफ अहमदाबाद, भाग १	"	बर्जेस
कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया भाग ३-४		
दी हिस्टॉरिक लैण्ड मार्क्स आफ दी डेकन	"	डबल्यू. हेग
दी सैंट्रल स्ट्रक्चर आफ दी मुगल एम्पायर	लेखक	डा० इब्नेहसन
दी आर्मी आफ दी इंडियन मुगल्स	"	डबल्यू० इर्विन
दी मुगल किंगशिप एण्ड नोबिलिटी	"	आर० पी० खोसला
दी जसूइट्स एण्ड दी ग्रेट मुगल	"	मेक्लेगन
इण्डिया एट दी डैथ आफ अकबर	"	मोरलैंड
इनफ्लुएन्स आफ इस्लाम ओन इंडियन कल्चर	"	डा० ताराचन्द
सम एस्पैक्ट्स आफ मुस्लिम ऐड-मिनिस्ट्रेशन	"	डा० आर०पी० त्रिपाठी
पारसीज एट दी कोर्ट आफ अकबर	"	जे० जे० मोदी
ए स्टोरी आफ दी डेकन भाग १	"	जे० डी० बी० ग्रीबल
ए लिटेररी हिस्ट्री आफ परसिया ४ भागों में	"	ई० जी० ब्राउने
इंडियन पेन्टिंग्स अन्डर दी मुगल्स	"	सर परसी ब्राउन
मलिक अम्बर	"	डा० जे० एन० चौधरी

दीनइलाही	लेखक	माखनलाल
दी रिलीजियस पालिसी आफ अकबर	,,	नवरोज सी० मेहता
एम्पायर आफ दी ग्रेट मुगल्स	,,	डी० लैट (होलैंड और बनर्जी द्वारा सम्पादित और अनूदित)
मुगल रूल इन इण्डिया	,,	एडवर्ड्स एण्ड गैरेट
हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स ८ भाग में	,,	इलियट एण्ड डाउसन
हिस्ट्री आफ इण्डिया	,,	एलफिन्सटन
ए हिस्ट्री आफ इण्डिया अन्डर दी फर्स्ट टू सोवरेन्स आफ दी हाउस ओफ तैमूर, २ भाग	,,	डब्ल्यू–इर्विन
कैटेलोग आफ पैरसियन मैनुस्क्रीप्ट्स इन दी लाइब्रेरी आफ इंडिया आफिस	,,	डा० इथ्मन
अर्ली ट्रैवल्स इन इण्डिया (१५८३–१६१९)	,,	सर विलियम्स फोस्टर
ए हिस्ट्री ओफ परसीयन लैंगवेज एण्ड लिट्रेचर एट दी मुगल कोर्ट ३ भागों में	,,	मोहम्मद अब्दुलगनी
इण्डियन आर्कीटेक्चर	,,	ई० बी० हैवेल
हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया	,,	डा० ईश्वरी प्रसाद,
एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया	,,	एस० एम० जफ़र
सम कल्चरल अस्पैक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया	,,	एस० एम० जफ़र
इम्पीरियल फरमान्स	,,	के० एम० झवेरी द्वारा संकलित
हिस्टी आफ इण्डिया	,,	जी० एच० कीन
हिस्ट्री आफ दी ग्रेट मुगल्स	,,	केनेडे

प्रमोशन ओफ लर्निंग इन इण्डिया	लेखक	एन० एन० ला
ड्यूरिंग मोहमडन रूल बाई मोहमडन्स	"	
कोर्ट पेन्टर आफ दी ग्रान्ड मुगल्स	"	बिनियन लारेन्स
इनसाईक्लोपीडिया आफ इस्लाम		
बायोग्रफिकल नोटिसेज आफ पारसीयन पोइट्स	"	ओसले
जहाँगीर्स इण्डिया	"	पेलसायर्ट
केटेलोग आफ दी परसियन मैनुस्क्रिप्ट्स	"	डा० न्यालसरील
स्क्रिप्ट्स इन दी ब्रिटिश म्यूजियम एण्ड वन सप्लीमैंट ३ भागों में		
कैटलोग आफ दी अरेबिक एण्ड परसियन मैनुस्क्रीप्ट्स इन दी	"	सर ई० डी० रास
ओरियन्टल पब्लिक लाइब्रेरी, बांकीपुर		
ट्रान्सलेशन आफ अलबेरूनीज इण्डिया	"	ई० सी० सचाऊ
दी मुगल एडमिनिस्ट्रेशन	"	सर जे० एन० सरकार
स्टडीज इन मुगल इण्डिया	"	सर जे० एन० सरकार
ए बिबिल्ओग्राफी आफ मुगल इण्डिया	"	प्रोफेसर एस० आर० शर्मा
ए हिस्ट्री आफ परसिया	"	साइक्स
लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो	"	डा० वहीद मिर्जा



६. पत्रिकायें और गज़ेटियर्स्

जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड
जरनल रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल
जरनल रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई ब्रांच
जरनल आफ दी डिपार्टमैन्ट आफ लैटर्स, भाग १६, यूनिवर्सिटी आफ कलकत्ता, कलकत्ता रेव्यू
इण्डिया एन्टीक्वैरी
इस्लामिक कल्चर
जरनल आफ दी पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी
इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली
जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री
जरनल आफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी
प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन
ईस्ट इण्डिया एसोसियशन जरनल
ओरियन्टल कालेज मैगज़ीन
निगार (उर्दू)
विशाल भारत
माधुरी
सरस्वती
हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग)
विश्व वाणी (अकबर अंक) १९४२ इलाहाबाद
इम्पीरियल गज़ेटियर्स्
गज़ेटियर्स् आफ सिन्ध
गज़ेटियर्स् आफ बम्बई

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	८	करने बाद	करने के बाद
२१	१८	भला म्यान	भला एक म्यान
२४	३	आर	और
२५	११	विद्रोहियो	विद्रोहों
७०	१२	मिरजा	मिर्जा
७४	२	स्वगातार्थ	स्वागतार्थ
८६	८	मुल्तन	मुल्तान
९१	७	इद्दी	गद्दी
९९	८	भी प्रयत्न	भी प्रत्याघात होने लगे। लाख
१०१	५	तृताय	तृतीय
१०३	३	पूं	पूर्व
१०४	८	दालत खाँ	दौलत खाँ
१०८	१७	पारमर्श	परामर्श
११०	२१	साघन	सा धन
११५	१५	आर	और
१२१	२	अमारों	अमीरों
१२२	फुटनोट	भाग २ ०	भाग २ पृ०
१२३	५	१५५४	१५६४
१४६	१४	शाहजदे	शाहजादे

१६१	६	अम्बर का	अम्बर की
१७४	८	वढी	बड़ी
१७५	१६	उपस्थिति	उपस्थित
१९९	३	प्रदेश का	प्रदेश की
२०७	२	हुआ है	हुआ
२३२	१	अरबा	अरबी
२४६	१७	यावन	यौवन
२६३	८	भारत का	भारत की
२६३	१२	होते भी	होते हुए भी
२६३	फुटनोट	कलाश	कैलाश
२८४	१९	अभिव्यक्ति‍त	अभिव्यक्ति
३०२	११	सुनिश्चत	सुनिश्चित

पृष्ठ ४२८ पंक्ति १९ में 'लेखक' के स्थान पर "सम्पादक पण्डित रामनरेश त्रिपाठी" पढ़िए।
